रवरी १९७६

सारिका



पांच लंबी कहानियां

सूर्यबाला
ओंकार ठाकुर
सुरेश चतुर्वेदी
मधुकर सिंह
विनोद शाही

•

रमेश गुप्त
ज्योत्स्ना देवधर
निरुपमा सेवती
मंदाकिनी गोगटे
आदि की रचनाएं

•

दो कहानियां मॉरिशस से

•

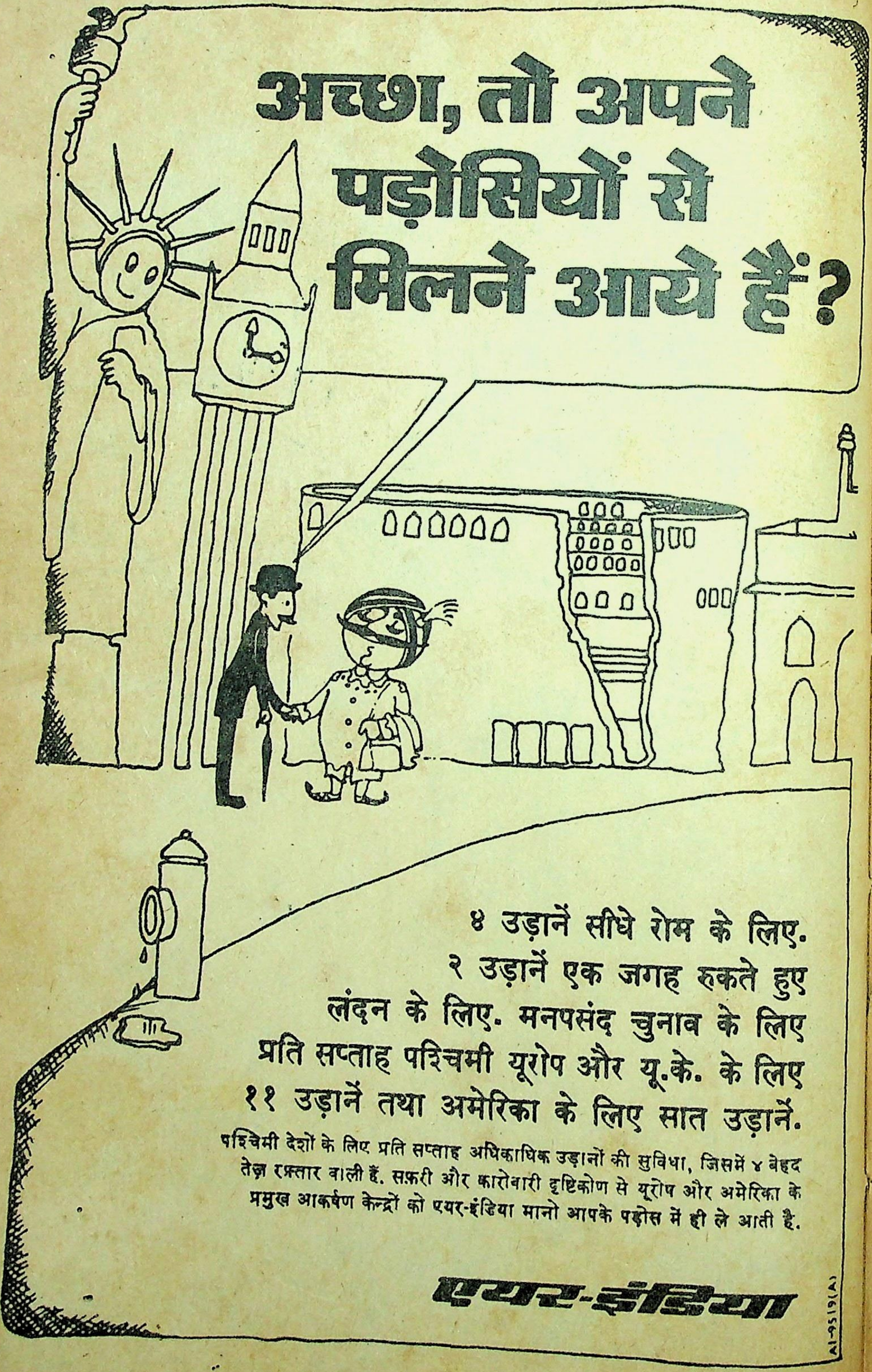
गर्दिश के दिन

दीप्ति खंडेलवाल

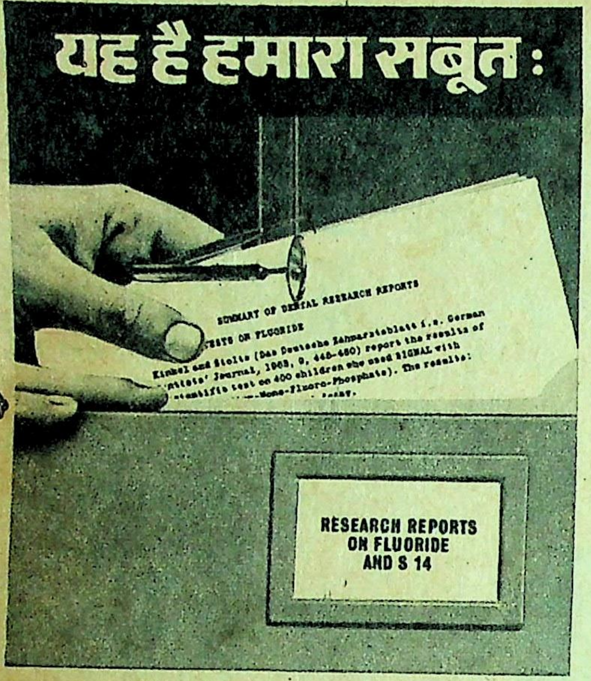
•

साथ में -
विविधा, फिल्में, कृतियां,
तथा अन्य सभी स्थायी स्तंभ

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
१ रुपया


अच्छा, तो अपने पड़ोसियों से मिलने आये हैं?
४ उड़ानें सीधे रोम के लिए.
२ उड़ानें एक जगह रुकते हुए
लंदन के लिए. मनपसंद चुनाव के लिए
प्रति सप्ताह पश्चिमी यूरोप और यू.के. के लिए
११ उड़ानें तथा अमेरिका के लिए सात उड़ानें.
पश्चिमी देशों के लिए प्रति सप्ताह अधिकाधिक उड़ानों की सुविधा, जिसमें ४ बेहद तेज़ रफ़्तार वाली हैं. सफ़री और कारोबारी दृष्टिकोण से यूरोप और अमेरिका के प्रमुख आकर्षण केन्द्रों को एयर-इंडिया मानो आपके पड़ोस में ही ले आती है.
एयर-इंडिया
AI-9519(A)


नेसा
वह परिधान
जिसमें जीने का
मोह हो जाता है...
नेसा में उपलब्ध है
टेरीन/सूती सूटिंग, शर्टिंग,
साड़ियाँ और विविध वस्त्रों
का असीम आकाश
न्यू स्वदेशी
द न्यू स्वदेशी
मिल्स ऑफ
अहमदाबाद लि.
नरोडा रोड,
अहमदाबाद-३८० ००२
Sobhagya NS/75-1G HN





केवल सिग्नल फ़्लोराइड साबित करती है कि यह दांतों की सड़न और सांस की दुर्गंध रोक देती है,

दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

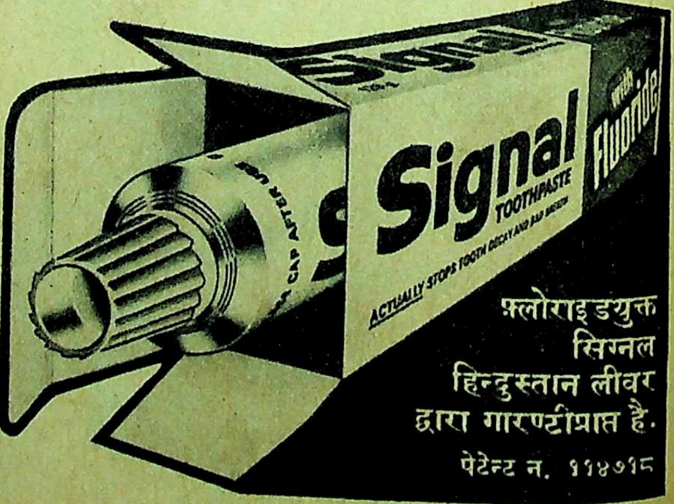
सिग्नल में मिला फ़्लोराइड दांतों की सड़न रोक देता है :
दंतचिकित्सकों किंकेल और स्टोल्टे द्वारा जर्मनी में ४०० बच्चों पर किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि सिग्नल फ़्लोराइड दांतों के एनामेल पर एक घेरा बना देता है ताकि एनामेल तेज़ाब के हमले का और अधिक मुक़ाबला कर सके. इसीलिए तो सिग्नल इस्तेमाल करने वाले बच्चे यह नहीं जानते कि दांत का दर्द क्या होता है ! अपने परिवार की सुरक्षा के लिए अभी से सिग्नल चिकित्सा शुरू कीजिए.

सिग्नल में मिला S-14 सांस की दुर्गंध रोक देता है :
डा. हावर्ड ई. लिंड द्वारा यू. एस. ए. में किए गए परीक्षणों ने यह सिद्ध किया है कि सिग्नल में मौजूद S-14 मुंह में दुर्गंध पैदा करने वाले ९५% बैक्टीरिया को इस्तेमाल के १५ मिनट के अंदर ख़त्म कर देता है.

सिग्नल के दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर करे :
सिग्नल के अनोखे अल्युमिना ट्राइ-हाइड्रेट आधार से आपके दांत ऐसे साफ़ हो जाते हैं जैसे किसी डाक्टर ने किए हों—दांतों के एनामेल को बिना नुकसान पहुंचाए. केवल सिग्नल में यह विशेष सम्मिश्रण मौजूद है : फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में.

कोई भी दूसरी टूथपेस्ट इतना नहीं कर सकती.

केवल सिग्नल फ़्लोराइड के पास है सबूत— अपने दंत-चिकित्सक से पूछिए.



लिंटास-SGF.63-140 HI

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका। सारिका

फरवरी, १९७६

वर्ष : १६ : पूर्णांक : १७८



कहानियां

मॉरिशस की दो कहानियां

● ●

गर्दिश के दिन

आद्य कथाकार

स्थायी स्तंभ

●

आमुख : कोमला वरदन

● ●

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

नवंबर अंक

पाठकीय

● **'सुधाकर', २७३७ गली आर्य समाज बाजार, सीताराम, दिल्ली -- ६ से लिखते हैं**

सारिका ने **'मेरा पन्ना'** स्तंभ समाप्त करके मुझ जैसे अनेक पाठकों से जो छीना है क्या मैं आशा करूं कि वह **सारिका** फिर हमें दे सकेगी? कहानियों से कहीं ज्यादा **'मेरा पन्ना'** ने हमेशा कहा है. कम से कम मेरा तो यही विचार है.

टी. ए. राणा के विशेष चित्रांकन ने कहानियों को वास्तव में साकार कर दिया है. एक-एक चित्र कहानी से सटीक है और उन्हें सार्थक करता है.

'कृतियां' के अंतर्गत रा. अ. की समिक्षाएं जैसे किसी दवाब में लिखी गयी हैं. रमाकांत आजाद का लेख **'महानगर बंबई : वेश्या-वृत्ति के सामाजिक आयाम'** अपनी स्पष्टवादिता के लिए प्रशंसनीय है.

उर्दू कहानी **'सफेद घोड़ा'** (अहमद नदीम कासमी) व गुजराती कहानी **'गुलाब और हिना'** (चदूंलाल पटेल) विशेष पसंद आयीं. शरत की **'खत'** अत्यंत मार्मिक है. □

● **कुमार, संपादक 'तीर' त्रैमासिक गोड्डा, संथालपरगना (विहार) से लिखते हैं. :**

सारिका का नवंबर अंक **महानगर बंबई : वेश्या वृत्ति के सामाजिक आयाम** – रमाकांत आजाद का यह प्रामाणिक एवं कटु-सत्य लेख महानगरों में पनप रही वेश्यावृत्ति के तमाम नये तरीकों एवं श्रेणियों का जम कर रहस्योद्घाटन करता है. यह रचना इस अंक की उपलब्धि मानी जा सकती है. ऐसे साहसिक लेखन एवं प्रकाशन के लिए लेखक एवं **सारिका** को हार्दिक बधाई.

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की साहित्य चर्चा पढ़ कर रूस एवं स्वीडन में कहानी की वर्तमान स्थिति पर गहरा क्षोभ हुआ. कहानियों में **क्षौरकर्म** महत्वपूर्ण लगी. पंजाबी की प्रथम मौलिक कहानी **'भत्ता'** बहुत जंची कृपया अनुवादक को मेरा अभिनंदन पहुंचावें. □

● **इन्द्र देव दीक्षित, के. पी. ओ कम्पूटर सैल, चौथी मंजिल, ए.**

> **सम्पादकजी, नमस्कार.**
>
> अस्सी बरीस क जिन्दगी होय गयी अउर कउ लड़िकनन्ह क बाबा कहवावैं लागे ह पर **'सारिका'** जइसन पत्रिका आज तक कौनों जगहां देखै बदे नांय मिला. इ अपने नांवगुने में अउवल और अकेल बाटै. खड़ी बोली हम्मैं साफ साफ लिखै नांय आवत मुदा **'सारिका'** के कहनियन्ह के बांचै अउर ओकर अरथ जुमा जुमा समुझै में कौनों किसिम क दिक्कत नांय होत. लड़िकन-गदेलन सब सकूल-दफतर चला जाथेन, तब दुपहरे क जून सुतारे से पढ़े क बखत मिलथ. आपन पिन्सिन पउतै एक रुपिया **'सारिका'** बदे निसार के अलग धइ देइथ. एहमें कौनों रियायत नांव होय. नवम्बर अंकमें **'सफेद घोड़ा'**, **'मानकुंवरः एक आपबीती'**, **'अंधेरे-उजाले'**, **क्षौर-कर्म'** और **'बेटियों वाले'** कहानी बहुत निक लाग. 'गणिका-जीवन : कुछ अपरिचित आयाम-विशिष्ट खंड' और लघु कथा क वही असर रहा जौन जेवनार में अचार, चटनी और रायता क रहा थै. ढेर का लिखी. बूढ़ मनई हई. हमार आशीर्वाद.
>
> **तोहार —**
> **रामअधार तिवारी,**
> **१११ शेखपुरा, जौनपुर**

सेन माध्यमिक विद्यालय तान सेन, पाल्या, नेपाल से लिखते हैं :

याद नहिं कब और कहां मेरा आंख किसी रेल्वे स्टेशन की बुकस्टल पर झुलती और हिलति हुई **'सारिका'** पर रुकती है और मैं उसे खरिदता हूं. और उसके बाद यह सिलसिला जारी होता है हर मास पास के बुकस्टाल पर **'सारिका'** खरिदने वालों कि पंक्ति में सब से आगे अपने आपको पाता हूं. और **'सारिका'** ला कर अपना भोगा हुआ यथार्थ पढ़ने लगता हूं. मैं सच कहता हूं कि **'सारिका'** पढ़ते समय यह महसूस नहिं होता है कि कोहि साहित्य का अध्ययन करने के लिए मष्तीष्क पर जोड लगाना पड़े. वरन वास्तविक जीवन भुगतने वाला सिर्फ मैं हूं ऐसा अनुभव होता है. यहि **'सारिका'** का सबसे बडी सफलता है. इस प्रकार का सामाजिक प्रतिवद्ध साहित्य का चयन और आम आदमी का वास्तविक जीवन कि सहि प्रस्तुतीकरण सम्पादक कि निष्ठा और मेह[नत] से ही हुआ है. **'सारिका'**, यह विशेषता अटूट रहे यहि हार्दिक शुभ कामना.

आपका
बनमाली निराकार

जी. सी. आपु. इंद्रप्रस्थ मार्ग, नई दिल्ली – ११०००२ से लिखते हैं

यद्यपि **'सारिका'** सात वर्ष से पढ़ता आया हूं और एक-एक अंक को माला के मणिकों की तरह संजो कर रखे हुए हूं, पर मैं इस बार अपने आंतरिक उद्गार को आप तक पहुंचाये बिना कैसे रह सकता हूं कि 'नवम्बर' अंक अति सुंदर अंक है. □

दिसंबर अंक

● **श्री राम सागर प्रसाद "सदन"**
हिंदी विभाग, ज्ञानोदय निकेतन, पंजाबी कालोनी, समस्तीपुर (बिहार) से लिखते हैं :

'सारिका' का दिसंबर अंक पढ़ कर बेहद प्रसन्नता हुई. चुस्त संपादन के कारण यह पाठकों को तुरंत अपनी ओर आकर्षित कर लेता है.

मेरे एक मित्र श्री लाल बाबू शर्मा 'ललन', जो इतिहास विशेषज्ञ हैं, पहले 'सारिका' को देख कर घबरा जाते थे. कहते थे कि इसकी कहानियां इतनी गंभीर होती हैं कि उन्हें केवल साहित्यकार ही समझ सकते हैं. परंतु मेरे निकट में रहने के कारण इसकी कहानियों के मर्म को जान गये. अब वे उन्मुक्त कंठ से सारिका की प्रशंसा करते हैं.

'सारिका' की कहानियां पाठकों का मनोरंजन ही नहीं करती हैं, बल्कि आधुनिक जीवन को सभी पहलुओं पर कटु दिशाएं भी देती हैं.

दिसंबर, '७५ अंक में प्रभाकर माचवे की रचना **'हमारे भी मेहमां हैं कैसे-कैसे'** तथा सविता बैनर्जी की रचना **'गलत नंबर'** बड़ी अच्छी लगीं. उन्हें नव वर्ष पर बहुत-बहुत बधाइयां. लघु कहानियों में **'भिक्षा और दान'** प्राचीन होते हुए भी नयी लगती है.

'गर्दिश के दिन' में राजेंद्र यादव जी खूब अच्छी रचना नहीं लिख सके. उक्त स्तंभ में अक्तूबर अंक में राबिन शॉ 'पुष्प' जितना जमे, वैसी ही आत्मरचना की पाठकों को प्रतीक्षा रहेगी—ऐसा मेरा विश्वास है. ☐

● **राजाराम सिंह,**
६८।३१ ए, लोकमन मोहाल, कानपुर-१ से लिखते हैं :

राजेंद्र यादव की आत्मरचना **'गर्दिश के दिन'** के अंतर्गत पढ़ने को मिली. लगता है, यादव जी लेखनी के जरिये पाठक वर्ग को चमत्कृत करना चाहते हैं, ☐

एक परिचर्चा

कहानी की संबद्धता : कितने रूप, कितने आयाम

परिचर्चा - आयोजक—वशीकांत 'अमलतास'

'निशांत'—मुंगेर की सर्वथा अपरिचित संस्था है. किंतु मुंगेर, पटना और आस-पास की भीषण बाढ़ ने इस संस्था की साहित्यिक चेतना को प्रवाह दिया. इसके पुनरुत्थान (या तत्वावधान कहा जाये) में श्री वशीकांत 'अमलतास' ने एक अनौपचारिक परिचर्चा का आयोजन किया. अध्यक्षता श्री मनोज दीक्षित ने की और भाग लेने वाले थे मुंगेर के कुछ युयुत्सु. यथा—सुश्री दीपाली चौधरी, अरविंद 'नीरव', निशिकांत और सुनयना ठाकुर. परिचर्चा का विषय था—कहानी की संबद्धता : कितने रूप, कितने आयाम.'

शुरुआत निशिकांत ने की. वे **'सारिका'** को चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मोहन राकेश और कमलेश्वर के संपादन में देखते रहे हैं. उन्होंने कहा—स्टैंडर्ड की आरोहावरोह परिस्थितियों के बावजूद **'सारिका'** की 'कांसटेंसीको नकारा नहीं जा सकता.

लेकिन, दीपाली चौधरी ने आशंका व्यक्त करते हुए कहा—इधर के कुछ दिनों मैं जैसा फील करती हूं, **'सारिका'** की कथायात्रा में कुछ 'डाइवर्सन' आ गया है. दरअसल आज का लेखक सिर्फ कलम रख कर सच्ची साहित्यिकता नहीं बरत सकता, बल्कि आवश्यक है कि सही अर्थों में जिन 'मामूली' आदमियों के लिए कहानी लिखी जा रही हो, उनके लिए कुछ सक्रिय कार्य किया जाये.

अरविंद 'नीरव' ने दीपाली का समर्थन किया. और **'सारिका'** में प्रकाशित श्री 'केशव' की कहानी **'अंधा सूरज'** का उद्धरण प्रस्तुत किया—' दो हजार में थाना गायब. पांच सौ में मुखिया. . .और शेष ढाई हजार मेरे ही न.

अमलतास—मैं इससे पूर्णतः सहमत नहीं हूं. अंशतः इसलिए हूं कि आदमी की दो प्रवृत्तियां होती हैं—एक जीने की और दूसरी जी लेने की. जीने की पिपासा में जी लेने की स्थिति वाला आदमी वह सब करता है जो **'अंधा सूरज'** और **'परिक्रमा'** में है.

सुनयना ठाकुर :—बर्नार्ड शा ने ठीक ही कहा है कि आज के जमाने में नैतिकता और कर्तव्यपालन आउट डेटेड डिक्शनरी के शब्द हो गये हैं. हमें सबसे पहले आम आदमियों को रोटी देने का प्रयत्न करना चाहिए.

दीपाली चौधरी:—आबजेक्शन . सुनयना भी शॉं की तरह फेबियनिस्ट बन रही हैं. इस सिद्धांत से समाज का सिर्फ डिस्ट्रक्शन ही हो सकता है. मेरे विचार से साहित्य का सर्वप्रथम उद्देश्य क्रियात्मकता होना चाहिए.

मनोज दीक्षित—अब लेखकों को क्रियात्मकता का पक्षधर होना चाहिए. दो तीन दशकों (या अधिक) से कहानी या कविता या संपूर्ण साहित्य मात्र समाज का दर्पण बनकर रह गया. . .सही अर्थों में इसे 'प्रतिक्रिया' कहा जायेगा.

मनोज दीक्षित के इस तर्क को सबों ने स्वीकार किया. और अमलतास ने कहा कि—संघर्ष अब संघर्ष के लिए नहीं, 'सृजन' के लिए किया जाना चाहिए.

||सहम कर चुप हो गये थे समुन्दर,
ज़मीं हिल रही थी, जहां हिल

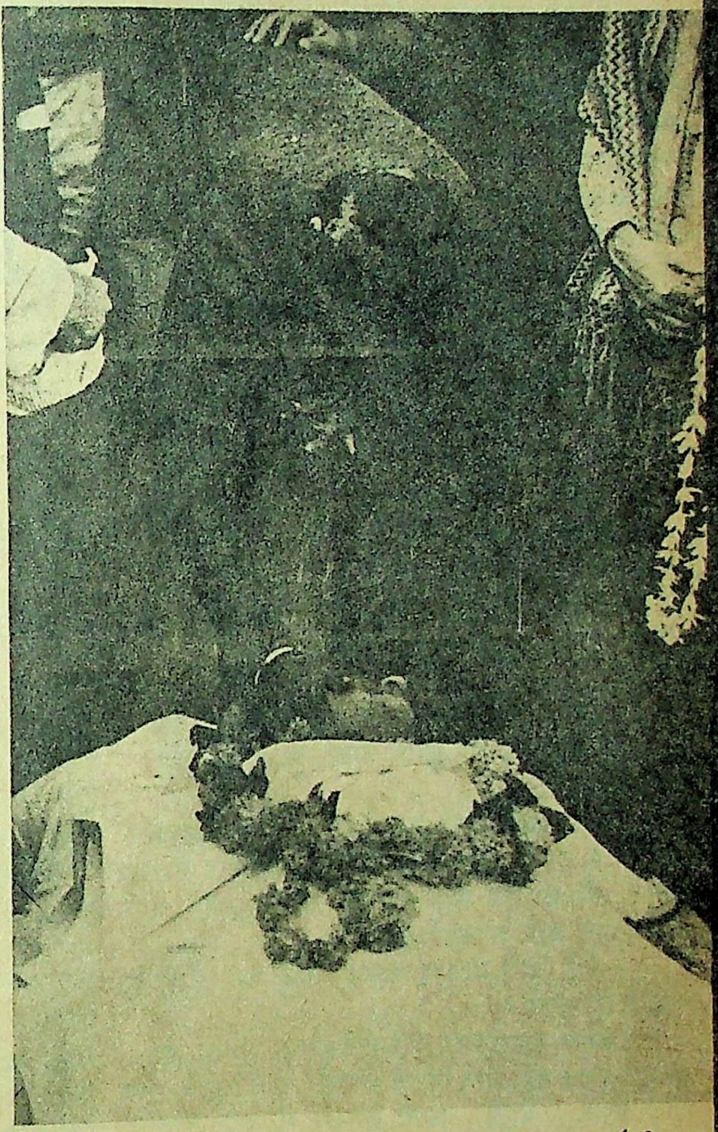


कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

दुष्यंत कुमार:

जन्म: १ सितंबर १९३३

अभी सुन के तेरी दहाड़
रहा था, अभी हिल रहे थे पहाड़ ||



यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो, यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए!

एक श्रद्धांजलि

देहावसान: ३० दिसंबर १९७५

एक इंद्रधनुष:

जुबेदा उर्फ जुब्बी के नाम • सूर्यबाला

ऊपर घुले फिरोजी आसमान में शफक (इंद्रधनुष) फूल रहा है. . .अटाला मस्जिद की मीनारों के ऊपर, सतरंगे जादुई रेशों में खिंचा, पूरा कमान-सा शफक. . . एक पुरानी गजल की लाइन जुबान पर आयी ही थी कि टाट के परदे खिसका कर गफूरे ने चुटकी ली—गोया, जवानी लौट रही है. . .क्यों उस्ताद?

झुर्रियां सिकुड़-सिमट कर एक साथ हौले से मुसकरायीं—शफक देख रहा था म्यां! देखो, क्या नजारा है कुदरत का! और नजारे का पूरा लुत्फ उठाने के लिए जो गरदन टिकाने की कोशिश की तो दीवाल से बालिश्त भर नोना झड़ गया. उस्ताद तोबा कह कर चिपचिपी गरदन से नोने के चूरे झाड़ने लगे.

—और. . .मिजाज कैसे हैं?

—दुआ है तुम सबकी. . .ठीक हूं. अभी कोठरी के गोरबे से शफक का टुकड़ा दिखा तो रोक न सका. सोचा, बाहर चल कर नजर भर कर देखूं, मीनारों पर फूलता शफक, सो दीवाल का सहारा लिये-लिये सहन में आ गया.

—अरे, तो मैं कौन दूर था! आवाज लगा देते. . आज तो यह खाट भी काफी पानी खा गयी दिखे. . अपनी डाल दूं?

—नहीं-नहीं. लमहे भर में ही अंदर चला जाऊंगा. कोठरी में उमस जरा ज्यादा ही है. उस्ताद ने फिर टिकने की कोशिश की कि खांसी उघड़ गयी. गफूरे ने पीकदान आगे सरका दिया. . .

—बस करो उस्ताद, शफक मिट रहा है, चलो, कोठरी में पहुंचा दूं.

सचमुच दूसरा छोर धीरे-धीरे हलका हो रहा था. . . उस्ताद देखते रहे. जाने कितने मौसमों, जाने कितने सालों बाद शफक. . .यानी. . .यानी जलेखा की हरी, फीरोजी ओढ़नी से ढका माथा. . .यानी वे गजलें. . .यानी वह तरन्नुम, वे अल्फाज, उनकी अपनी आवाज. . .इसी इंद्रधनुष की तरह. . .जिसे वह सारी-सारी रात महफिलों में उतारा करते थे. आज, आज कितने सालों बाद दीखा है यह शफक जिसे वह पिछले सालों की तरह नजर-अंदाज नहीं कर सके. . .सैकड़ों बरसातों के बाद देखा इधर मौसम का पहला शफक.याद आयीं शामियानों में सजी, इत्र-बसी महफिलें, जब 'बादल हैं तेरे गेसू, बिजली है तेरा जलवाऽऽ'. . .सुन कर आशिकों की नजरें चिलमन के पीछे से उलझ कर झूम-झूम जाया करतीं और बुड्ढों की आंखों की चिलमन में हसीन यादें परिंदों-सी फड़फड़ाने लगतीं. . .गर्मजोशी से भरे, लबालब जाम छलकते तो उस्ताद की आंखें जलेखा की जादुई मुसकराहट के नूर से छलक़ने लगतीं. उस्ताद की हर महफिल की कामयाबी के लिए नमाज पर मन्नत मानती जलेखा और जब बुलावा आता तो आधी-आधी रात तक प[...] थाली सामने धरे इंतजार में डूबी जलेखा. उस्ताद लौ[...] पर सबसे पहले उनींदी जलेखा का माथा चूमते. जले[...] का माथा यानी—यानी फीरोजी आसमान पर खि[...] शफक. यादें भी अब हद से गुजर गयी हैं. इतने सा[...] महीनों, हफ्तों, घड़ियों में घिसटते-घिसटते दुहराते-ति[...] रातें उनका भी तो रंगो-आब, चमक-दमक फी[...] पड़ती जाती है. लेकिन आज कुछ जुनून ही चढ़ा [...] कि उस्ताद उन फीकी, टूटी-फूटी यादों को सालों ब[...] झाड़-पोंछ कर सहेज-सहेज कर धर रहे हैं.

पुरवाई का मद्धम-सा झोंका सुरसुरा गया. उस्ता[...] की आंखों से एक पल को भी हाई कोर्ट के ब[...] हॉल का नजारा नहीं हट रहा है. बत्ति[...] जलने के साथ ही वह शब्बन मस्ताने के पीछे सारं[...] लिये बैठे थे. दिल कैसा धड़का था, जैसे पहली बा[...] स्टेज पर आये हों. आये तो पहली बार ही थे. जलेख[...] के मरने के इतने . . .इतने सालों बाद, नहीं तो उध[...] जलेखा का जनाजा उठा था और इधर उस्ताद की कव्व[...] लियों का मजलिसों से जनाजा उठ गया था. तब चहे[...] शागिर्द शब्बन ने समझाया-बुझाया, आरजू-मिन्नत [...] पर सब बेकार. बस एक लफ्ज बोले थे—शब्बन, मे[...] आवाज चली गयी. बुलावे आते रहे. . .राय साहब [...] सगाई के जश्न के, ठाकुर उमराव सिंह की पचास[...] सालगिरह के, नवाब हुसेनाबाद की लड़की के निका[...] के. . .पर वह न बाहर जाते, न हाथ जोड़ कर माफी मांग[...] पांच साला जुबेदा को गोद में लिये या खाट पर लिटा[...] पड़े रहते—नहीं तो पहले जलेखा चिक की आड़ [...] देखती, उस्ताद किस अदब से सिर झुका-झुका क[...] आये हुए बुलावों के लिए असमर्थता जाहिर कर[...] कि कल के लिए तो जनाब खुदाबख्श के घर, जुम[...] को नवाब की ड्योढ़ी पर हफ्ते पहले का बुलावा [...] जलेखा गद्‌गद् हो आसमान की ओर हाथ फैला क[...] खुदा का शुक्रिया अदा करती कि उसकी कड़ी, पाबं[...] पांचों वक्त की नमाज सफल हुई. उस्ताद एक फाकेमस्[...] बेरोजगार से जमाने के मशहूर कव्वाल बन चुके थे.

★ ★

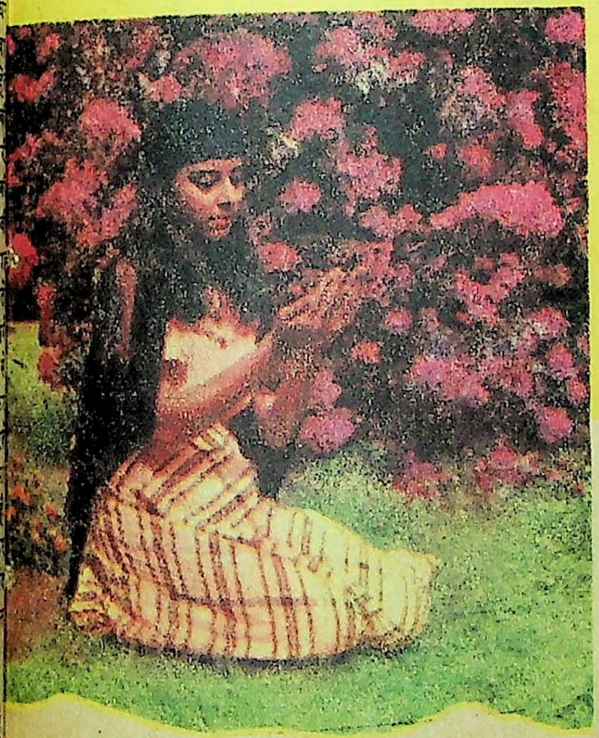
लेटे-लेटे कुरते की निचली जेब में हाथ जाता [...] वही मटमैला-बादामी पोस्टकार्ड— प्यारे अब्बा हुजू[...] को जुबेदा का आदाब मंजूर हो! आगे, अब्बा, आपक[...] पता हो कि इधर छह महीनों से हम संडीले हैं. नूर[...] के अब्बा की मिल मशीन से चलने लगी, काम छू[...] गया. रोजी-रोटी की तलाश में संडीला आ गये. कुछ[...] न-कुछ काम मिल जाता है. इधर डेढ़-दो महीने [...] गुजारे का आसरा हो गया है. आगे खुदा मालिक [...] आगे, अब्बा, अब हम एक दिन आपके पास आयें[...] पहले तो बहुत दूर थे, कुछ बस न था. यहां से ठेकेदा[...] की ट्रक जाती है. ईद के अगले हफ्ते पहुंच सकूं [...] रोजे का सबसे बड़ा सवाब इसे ही मानूंगी. . . नूरी और उसके अब्बा का सलाम मंजूर हो. . .आपक[...]

प्यारी बेटी जुबेदा उर्फ जुब्बी.

पिछले जुम्मे को डाकिया भटकता-भटकता लौटने को था कि गफूरे से मुलाकात हुई थी और भला हो गफूरे का कि पोस्टकार्ड पर लिखा नाम देख कर लमहे भर कान के पास की जूं टटोलते-टटोलते उसे सहसा याद आ गया. ठहरो, ऐसा ही कुछ तो अपने उस्ताद का नाम है. उस्ताद की कोठरी पर आवाज दे कर डाकिया खीझा था.—तौबा हो उस्ताद! जिसे ढूंढ़ते थे गली-गली, वो मकान के पिछवाड़े मिली. . .खासा बड़ा-सा नाम था. किसी जमाने में तुम्हारा. . .शर्त बद सकता हूं जो शहर को तुम्हारा ये नाम याद हो. . .

'आपकी प्यारी बेटी जुबेदा उर्फ जुब्बी' के बादामी पोस्टकार्ड ने वह काम किया कि वह हकीम समीउल्ला खां की दवा से बढ़ कर असरदार साबित हुआ.

● आर. एन. प्रसाद



उस सीली कोठरी के दरवाजे पर जब डाकिये की हथेली पर उस्ताद की दी हुई चवन्नी चमकी थी तो वह दो पल बौड़म-सा खड़ा रहा . . .रुक-रुक कर उसकी नजर कोने में रखी अल्यूमीनियम की पिचकी रकाबियों, जंग लगे टूटे ढक्कन वाली बकुचियों, और सीलन तथा पलस्तरों के साथ चिपकती, उखड़ती रही और अंत में चवन्नी पर रुक गयी थी.—यह क्या उस्ताद! तुम्हारी बेटी मेरी बेटी हुई, बख्शीश कैसी?

उस्ताद ने कोशिश तो की, पर कुछ बोल न सके. बोलते कैसे? जाने कितने महीनों-सालों की भूली-बिसरी दास्तानें आ कर धंसी हुई थीं, गले में, आंखों में, दिलो-दिमाग में. हर कहीं उन्हीं दास्तानों का पहरा था. . . फिरोजी, कासनी, सुरमई दास्तानों का पहरा. . .

उन्होंने हाथ आगे बढ़ा कर धीमे-धीमे डाकिये की चवन्नी वाली हथेली बंद कर दी.

फिर गफूर मियां को बुलवाया. राय ली कि कम-से-कम कितने में डेढ़ फुट तक की दीवार थोड़ी दुरुस्त हो जाये, तारकोल ही पुतवा दें? संडास के लिए एक टाट का परदा. . .नयी रकाबियां गफूर मियां अपनी दे देंगे. . . दीवार के लिए मजदूरों से बात करनी होगी. फिर एक गोटे-किनारी वाली फिराक, चड्ढी, दामाद को और कुछ नहीं तो एक तौलिया हो और एक फूलदार साड़ी. गफूर खां चले गये तो उस्ताद अकेले बैठे-बैठे ब्योंत बिठाने लगे—-एक-एक पाव भी दो-दिन गोश्त आये तो, तेल-साबुन-मंजन. . .अरे,नूरी के लिए दूध. . .सारा हिसाब लगा कर जोड़ा तो लगा बहुत-बहुत थक गये हैं. . . . यूं ही पड़े-पड़े जालों में फंसी-मरी मक्खियां देखते-देखते एकाएक उठे और छड़ी उठा कर शब्बन के घर चल दिये.

★ ★

वही शफ्फाफ बत्तियां,वही मजलिस, वही समां. . . हारमोनियम और सारंगी के मिलते स्वर. फर्क बस इतना था कि स्टेज के बीचों-बीच झिलमिलाती कामदानी की अचकन, धुले, अलीगढ़ी पाजामे और तिरछी मखमली टोपी लगाये उस्ताद नहीं, शब्बन 'मस्ताना' बैठे थे. उस्ताद तो अपनी जीर्ण कामदानी की गुड़ी-मुड़ी अचकन और गफूरे से मांगा पाजामा पहने, झेंपते-से, उस जमाने के अपने प्यारे शागिर्द और इस जमाने के मशहूर कव्वाल शब्बन 'मस्ताना' के पीछे बैठे थे. शब्बन ने एकाध बार सामने आने का इशारा किया था, पर उस्ताद अपनी अचकन और मैलखाई टोपी को देख कर झेंप गये थे. वैसे इस बदले लिबास और झुर्रीदार जिस्म में, गुजरे वक्त के कामदानी में कसे तगड़े सीने और नुकीली दाढ़ी को ढूंढ़ना मुश्किल ही था, पर हाथ में संभाली सारंगी के तारों पर टपटप कर टपकते आंसुओं को छिपा पाना शायद नामुमकिन. .

सुर बंधे. . .हाथ फैले—-उस्ताद के नहीं,शब्बन के—- और माहौल में उस्ताद की अपनी बहुत प्यारी गजल के अल्फाज शब्बन की आवाज में तैर गये. . .

यही रंगत भरी शामें कभी हमने गुजारी थीं. . .
शफक, बादल, तड़पती बिजलियां, सब कुछ हमारी थीं

सम के साथ ढोलक तड़कती रही. पीछे बैठे शागिर्द उसी ताल में हथेलियां घुमा-घुमा कर तालियां बजाते रहे—-जैसे कभी शब्बन बजाया करते थे.

लय तेज हो गयी—-यही शामें, तड़पती बिजलियांSSSS हमारी थीं, हमारी थीं. . .हथेलियां तेजी से घूम कर ताली देने लगीं. शब्बन ने ठहर कर उस्ताद की ओर इशारा किया. एक आलाप खींचने के लिए उस्ताद संभले. एकदम खयाल आया, ले आने से पहले शब्बन ने कहा तो था.—-दो-तीन आलाप भी खींचने पड़ेंगे, उस्ताद . . लेकिन तुम्हारा दमा उमड़ गया तो? ऐसा है कि सारंगी

तो इम्तियाज के न आने पर यह लौंडा गज्जू ही संभाल लेता है, लेकिन अब तुम इतनी दूर से आये हो. . .और उस्ताद ठहरे . . .न. . .नहीं कर सकता. . .वरना जब कभी कमी पड़ती है, इसी गज्जू के भाई को बुला लेता हूं. नवीं में पढ़ता है, लेकिन फिल्लिम के तराने गाते-गाते, कव्वाली के आलाप भी खींच लेता है . दस-पंद्रह दे देता हूं. कुछ कहना नहीं, बड़ा अदब करता है मेरा, पर तुमको न करके अल्लाताला को क्या मुंह दिखाउंगा? उस्ताद ठहरे, पच्चीस से कम क्यों दूंगा. . . वैसे मजलिसों में भी वह आमदनी अब कहां रही!

शब्बन शुरू से ही होशियार था. और वक्त के साथ-साथ आदमी और भी होशियार तथा सतर्क होता जाता है. क्या बुरा कह रहा है . . .पहले ही बात साफ हो जानी चाहिए. नहीं तो कहीं उस्ताद मन-ही-मन सैकड़ा-सवाई के मंसूबे बांध कर आयें हों तो बाद में झिक-झिक हो. बाद को लोग कहते फिरें कि शब्बन मस्ताना बूढ़े उस्ताद से कइयांपन कर बैठे--शहर का बच्चा-बच्चा शब्बन मस्ताना को जानता है, इज्जत का सवाल पहले है, पैसे का दूसरा. इसलिए पहले से पक्का होना चाहिए.

शब्बन अपनी तरफ से इतनी दरियादिली कर रहा है, आखिर, उस्ताद को भी तो कुछ कहना चाहिए. सो बोले--मुझे तुमसे कोई मोल-भाव नहीं करना, शब्बन, कुछ भी . .

'न दो तो भी' नहीं कह पाये वह.इतना बड़ा झूठ कैसे, किस बूते पर बोलते? आदमी कभी कुछ चाह कर भी तो नहीं कह पाता.वक्त की पहरेदारी है यह शायद. . . वक्त का पहरेदार ठहाका मार कर हंस पड़ेगा--कुछ भी नहीं चाहिए?. . .तब क्या यह गुड़ी-मुड़ी अचकन और मांगे का पाजामा पहन कर शौकिया मजलिस का लुत्फ उठाने जा रहे हैं?

नहीं-नहीं, शब्बन को उन्होंने बेटे की तरह माना है. आवाज की एक-एक कशिश, अपने गले की एक-एक बारीकी उसके गले में उतारी है. . .तो? वह भी तो उनकी कितनी कद्र करता है! वह जानते थे शब्बन मना नहीं करेगा, जईफी और तंगी में आज इतने सालों बाद जब उन्हें जरूरत पड़ी तो मदद जरूर करेगा--और की भी उसने.

--बुरा मत मानना, उस्ताद! अपने भी बाल-बच्चे हैं. साल बीतते-न बीतते बेटी का निकाह कर डालना है. . . .समय की तंगी तुम्हारे सामने है.

ठीक कहता है--कुछ गलत नहीं--आदमी नहीं बदलता, हालात बदल देते हैं उसे.

★ ★

शब्बन के दूसरे इशारे पर उस्ताद ने कांपते गले से, संभालते हुए, अल्लाह का नाम ले कर आलाप खींचा. . . बदली हुई आवाज से लोग चौंके. एकाएक जैसे तैरता हुआ सब कुछ रुक गया हो. . .चारों ओर से स्तब्ध, अवाक्, खामोश निगाहें उस ओर जुड़ गयीं. . .यह. . .यह कैसी कशिश है! . . .शब्द कहीं नहीं, बस स्वर. . .स्वर. . .आकारहीन. इन स्वरों को खींचते हुए जैसे कोई समूचा दिल खींचे लिये जा रहा हो. . .जानकार तो एकदम वाह-वा कर पागलों-से चिल्ला उठे--कमाल है--कमाल है. सामने आरामकुर्सियों पर बैठे हुए हाईकोर्ट के अफ-सरान--मजिस्ट्रेट साहब, सरकारी वकील जनाब मुश्ताक अली, रिटायर्ड जस्टिस सहाय साहब--सबकी आंखों में तल्लीनता के साथ कद्रदानी थी. आलाप खत्म होते ही जनाब मुश्ताक अली एक बुलंद वाह के साथ उठ खड़े हुए--मस्ताना! उस हीरे को सामने लाओ. एकाध फ-कती हुई चीज सुनवाओ.

शब्बन ने इशारा किया. उस्ताद झुकी नजरों से वाहवाहियां रोपते, सकुचाते-से थोड़ा आगे खिसक आ[ए]—हकदार की तरह नहीं, कुसूरवार की तरह. उन्हों[ने] शब्बन की ओर फिर देखा, मानो माफी चाहते हैं, प[र] शब्बन ने मुसकराते हुए बढ़ावा दिया--सुनाओ उस्ता[द] पुरानी चीज की लज्जत ही और होती है! . . . .लेकि[न] फरमाइशों का तांता बंध गया. उस्ताद को खुद प[ता] नहीं, वह कैसे गाते चले गये--एक बार भी खांसी न[हीं] उभड़ी--गला नहीं फंसा . . . यह करिश्मा था या रो[जे] का सवाब . . .

समां बंधता गया. पूरी मजलिस समंदर की लह[रों] की तरह मचलते-उफनते अल्फाजों पर झूम रही थी.

> इन्हीं अश्कों के राजदार को हम ढूंढ़ने निकले
> अजी हम ढूंढ़ने निकले. . .

आवाज की लहरें तेज और तेज होती जा रही[ं] और उस्ताद को लगता है--एक साथ हजार-हजा[र] बिजलियां तड़प रहीं हैं, तमाम जादुई रंगों में शफ[क] फूल रहे हैं, समंदरी झागों में परी-सी झिलमिला[ती] जुलेखा उन्हें आवाजें दे रही है--जुबैदा रोजे का सवा[ब] पाने आ रही है शौहर के संग, नूरी को गोद में उठाये. . .

रहम खुदा का, खांसी नहीं उभड़ी, इज्जत र[ह] गयी. शब्बन की भी, उस्ताद की भी. शब्बन ने ऊपर [से] हां भले कह दी हो, पर रहा होगा पशोपेश में ही [कि] कहीं उस्ताद मजलिस न उखाड़ दें--या खुदा--

कव्वाली खत्म हुई तो सहाय साहब एकदम साम[ने] आ गये.--आपकी तारीफ?

झुकी नजरों से सारे जादुई रेशे बिखर गये थे--खाकसार को अली अफजल मुराद कहते हैं. . .

--क्या! एकदम सहाय साहब की याददा[श्त] को खटका लगा-- अफजल मुराद? मशहूर [illegible] शान-ए-कव्वाली? शहनाजन गढ़ी वाले? उन्हों[ने] आगे बढ़ कर उस्ताद को गले से लगा लिया था औ[र] लगातार बाकी अफसरान को बताते जा रहे थे--कितनी बार पिताजी के साथ बचपन में आपकी कव्वा-लियों का लुत्फ उठाया है--आप लोगों ने क्या सुना. . . मैंने जो इस शख्स को जवानी के दिनों में सुना है--मुश्ताक अली, यह गुदड़ी के लाल हैं, लाल!

तब लम्हे भर को बादल, बिजलियां [illegible] नहीं, बस पूरे आकाश पर इंद्रधनुष ही इंद्रधनुष [illegible] गये थे.

बाद में सकुचाते हुए शब्बन को फिर याद दिला[या]

--इधर एक दो मजलिसों में बुला लेते तो...

--जरूर-जरूर.

गफूर ने कितनी मदद की; खुदा झूठ न बुलाये, दिन के दिन मजूरे के साथ लगा रहा, फिर भी संकोच तो होता ही है. मौका लगे तो पूछना है--म्यां, दो-चार मजलिसों के लिए और चाहिए था पाजामा. तुमसे कुछ छुपा नहीं है--क्या कहूं, तुम्हें परेशानी तो होगी--लगता तो नहीं कि गफूर इनकार करेंगे और उन्हें किसी और से पाजामा मांगना पड़ेगा ... आते तो जरा खर्चे का ब्योंत भी बिठा लेते...एक पाव दूध रोज, कम-से-कम बच्चों के लिए, चाय, पान, जर्दा, तेल, तरकारी और गोश्त--गफूर होते तो इसी शफक की ओर उंगली दिखा कर समझा देते--म्यां, ऐसी ही शोख रंगों वाली लहरियादार साड़ी जुबैदा के लिए ले आना.

सामने से शब्बन का शागिर्द आता दिखा. उस्ताद उतावली में बुलाने ही वाले थे कि वह खुद ही लौटा.

--आदाब, उस्ताद! आपका ही घर ढूंढ़ रहा था. तबीयत नासाज नजर आती है.

उस्ताद ने पीकदान खींचा और गला साफ कर हंस दिये--नहीं, यूं तो अब बुड्ढा हुआ ही--लेटे-लेटे शफक देख रहा था. शब्बन ने भेजा है?

--जी हां ...

--कब लग रही है मजलिस?

--कल शाम की है...

--ठीक है, ठीक है. कितने बजे? वही साढ़े आठ-नौ का टाइम होगा और क्या--है न?

--हांऽऽ...

--कहना, आठ तक जरूर पहुंच जाऊंगा, फिक्र न करें...जरूरत पड़ी तो हारमोनियम भी संभाल लूंगा--हां, कहना सारंगी जरा कसवा लेंगे, खूंटियां हर बखत ढीली हो जाती हैं--कसो, फिर ढीली...

शागिर्द खड़ा रहा तो उस्ताद को अपनी बुढ़ौती पर कोफ्त हुई, बैठने को न पूछा--बैठो-बैठो म्यां, चाय पियोगे?

--न..नहीं, शागिर्द धीमे से मुसकराया. मुझे तो शब्बन मियां ने इसलिए भेजा था कि आपसे कह दूं, कल आने की तकलीफ न करें.

चुपचाप कहीं खड़े हों और किसी ने पीछे से गहरे खंदक में धक्का दे दिया हो...उसी गहरी खंदक से आवाज आयी--क्या ...? क्या कहा है शब्बन ने?...

--कि उनका सारंगी वाला आ गया है, आप तकलीफ न करें...बुढ़ापे में दमा-वमा उभड़ जायेगा... आराम की जरूरत है आपको--अच्छा, आदाब.

जाता हुआ शागिर्द अटाला मस्जिद के टीलों के पीछे उतर रहा था. ऊपर आसमान बेहद सपाट था....

□□□

द्वारा श्री आर. के. लाल, फैक्टरी इंजीनियर,
ग्लैक्सो लैबोरेट्रीज (इंडिया) लिमिटेड,
पो. बा. १, अलीगढ़

सुबह से बरखा हो रही थी. बड़ी-बड़ी बूंदे, पानी की घनी चादर-सी बरसात. वह अपने घर में बैठी रही. कहीं आयी नहीं, कहीं गयी नहीं. जा नहीं सकती थी. यह मरी बरसात आती है और मन में आग सुलगा जाती है. सड़क पर गढ़े पड़ जाते हैं, पानी उसमें जमा हो जाता है, इसी तरह उसके मन में भी यहां वहां पानी जम जाता है, यादों का पानी. कितनी ही घटनाएं उस पानी में तैर कर ऊपर आ जाती हैं. जख्म गीला हो जाता है. टीस भर आती है. वह अपने मन को सम्हाल रही थी. इधर-उधर बहने से रोक रही थी. हाथ काम में जुटा रखे थे. प्रश्न का उत्तर दे रही थी. प्रश्न पूछ रही थी. लेकिन यह तो वह नहीं थी. वह तो अतीत के गह्वर में डूब मरी थी.

पति असफर था.

गाड़ी ले कर चला गया.

स्कूल जाने वाले बच्चे थे.

बस आयी. चले गये.

उसने एक लंबी सांस छोड़ी. अब वह अकेली थी. अपने बंगले के किले में बंदिनी हो कर भी वह स्वतंत्र थी. बरसात ने उस किले के चारों ओर एक चहार-दीवारी बांध दी थी. बंगला बगुले-सा खड़ा था. समाधिस्थ भीग रहा था.

कहीं पानी नहीं चू रहा था. कहीं गीला नहीं था.

बंगले का नीला रंग चिपका था—भीगे वस्त्र-सा

बाग में पत्ते, फूल, टहनियां झूम रहे थे.

सब धुल गया था. साफ हो गया था निर्मल

कहीं माटी नहीं, मैल नहीं, कीचड़ नहीं.

लेकिन

इस बरसात ने उसकी ओढ़ी हुई विस्मृति की चादर खींच ली थी. शरीर पर डाली हुई प्रतिष्ठा की शाल भिगो डाली थी. पहने हुए सुख ने समाधान का मुखौटा तोड़-फोड़ डाला था. वह बेचैन थी.

वह कपड़े ओढ़े जा रही थी, पहने जा रही थी. स्वेटर, स्कार्फ, दस्ताने, मौजे, सपाता, ओवरकोट लेकिन फिर भी जैसे वह एकदम नंगी थी. कांप रही थी. फिर वह और उसके मन की वह, दानों का झगड़ा शुरू हुआ. उसके दो मन बिजली-से टकरा उठे. गड़गड़ा उठे.

कोई मेहमान भी नहीं.

किसीका बुलावा नहीं, संदेसा नहीं.

किसीका फोन तक नहीं.

आज कुछ-न-कुछ होना चाहिए. अतीत से निकाल कर वर्तमान में झोंक देने वाली कोई घटना.

एक्सीडेंट.

तार.

बीमारी.

शाम ढली. अब वे आयेंगे. बच्चे आयेंगे, वह फिर जी लेगी, लेकिन शाम आती है तो जाती भी है. औरत-सी नहीं कि आयी तो वहीं—पूरी उम्र. इच्छा से, अनिच्छा से, रोती, हंसती—वहीं चिपकी रही, शाम जाती है रात के लिए जगह कर जाती है. उमर कैद नहीं, एक ही रिश्ता. जबरदस्ती. लूट. . .मार छीः कुछ फर्क नहीं. परिवर्तन नहीं.

स्पर्श.

गंध

शब्द.

सबकुछ वही. बासा. सडा-सडा-सा.

अति परिचय से मरा-मरा.

—मां कहानी कहो ना.

—राजा बेटा कौन-सी कहानी सुनेगा?

—कहो ना अच्छी-सी.

राजा ! हां वह उसे हमेशा राजा ही कहती थी. वह कहता था, कैसी है सुंदर. . .सुंदर.

—मां

—अं ?

—कहो ना कहानी मां

—अच्छा सुन.

—बेटे एक दिन खूब बरसात हुई, बड़ी-बड़ी बूंदें, घनी-घनी बूंदें.

—आज बरसात हो रही है वैसी ही ?

—हां बेटे.

—आगे क्या हुआ मां ?

वह सोचती रही आगे क्या कहूं? बरसात आयी

शायद कोई है

• ज्योत्स्ना देवधर

उसकी खूब याद आयी. फिर. . .?

—मां. . .

—हां बेटे सुन. . .खूब धुआंधार बरसात आयी चिड़िया का घर था मोमका, कौए का घर था गोबर का. चिड़िया का घर बरसात में भी वैसे ही रहा, कहीं कीचड़ नहीं, कहीं माटी नहीं. . .

—लेकिन मां कौए का घर था गोबर का, वह बह गया. . . .

—आं? नहीं बेटे, अगर उसका घर बह गया तो वह कहां जायेगा ? उसका है भी कौन ?

—मां, अभी भी वह बरसात में ही भीग रहा है.

—नहीं राजा बेटे, वह चिड़िया के घर आता है, कहता है. . .

—मां वह कहता है, चिड़िया दीदी दरवाजा खोलो. . .दरवाजा खोलो.

—चिडिया ने दरवाजा खोला?

—नहीं

—क्यों?

—यों ही बेटे, यों ही . .



● किरण गोकुल

—उसको दरवाजा खोलना चाहिए, हमारी सिस्टर हमेशा कहती है, पड़ौसी से प्यार करो.

—पड़ोसी से प्यार करो, ऐसा कहा सिस्टर ने?

—हां. क्यों?

—नहीं, पड़ौसी से प्यार नहीं कर सकते बेटे..

—क्यों? वह बुरा होता है?

—नहीं खूब अच्छा, प्यार...

—फिर?

—वह बोली नहीं, बच्चे को सहलाती रही. बच्चा अं...अं करता रहा. थोड़ी देर बाद मां के पेट पर पैर डाल कर सो गया. उसे अच्छा लगा. वह सोचती ही रही, सोचती ही रही. स्टडी में से रौशनी आ रही थी. उसे लगा, आज रात भर ये काम करते रहें तो अच्छा हो, आज वह अकेली सोना चाहती थी. आज उसे कोई छुये नहीं. नहीं तो उसका शरीर बोल जायेगा. उसकी आत्मा की भाषा शरीर बोल डालेगा.

लेकिन यह शब्दहीन भाषा हर कोई जान लेता है?

वह समझ लेता था.

छोटा-सा स्पर्श वह पहचान लेता था.

लेकिन ये? उन्हें तो यह भाषा समझती नहीं.

तो क्या हुआ. अधिकार तो है, अनबोली भाषा न भी समझे तो क्या हुआ.

उसे लगा वह गुलाम है, लाचार है, पराधीन है, बंधनों में जकड़ी है. लगा, यह सब तोड़-फोड़ दूं. सब खतम कर दूं, उसने बच्चे के पैर हटा दिये. बच्चे ने करवट बदली. मां के गले में अपने मक्खन से हाथ डाल दिये.

वह उन रेशम से हाथों पर हाथ फेरती रही. ममता से, प्रेम से, उसकी आंखें भर आयीं. ये रेशमी पाश टूटेंगे नहीं. कभी नहीं.

इसीलिए शायद चिड़िया ने कौए से कहा होगा.

ठहरो अभी अपने बच्चे को दूध पिला रही हूं...

बच्चा बड़ा होगा. उसको शादी होगी. उसकी पत्नी आयेगी.

फिर लेगी वह कौए को अपने घर में?

आज बच्चे के पाश गले में,

कल पोते के पाश.

ऐसी ही बरसात थी, बड़ी-बड़ी बूंदों वाली. भरी-भरी बरसात. वह आया था. भीगा-भीगा अपना आंचल उसके सर पर डाल कर उसने उसके घुंघराले बाल पोंछे थे. उसे छाती के पास खींच लिया था...

उसने धीरे से कहा था—अब काजल लगा दे... बच्चा हूं.

—कौन है? मां ने पूछा था.

—कोई नहीं मां, सहेली है.

—अच्छा...अच्छा.

अंधी मां जपमाला लिये चुपचाप बैठी रही. उस बरसात में दोनों ने चाय पी, नाश्ता किया. दोनों ने एक दूसरे को बांहों में भर कर गरमी दी, वह शांत हुआ, चला गया.

उसने मां को धोखा दिया?

मां को या अपने आपको? या दुनिया को?

शायद सबको लेकिन उसे नहीं.

सच?

वह उस घर में जा नहीं सकती थी.

उसका रास्ता रोक कर उसकी पत्नी खड़ी थी.

—राजा, मुझे शादी करनी होगी. मां अब मानती नहीं.

—लेकिन हम दोनों ने जन्म भर एक दूसरे का साथ देने की कसम खायी थी.

—हां मेरे राजा, लेकिन तुम जो बंधन में बंधे हो.

—रानी, नाममात्र के लिए, मैं अकेला ही हूं.

—लेकिन अधिकार तो उसका है.

—वही बातें कितनी बार दोहराओगी?

कितना कहा-सुना, मां नहीं मानी, आखिर उससे कहा—जा रही हूं, अपने आपको सम्हालना. अपना ढहता घर बचा लेना...

—कभी तुम्हारे दरवाजे पर आ कर खड़ा रहूं, तो अंदर लोगी?

—जरूर, कभी भी चले आना.

—ना, तुम यह नहीं कर सकती.

—क्यों नहीं? क्यों न कर सकूंगी? जवानी तो जैसे-तैसे निभ जायेगी लेकिन बुढ़ापे में एक दूसरे को सहारे की जरूरत होगी. एक साथ जिये नहीं, एक साथ मर तो लेंगे.

—ना, इतनी उम्र जीना नहीं चाहता. झुका, थका, खांसता, तुम्हारे दरवाजे पर आ कर क्या दूंगा, क्या लूंगा?

—राजा, प्लीज इतनी उदास बातें मत करो... मेरी कसम.

—अब कसम दिलाने से क्या फायदा? कौन हो अब तुम मेरी?

उसके बाद वह कभी आया नहीं, मिला नहीं. कुछ महीने कितनी बेचैनी से काटे. सुख का क्षण जैसे नोंच खींच कर बीतता. अब तो यादगार भी पुरानी हो गयी. जंग लगी यादें. उन उफनते दिनों में आता तो वह सचमुच सब कुछ छोड़छाड़ कर चली जाती उसके साथ. अब आया तो? यह बच्चा...वह बेबी. अब आया तो वह न जायेगी.

पति?

प्रतिष्ठा?

समाज?

वह सोचती रही. अब वह अकेली नहीं है. बच्चे हैं, समाज में लोग सम्मान से जानते-पहचानते हैं. पति भी बुरे नहीं. यह घर...यह सब फर्नीचर, गहने, कपड़े, क्रोकरी, बरतन, ...ना अब वह कैसे जा सकती है. कितने बंधन हैं, कितने पाश हैं!

सोचती रही. न जाने कब आंख झपकी.

स्टडी में जलती बत्ती बुझी. दो पैर पास आये. मां, बच्चे पर लिहाफ डाल कर अपने कमरे में चले गये.

वह जाग गयी. आंखें फटी-फटी रह गयीं.

हवा बह रही थी—तेज हवा. बरसात बरस रही थी. उई मां...दरवाजे पर कौन है? कौन दरवाजा खटखटा रहा है?

वह? आया है? इतनी बरसात में? आधार, आसरा मांगने?

वह इतने साल अपनी बाट जोहता रहा?

प्यार करता रहा? कसमें? स्पर्श? अभिवाचन?

और वह? प्रतिष्ठा, पैसा, बच्चे-पाश में वह?

दरवाजे पर किसी ने फिर से दस्तक दी.

वह एकदम झटके के साथ उठी. लिहाफ अलग जा गिरा. बच्चा खुला खुला हो गया.

वह कांपते पैरों से दरवाजे के पास आयी.

वह बरसात में भीग रहा है. वह खड़ा है. प्रतिक्षा में. अब वह जरूर उसे घर में लेगी.

माया, ममता, सुख देगी.

उसका अकेलापन खतम कर देगी.

उसने दरवाजे की सांकल पर हाथ रखा, और अचानक डर कर पीछे हटी.

उसके सुखी दरवाजे पर मादाम बोआरी की लाश टंगी थी.

फ्लाबर्ट की नायिका...मादाम बोआरी.

प्रियतम ने दगा दिया

उसने विष पी लिया. मादाम तड़प रही है, पूरा शरीर वेदना से खिंच रहा है.

होंठों की कोर पर खून जमा है, आंखें फूट पड़ी हैं.

मादाम का पति. खूब-खूब प्यार करने वाला.

घबराई हुई छोटी-सी लड़की.

मृत्यु के द्वार पर खड़ी मादाम बोआरी.

वह भागी-भागी अपने पति के कमरे में आयी. पति के गले में हाथ डाले. उससे चिपकी पड़ी रही.

कितनी घबरा गयी थी. पुअर मादाम चिड़िया. चिड़िया का दरवाजा बंद है.

बरसात थमने का नाम नहीं लेती.

वह बाहर खड़ा है.

अकेला.

बेचारा कौआ. □□□

१२०५-१२०९ कौस्तुभ, शिवाजी नगर, पुणे-४



● बृहदेव

मुक्ति

• द्वारका प्रसाद

आज आनंद आयेगा––शाम को.

इस शाम का स्मिता को कितने दिनों से इंतजार था. उस शाम, जब आनंद आया था, और इस शाम, जब आनंद फिर आयेगा, के बीच कितना बड़ा अंतराल है. लगता है, जैसे युग बीत गया, युग-युग बीत गये. समय इतना लंबा हो सकता है. स्मिता ने कभी नहीं सोचा था.

सुबह पांच बजे ही नींद खुल गयी थी उसकी. कमरे में धीरे-धीरे प्रकाश आने लगा था. उसने साइड टेबल पर से रिस्टवाच उठायी, टेबल लैंप जला कर वक्त देखा, स्विच आफ किया, अंगड़ाई ली और सोचा––चाय तो पी ही लूं.

उठते ही सबसे पहले चाय पीने की आदत किसी जोंक की तरह पिछले ढाई वर्षों से उसके साथ चिपक गयी है. पहले सुबह बेड-टी लेने की बात ही क्या, वह कभी चाय को हाथ तक नहीं लगाती थी. कहीं जाओ, चाय ऑफर हुई और कहो–––एक्स्क्यूज मी, मैं चाय नहीं पीती. उसके सभी मिलने वाले इसे जानते थे, फिर भी हर बार उससे चाय के लिए पूछा जाता था और हर बार वह वही उत्तर देती थी––एक्स्क्यूज मी. . .पता नहीं, सुनने वाले को यह कैसा लगता था, लकिन स्मिता की समझ में नहीं आता था, लोग जान-बूझ कर क्यों उससे वही बात हर बार दुहरवाते हैं. वह चाय नहीं पीती जबकि उसके सर्कल के सभी लोग चाय पीते हैं, चाय पीना सभ्यता की निशानी समझी जाती है. चाय नहीं पी कर वह अपने को सबसे अलग कर लेती है और उसे लगता है, वह न सिर्फ औरों से अलग है बल्कि वह औरों से ऊपर भी है. यह सोच कर उसे बड़ा संतोष मिलता, उसे लगता, अपने अंदर ही मुसकरा लेने का यह मौका बड़ा सुखद है, मानो वह उसके शरीर में एक आरामदेह झुरझुरी छोड़ जाता.

लेकिन आज से ढाई साल पहले जब आनंद ने उसे चाय का प्याला आफर किया था तो वह इनकार नहीं कर सकी थी. एक्स्क्यूज मी, मैं चाय. . .जबान की नोक पर आते-आते रुक गया था. क्षण भर की झिझक-सी हुई थी और उसने थैंक्स कह कर हाथ बढ़ा दिया था.

फिर तो हर उस मौके पर, जब आनंद साथ होता, वह चाय पीती और मन-ही-मन कहती, चाय कितनी स्वादिष्ट पेय है! लेकिन उसके मन ने कभी यह नहीं कहा कि इतने दिन, अपने जीवन के पूरे छब्बीस वर्ष, उसने जो चाय नहीं पी उसने कुछ मिस किया था. वह वक्त और था, और जब आनंद ने चाय दी तो वह वक्त और था. दोनों की तुलना नहीं की जा सकती.

रफ्ता-रफ्ता चाय उसकी आदत बन गयी, जैसे आनंद उसकी आदत बन गया. इस आदत पर स्मिता ने अपना भी एक मुलम्मा चढ़ा दिया. आनंद को बेड-टी की आदत नहीं. वह गहरा सोने वाला था. एक बार जब वह नींद में खो जाता तो सुबह आठ बजे के पहले कभी नहीं जगता था. जगते ही वह पलंग पर से छलांग-सी लगा कर फर्श पर जा रहता था. एकाएक जाने कहां की हड़बड़ी उसके अंग-अंग में छा जाती थी. सीधे वह बाथरूम भागता था.

जब पहली मर्तबा स्मिता ने अपनी बगल से आनंद को उछल कर पलंग से उतरते देखा था तो उसने कहा था––चाय नहीं पीओगे?

आनंद ने––नो, आई डोन्ट टेक बेड-टी-कह कर बाथरूम का तेजी से रुख किया था तो उसे कुछ अजीब लगा था.

लेकिन यह आनंद की आदत थी. स्मिता को तो सुबह-सुबह उठ कर, चाय का प्याला ले कर, तकिए के सहारे टेक लगा कर धीरे-धीरे चाय की चुस्कियां लेते हुए पिछले दस बारह घंटों की अनुभूतियों को मन-ही-मन दुबारा भोगते हुए बहुत अच्छा लगता था. कभी-कभी तो पिछली शाम के यथार्थ अनुभवों से उनके खयाल उसे अधिक सिरहन दे जाते थे.

पहली दफा जब उसने पिछली शाम आनंद को दस बजे अपने फ्लैट से जाने दिया था. . . जाने दिया था क्योंकि उसे लगा था, उसका रुकना ठीक नहीं, उसे उस वक्त चला ही जाना चाहिए, तो सुबह उठ कर

हाथ में चाय का प्याला ले कर अपने तकिए के सहारे उठंगी हुई उसने एक नहीं, हजार बार पिछली शाम को जिया था.

उसके बाद तो ऐसी जाने कितनी शामें आयीं, एक पर एक आती गयीं, और प्रायः शामें रात के दो-दो, तीन-तीन बजे तक चलती रहतीं और स्मिता ने यह समझना छोड़ दिया था कि आनंद को सारी रात उसके फ्लैट में नहीं रहना चाहिए. जब कभी आनंद शहर में होता, भले हो। वह किसी भी होटल में ठहरता, किसी एक ही होटल में हर बार ठहरना उसकी आदत नहीं थी . रातें उसकी स्मिता के फ्लैट में ही गुजरतीं और ये रातें अधिकतर शाम सात बजे से ही शुरू हो जातीं. आनंद चाहता, ये शामें जरा और जल्दी शुरू हो जातीं, स्मिता भी ऐसा ही चाहती, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता था क्योंकि वह आफिस से साढ़े छह बजे के पहले किसी हालत में घर वापस नहीं पहुंच सकती थी. घर आ कर उसे आफिस के कपड़े बदलने होते थे, स्नान करना पड़ता था, हलका-सा शृंगार करना होता था और साथ ही बाई को रात के खाने के लिए आदेश देना पड़ता था. यह सब होते-होते आनंद आ जाता था, फ्लैट के अंदर "हैलो एवरीबॉडी" कहता हुआ दाखिल हो कर, ड्राइंगरूम के अपने मनपसंद सोफे पर बैठते हुए बाई को चाय का आर्डर देता था और स्मिता की ओर मुसकरा कर कहता था—सो?

स्मिता चाहती, जब वह आता है, सबसे पहले आ कर मुझे बांहों में क्यों नहीं ले लेता. उसके पैरों की आवाज सीढ़ियों पर सुनते ही उसकी नसें कुछ तन-सी जातीं. उस कभी नहीं मिलने वाले आलिंगन के लिए उसकी पेशियां, उसके शरीर की सारी त्वचाएं प्रतीक्षारत हो जातीं. वह जो कुछ भी करती रहती रुक जाता, जैसे चलते-चलते कोई फिल्म रुक गयी हो और एक ही फ्रेम की तसवीर सामने अचल हो गयी हो. ऐसा बस कुछ पल तक ही रहता, तब तक जब तक आनंद कमरे में प्रवेश करते ही—हलो एवरी बडी कह कर चाय का आर्डर देते-देते सोफे की ओर नहीं बढ़ जाता. उतने में स्मिता होश में आ जाती, उसकी प्रतीक्षा जिस तरह हवा के झोंके की तरह आती उसी तरह निकल जाती और वह सुनती—सो? वह मुसकरा देती, लेकिन उसके शरीर को लगता, अगर वह अपने को झटक सकता तो राहत मिलती.

★ ★

पूरे ढाई साल हो गये हैं आनंद को इस फ्लैट में आते हुए. स्मिता को इस फ्लैट में रहते हुए चार साल से कुछ ऊपर ही हो चुके हैं. किन परिस्थितियों में वह यहां आयी थी, कैसे वह यह नौकरी करने को बाध्य हुई थी, क्या हालत थी तब उसकी!

उसका विवाह आज से सात साल पहले उसी धूम-धाम से हुआ था जिससे किसी बड़े आदमी की एकमात्र लड़की का हो सकता था. पिता एक्साइज कमिश्नर थे. दो लड़कों पर यह एक ही लड़की थी. इसके जन्म के बाद ही मां का देहांत हो गया था. बड़े लाड़ से उन्होंने उसे पाला था. सीनियर कैम्ब्रिज तक की पढ़ाई उसकी कान्वेंट स्कूल में हुई थी. बापू बेटे बेटी के बीच की अपनी बातचीत की भाषा अंग्रेजी थी. हिंदी का व्यवहार घर में ज्यादातर नौकरों के साथ होता था या उन अभ्यागतों के साथ जो हिंदी छोड़ अंग्रेजी में चाहे तो बात नहीं कर सकते थे या करना नहीं चाहते थे.

स्मिता शुरू से ही पढ़ने में तेज थी. उन्नीस साल की होते-न-होते उसने फर्स्ट डिवीजन में बी. एससी. पास कर लिया था. वह एम. एससी. में ऐडमिशन लेना चाहती थी लेकिन उसके डैडी चाहते थे कि वह आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठे. स्मिता के लिए डैडी की इच्छा सबसे बड़ा कानून थी क्योंकि वह जानती थी, डैडी उसे जान से बढ़ कर प्यार करते हैं और खुद वह उन्हें उनसे भी अधिक प्यार करती थी. कभी-कभी भाइयों से उसकी इस बात पर अच्छी-खासी तकरार तक हो जाया करती. वह बड़े गर्व से कहती—डैडी मुझे सबसे ज्यादा चाहते हैं.

उसने आई. ए. एस. की तैयारी शुरू की. वह जानती थी, वह कंपटीशन में जरूर सेलेक्ट हो जायेगी. इस बात में डैडी या दोनों भाइयों को भी शक नहीं था.

तभी एक दिन डैडी शांतिप्रिय को साथ लिये घर आये थे और कहा था—स्मिता, यह शांतिप्रिय मेरे मरहूम दोस्त रामनाथ का लड़का है, अभी कई रोज हुए बिजनेस मैनेजमेंट का कोर्स करके स्टेट्स से लौटा है. आते ही रामपुरिया ब्रदर्स में डिप्टी जनरल मैनेजर लग गया है.

स्मिता को, या उसके दोनों भाइयों को, कुछ दिनों के अंदर ही यह समझ में आ गया कि डैडी शांतिप्रिय को क्यों इतना घर लाते हैं या जानबूझ कर स्मिता को उसके साथ अकेले घूमने-फिरने को क्यों उत्साहित करते हैं.

तीन महीने के अंदर-ही-अंदर सारा कुछ तय हो गया और स्मिता शांतिप्रिय की पत्नी बन ससुराल चली गयी.

स्मिता जब उन दिनों की बात सोचती है तो उसे लगता है मानों उस समय जो कुछ हुआ था उसमें वह नहीं थी. स्मिता नाम की जो नारी वह सब भोग रही थी वह कोई और थी. उसे लगता जैसे वह किसी सिनेमा में बैठ कर कोई फिल्म देख रही हो, पर्दे पर जो कुछ हो रहा है वह समझ पाती है, किसी खास दृश्य में उसके पात्रों की अनुभूतियां उसे छू भी जाती हैं लेकिन सारा समय वह जानती होती है कि जिन पर यह सब हो रहा है, वह कोई अन्य हैं जिनसे उसका अपना कोई संबंध नहीं.

स्मिता ने पलंग पर से उतर कर स्लीपर पांव में डाले और किचन में चली गयी. गैस जलायी, पतीली में पानी डाला और उसे स्टोव पर चढ़ा कर फिर से पलंग पर चली गयी. उसने तकिए सिरहाने एक पर एक रख दिये और उनके सहारे बैठ गयी.

आनंद की गाड़ी पौने छह बजे आती है. स्टेशन से होटल पहुंचने में लगभग आधा-पौना घंटा लगेगा. उसने लिखा है, वह इस बेर होटल रॉयल में रुकेगा. होटल में कमरा ले कर, सामान रख कर यहां आने में मान लो आधा घंटा और लग जाय तो भी सात-सवा सात बजे तक तो

आ ही जायेगा. कितने दिन हो गये इस बार आनंद को गये हुए. पूरे तीन महीने! ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ था. ढाई साल से वह स्मिता के पास आता रहा है. जब आता था कुछ दिन रह कर वापस चला जाता था. उसका काम ही ऐसा है कि उसे बंबई-दिल्ली के चक्कर लगाते रहना पड़ता है. पहले जब आता था तो हद-से-हद पंद्रह दिनों में आ ही जाता था. लेकिन इस बार उसकी कंपनी ने उसे शिलांग भेज दिया था. परिणाम यह हुआ है कि पूरे तीन महीनों से स्मिता का एक-एक रोआं उसकी प्रतीक्षा की अकुलाहट से तन-तन जाता रहा है. थैंक गॉड, इंतजार के दिन समाप्त हुए और आनंद आज शाम वापस आ रहा है.

स्मिता ने सोचा, वह आज आफिस नहीं जायेगी. आज सारा दिन अपने फ्लैट से बाहर नहीं जायेगी,, प्रतीक्षा का आखिरी दिन सिर्फ अपने साथ बितायेगी दस बजे फोन कर देगी, उसकी तबियत अच्छी नहीं. वह जानती है, उसका बॉस, स्वयं मैनेजर होते हुए भी, सारे काम अपनी असिस्टेंट मैनेजर स्मिता पर ही छोड़ देता है क्योंकि वह जरूरत से कुछ ज्यादा ही एफिशिएंट और कांशस है. वह जानती है, उसका फोन सुनते ही पद्मनाभन कहेगा, मिस सिंह आप नहीं आयेंगी तो अमुक ऐग्रीमेंट आज एक्जीक्यूट नहीं हो पायेगा और कंपनी को . . . लेकिन स्मिता उसे साफ कह देगी—— वह किसी भी हालत में नहीं आ सकती.

आज स्पेशल आकेजन है, स्मिता हर्गिज-हर्गिज नहीं जायेगी. स्मिता उठी. पानी उबल चुका था. चाय की पत्तियां डालीं, चाय बनायी और प्याले में डाल कर पलंग पर आ बैठी.

शादी के वे पहले दिन, कितने अच्छे थे वे! क्या यह सिर्फ सात साल पहले की बात है? जो लड़की दुल्हन बन कर शांतिप्रिय के साथ हनीमून पर गयी थी, क्या वह स्मिता ही थी? उसे विश्वास नहीं होता. मसूरी से नैनीताल, नैनीताल से रानीखेत, रानीखेत से कौसानी, कौसानी से अल्मोड़ा. पूरे दो महीने गुजारे थे उन दोनों ने. ऐसा लगता था मानो सारी दुनिया में शांतिप्रिय है और स्मिता. उनके अलावा अगर और किसी का अस्तित्व है तो मात्र उनकी जरूरतें पूरी करने के लिए. देखते-देखते ही तो वे दो महीने बीत गये थे. लगा था जैसे अभी कल तो आये थे और आज ही वापस जाना पड़ रहा था इस स्वर्गलोक को छोड़ कर.

शांतिप्रिय ने उसकी पढ़ाई की बात पूछी थी. उसने एम. एससी. करने की अपनी इच्छा की बात बतलाई थी लेकिन डैडी आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठने के पक्ष में थे इसलिए वह उसीकी तैयारी करने लगी थी. शांतिप्रिय ने पूछा था—— क्या अब भी आइ. ए. एस. करना चाहती हो? उसने जवाब दिया था—— अगर तुम अनुमति दो. शांतिप्रिय ने कहा था—— अब आई. ए. एस. करने की क्या जरूरत? स्मिता ने सहमत होते हुए कहा था—— जैसा तुम कहो.

हनीमून समाप्त कर अल्मोड़ा से सीधे अहमदाबाद वापस गये थे. शांतिप्रिय को कंपनी की तरफ से बंगला मिला हुआ था. जब कार फाटक में प्रवेश करने लगी थी तो शांतिप्रिय ने कहा था—— लो स्मिता, यह हुआ तुम्हारा नया घर. आज तक लोग इसे मेरा बंगला कहा करते थे, आज से सब इसे तुम्हारा घर कहा करेंगे.

स्मिता ने उत्तर दिया था—— मेरा घर नहीं, हमारा घर. और कह कर मुसकरा दी थी.

क्या वह स्मिता ही थी?

उस नये घर में रहते उसे अभी तीन महीने भी नहीं हुए थे कि एक दिन वह हुआ जिसकी कल्पना वह सपने में भी नहीं कर सकती थी.

जब शांतिप्रिय आफिस जाने के लिए बंगले से निकलने लगा तो सुबह से जो बात तय हो चुकी थी उसे दसवीं बार दुहराते हुए कार पर बैठा—— देखो स्मिता, तुम ठीक पौने छह बजे पूरी तरह तैयार रहना. ऐसा नहीं हो कि मैं आऊं और तुम कहो, बस, दो मिनट और. जरा आखरी टच दे लूं और साड़ी बदल लूं. मैं जानता हूं, तुम्हारे दो मिनट कितनी देर के होते हैं. ठीक छह बजे शो स्टार्ट हो जायेगा.

स्मिता ने कहा था—— मैं खुद यह पिक्चर पिछले साल भर से देखना चाह रही थी. मैंने तो समझा था, सेठियों के इस शहर में ऐसी पिक्चर तो कभी क्या आयेगी. पौने छह बजे क्या, मैं साढ़े-पांच बजे तक ही तैयार हो कर तुम्हारा इंतजार करती रहूंगी.

और सच ही पांच बजे वह तैयार हो गयी थी. साढ़े पांच बजे और पौने छह के बीच पंद्रह मिनट का वक्त इतना लंबा होता है उसे पता नहीं था. मिनट-मिनट पर घड़ी देखती और फिर खिड़की के पास जा कर फाटक के बाहर नजर दौड़ाती.

जब पौने छह बज गये होंगे और स्मिता बाहर बरामदे पर आ गयी होगी कि उसे इस तरह ठीक समय पर तैयार देख कर शांतिप्रिय को कैसा लगेगा? कितना आश्चर्य होगा उसे? कितना प्रसन्न होगा वह? और उसे फाटक के बाहर देखा होगा, उसके कान सड़क पर से करीब आती कार की आवाज सुनने को उत्सुक होंगे और उसने फिर देखा होगा, फिर-फिर देखती गयी होगी और बार-बार घड़ी की सुइयों की ओर देखा होगा और बड़ी सुई पौने छह की जगह से छह की ओर बढ़ गयी होगी और न तो कार की आवाज आयी होगी और न शांतिप्रिय तो उसे कैसा लगा होगा?

कैसा लगा होगा उस स्मिता को जब साढ़े छह बज गये होंगे और फिर सात और फिर आठ? — स्मिता सोच नहीं पाती.

जैसे-जैसे देर होती गयी थी उसकी बेचैनी बढ़ती गयी थी. अगर नहीं आना था तो फोन तो कर सकते थे. कितना गुस्सा आया था उसे. वह उबल-उबल पड़ रही थी. तभी अचानक उसे लगा—— कहीं कोई ऐक्सिडेंट? और सिहर उठी थी. उसने ऑफिस फोन किया था. वहां से उत्तर मिला था—— साहब सवा पांच बजे ही निकल गये थे. मन नहीं माना था तो उसने डायरेक्टरी में नंबर देख-देख कर अस्पतालों और नर्सिंग होमों को फोन किया

था. सभी जगहों से एक ही उत्तर मिला था— सवा पांच के बाद कोई एक्सीडेंट का केस नहीं आया है.

फिर वह कहां गया?

जाने कहां-कहां की बातें वह सोच गयी थी. उत्कंठा और चिंता में कपड़े बदलना भी भूल गयी थी. सवा आठ बजे सोचा, अब कपड़े बदल ले. तभी मन में आया— नाइट शो में फंस गया होगा, संभवतः ऐसी जगह पर जहां से फोन करना मुमकिन नहीं हो. कहीं सेठ ने तो नहीं बुला लिया? उसने चाहा, एक बार वहां फोन करके पूछ ले. लेकिन मन ने कहा— नहीं, यह ठीक नहीं होगा.

पिक्चर जाने वाले कपड़ों में ही वह साढ़े दस बजे तक बैठी रह गयी थी जब कि बहुत पहले ही नाइट शो का वक्त खत्म हो चुका था. खानसामा ने टेबल पर डिनर लगा दिया था. स्मिता ने उसे चले जाने को कह दिया था. कहा था, अब उसकी जरूरत नहीं. साहब आयेंगे तो वह स्वयं सब देख लेगी.

बिना खाये वह इंतजार कर रही थी.

साढ़े दस बजने के दो एक मिनट बाद ही बाहर का फाटक खुलने और कार के अंदर आने की आवाज आयी थी. स्मिता सोफे पर से नहीं उठी थी. अंदर-ही-अंदर उबलती हुई शांतिप्रिय के अंदर आने की राह देखने लगी थी.

और शांतिप्रिय दरवाजे पर आ कर खड़ा हो गया था. उसने कुछ लड़खड़ाती-सी आवाज में कहा था— हलो स्मिति. मीट माई फ्रेंड मिस रीता परेरा.

स्मिता के कानों में ये शब्द आज भी ठीक उसी तरह सुनाई पड़ते हैं, नशे से लाल आंखें और बगल में मिस रीता परेरा को साथ लिये दरवाजे पर खड़ा शांतिप्रिय आज भी वैसे ही दिखलाई पड़ता है लेकिन वह उस आवेश से सर्वथा शून्य होती है जो उसने उस दिन अनुभव किया था.

स्मिता ने कुछ कहा था, फिर शांतिप्रिय ने भी कुछ कहा था, और रीता परेरा चुपचाप बैठी थी, और स्मिता ने चाहा था, वह अंदर के कमरे में अकेला आता कि वह उससे कुछ कहना चाहती थी लेकिन शांतिप्रिय ने कहा था— रीता से उसका कुछ छिपा नहीं, उसे जो कहना हो उसके सामने ही कहे और स्मिता ने कहा था, उसे कुछ नहीं कहना. इस पर शांतिप्रिय ने कहा था— मुझे पता है, तुम क्या कहना चाहती हो. तो मेरा जवाब सुन लो, रीता इज माई गर्ल एंड आई ऐम नॉट गोइंग टू लीव हर बिकाज आव यू, अंडरस्टैंड? वह मेरे साथ रात को रहेगी, यहीं, इसी बंगले में. अगर तुम चाहो तो तुम भी अपना बॉय फ्रेंड रख सकती हो, यहीं, इसी बंगले में. आई डोंट माइंड, अंडरस्टैंड? यू आर फ्री जस्ट ऐज आई ऐम फ्री. अंडरस्टैंड?

और स्मिता ने अच्छी तरह समझ लिया था. इन्हीं परिस्थितियों में उसने लगभग तीन साल गुजारे थे. लेकिन हजारों बार चाहने पर भी शांतिप्रिय जिस आजादी की बात बार-बार कहता रहता था वह आजादी वह नहीं ले सकी थी.

* *

उसके डैडी आये थे. उसने उन्हें सब कुछ बतला दिया था. उन्होंने शांतिप्रिय को समझाने की कोशिश की थी. अंत में उन्होंने सलाह दी थी कि वह शांतिप्रिय से डाईवोर्स ले ले. स्मिता ने कहा था— वह सोचेगी.

* *

उसकी शादी के दो साल बाद डैडी चल बसे थे. दोनों भाई अलग-अलग जगहों पर काम करते थे. दोनों ने ही चाहा था, वह जिसके साथ चाहे रहे. लेकिन स्मिता ने स्वीकार नहीं किया था.

एक दिन उसने शांतिप्रिय से कहा था— मैं जा रही हूं.

उसने पूछा था— कहां?

—बंबई, कहा था स्मिता ने.

शांतिप्रिय ने सिर्फ इतना कहा था—डाईवोर्स हो जाता तो अच्छा था.

स्मिता ने उत्तर दिया था— कानून के अनुसार मैंने विवाह किया था, उससे मुझे जो मिला सामने है. मैं अब उसे मान्यता नहीं दूंगी. उसीसे तलाक मांगने नहीं जाऊंगी. मैं बिना डाईवोर्स लिए आज से अपने को मुक्त मानती हूं.

शांतिप्रिय ने शायद पूछना चाहा था— बंबई में करोगी क्या? रहोगी कहां? लेकिन पूछ नहीं सका था.

और आज से चार साल पहले स्मिता इस बंबई में आ गयी थी और तीन साल पहले उस फर्म में आ गयी थी जहां की असिस्टेंट है वह.

स्मिता की चाय समाप्त हो गयी थी. फिर भी हाथ में सॉसर और प्याला लिये वह चुपचाप बैठी थी.

बंबई आने के पहले उसने तय कर लिया था, वह वहां पहुंचते ही पूरी तरह आजाद हो जायेगी. उसने घर छोड़ दिया था, पति छोड़ दिया था, भाइयों के साथ रहने से इनकार कर दिया था. उसके पास इतने पैसे थे कि अगर पांच-सात साल भी उसे काम नहीं मिलता तो उसे तकलीफ नहीं होती. इस बीच वह आई. ए. एस. के कंपटीशन में बैठ सकती है, एम. एससी. कर सकती है. अगर कंपटीशन में नहीं भी आयी तो कहीं लेक्चरर तो हो ही जा सकती है. लेकिन यह सब कुछ होने पर भी वह पूरी तरह आजाद महसूस नहीं करेगी. उसे लगेगा, एक बंधन उसे अब भी जकड़े हुए है. तब तक वह उससे मुक्त नहीं महसूस कर सकेगी जब तक अपने शरीर का अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग नहीं कर सके. उसने निश्चय कर लिया था, यह आखरी बंधन भी बंबई पहुंचते ही वह उतार फेंकेगी.

बंबई आने के पंद्रह-बीस दिनों के अंदर ही उसे ऐसा अवसर मिला था. उसने जिंदगी में पहली दफा पूरी आजादी भोगी थी. वह आदमी भी अच्छा था. लेकिन उसके तुरंत बाद उसे बाथरूम जाना पड़ा था जहां वाशबेसिन में उसने उल्टी की थी. उसे आजादी के उन क्षणों में भी ऐसा लग रहा था जैसे उसकी सारी नसें तन कर फटने-फटने को हो रही हैं, उसके पेट में बड़े जोर की मरोड़ उठ रही थी. उसने चाहा था, कुछ देर रुक कर बाथरूम जाय वर्ना उसके साथी को बुरा लगेगा, लेकिन अपने को संभाल नहीं सकी थी.

उसके बाद दूसरे मौके पर भी ऐसा ही हुआ, और तीसरे पर भी. वह अपने को समझ नहीं पायी थी, ड्रिंक भी बदल कर देखा था. लेकिन जिस आजादी के लिए उसकी आत्मा तड़प रही थी हर बार उसके उप-भोग की चेष्टा उसके शरीर को ऐंठ-ऐंठ जाती थी. उसे लगता, मन उसे जो करने को कहता है शरीर उससे विद्रोह करता है. ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ था— तब भी नहीं जब शांतिप्रिय रीता को ले कर आया था, आता ही गया था और वह समझती थी, उसके सारे संबंध खत्म हो गये हैं. . .कई मौके उन तीन वर्षों के भीतर ऐसे आये थे जब वह इनकार नहीं कर सकी थी. लेकिन हर ऐसे मौके पर, जब उसका मन घृणा और वितृष्णा से विद्रोह करता होता था, उसका शरीर पूरी तरह उसका साथ देता था.

अब क्यों ऐसा हो रहा है? शायद इस आदमी में कुछ है. और स्मिता ने कहा, वह आदमी भी बदल कर देखेगी.

उसने ऐसा किया. सात महीने में कई बार ऐसा किया. हर बार उसे एक ही अनुभव हुआ. और उसने अपने आपसे कहा— नहीं, अब नहीं जिस सर्कल में वह मूव करती थी उसके मिलने वालों को आश्चर्य होता, मिस सिंह में यह परिवर्तन कैसे आ गया.

मिस सिंह जानती थी यह परिवर्तन कैसे लायी है वह, क्यों लायी है वह, लेकिन वह यह नहीं जानती थी कि उसे यह क्यों करना पड़ा, वह जानना चाहती थी.

और उसे अंदर-ही-अंदर अफसोस होता, वह आजाद नहीं हो सकी. जो अपने आप का मालिक नहीं वह आजाद कैसा? मन से भले ही वह अपने को आजाद महसूस करे, जब वह शरीर, जिसे आज तक अपना समझती आयी थी, उसके इस प्रयास में किसी तरह साथ देने को तैयार नहीं होता तो वह तो स्वतंत्र नहीं हुई.

उसने उस स्थिति से समझौता कर लिया. महीने पर महीना गुजरता गया. इस बीच उसे नौकरी मिल गयी थी. उसे लगा था, अब उसके जीवन का एक ढर्रा बंध गया और वह इसी तरह अपने आप में खुश, अपना काम करते, सबसे मिलते-जुलते अपना जीवन काट देगी. क्या बुरा था यह? क्या कुछ नहीं था इसमें? उसने मान लिया था, अपने जीवन के उस क्षेत्र में भी असफलता मिली थी जिसे वह आजादी की पूर्णता मानती. फिर भी क्या हुआ था? वह जैसे रह रही थी उसमें भी तो खुश रहा जा सकता था. लेकिन उसके मन के किसी कोने में भी एक हलका-सा असंतोष पल रहा था.

★ ★

स्मिता पलंग पर से उतरी, किचेन में जा कर सिंक पर प्याला-सॉसर रखा और स्नान घर में घुस गयी. उसने दांत ब्रश करते हुए शायद हजारवीं मर्तबा अपने मन में दुहराया— नहीं, आज ऑफिस नहीं जाऊंगी. आनंद तीन महीने के बाद आ रहा है. दस बजते ही फोन कर दूंगी.

ब्रश करके उसने कपड़े उतारे और बाथटब में घुस कर शावर खोल दिया. पानी की फूहारें उसके शरीर को सहलाने लगीं. कौन कहता है कि आत्मा ही सत्य है, शरीर माया है? क्या आत्मा का आनंद शरीर को मिलने वाले सुख की प्रतिछाया मात्र नहीं? आज स्मिता की आत्मा अपनी है, आजाद है, उसका शरीर भी अपना है, उसकी आजादी का साथी और भोक्ता है. कितना सुख है इस आजादी में?

लेकिन तब क्या हुआ था? क्यों उसे लगातार दस महीनों तक अपने आप में कुंठा पालते हुए संतोष का मुखौटा लगाये फिरना पड़ा था? अगर उस दिन अपनी कंपनी के काम से आनंद उसके ऑफिस में नहीं आता और उसकी कंपनी के उस काम में इतनी दिलचस्पी नहीं होती और स्मिता को ही यह सौदा पक्का करने की जिम्मेदारी नहीं मिलती तो क्या उसे वह अनुभव होता जो सर्वथा अप्रत्याशित रूप में उसे आनंद के साथ मिल गया था? उस दिन उसके सारे संबंध आप-से-आप खुल गये थे. उसका विद्रोही शरीर उस दिन पूरी तरह उसका सहयोगी हो उठा था मानो वह इसी दिन का इंतजार कर रहा था— आज वह परीकथा की वह राजकुमारी थी जो अपने राजकुमार के होंठों के स्पर्श की प्रतीक्षा में युगों से सोती चली आयी थी. ढाई साल हो गये थे इस घटना को. उस दिन उसने अपने आपको संपूर्ण रूप में मुक्त अनुभव किया था. कितनी खुशी हुई थी उसे!

पता नहीं कितनी देर वह नहाती रही थी. जैसे घंटों नहायी थी, उसी तरह ड्रेसिंग टेबल के सामने घंटों बैठी बालों पर ब्रश फेरती रही थी. बाई ने पूछा था— बाई, इतना देर होने को आया, ऑफिस जाने का नहीं है क्या? स्मिता ने कहा था— नहीं, आज वह ऑफिस नहीं जायेगी. साथ ही कहा था— देखो, दस बजे मुझे ऑफिस फोन करने की याद दिला देना. कहीं मैं भूल न जाऊं.

बाई ने "अच्छा बाई" कहा था और मन-ही-मन यह सोचते हुए कि जरूर आज कुछ खास बात है अपने काम में लग गयी थी.

दस बजे बाई जब स्मिता के बेडरूम में फोन करने की याद दिलाने को गयी तो देखा, ऑफिस के कपड़ों में तैयार, हाथ में पर्स लिये हुए वह बाहर आ रही है. उसने कहा— बाई, देखो, मैं आफिस जा रही हूं, शाम को देर से लौटूंगी.

बाई ने कहा— लेकिन बाई, तुम तो ओफिस नहीं जाने वाला था.

—मैंने विचार बदल दिया है, कहा स्मिता ने और फ्लैट से बाहर निकलते हुए कहा— और देखो, तुम शाम छह बजे फ्लैट में ही रहना. आनंद साहब का फोन आये तो कह देना, मैं देर से लौटूंगी. पूछें, कहां गयी हैं तो कह देना, कुछ कह कर नहीं गयीं.

बंगले के बाहर आ कर उसने पड़ोस वाले मकान से ऑफिस को फोन किया— वह आज नहीं आ रही है.

फोन करके सड़क पर आयी टैक्सी पर बैठी और ड्रायवर को कहा— पवई लेक.

सीट पर उठंग कर उसने पांव आगे की ओर फैला दिये, सर को झटका दिया, गहरी सांस ली और अपने आपसे कहा— आज मैं दूसरी बार पूरी तरह आजाद हो सकी हूं. □□□

५, गांधी मार्ग, रांची –८३४००१

रेत के पौधे

• ओंकार ठाकुर

वह घर वापस आया, तो ठंड की शाम पूरी तरह घुल गयी थी. उसका घर अंधेरे में दुबक-सा गया था. मां दालान में बैठीं उसका इंतजार कर रही थीं. उन्हें अब कम दिखने लगा है. अकेले में मां घबराती भी हैं. पता नहीं कौन-सा भय उन्हें सालता रहता है. रात में उनके पास खाट पर बैठ कर जब वह 'टाइम्स आफ इंडिया' का बंबई एडीशन पढ़ता है, तो मां उसके हाथ से अखबार झटक कर घर में दिन भर अकेले रहने की शिकायत करती हैं. वह सुन लेता है, चाह कर भी बोल नहीं पाता.

खाट पर लेटने के बाद भी अकेलेपन का बोझ उसके शरीर से चिपका रहता है. फिर धीरे-धीरे गल कर उसके रक्तकणों में पहुंच जाता है. वह देर तक माथे की फूली नसों को दबाता रहता है. उसने दूर से ही देख लिया था. घर की काली पड़ती जा रही खपरैल काफी दूर से दिख जाती है. घर के सामने छोटा खाली मैदान है. नीम का पेड़ उसके घर के पीछे है. मां हमेशा अपने हाथ से लीपी धरती पर ही बैठती हैं, कमरे से कुरसी बाहर ला कर नहीं बैठतीं. बैठ जाती हैं, तो उठने में उनके जोड़ों में दर्द होता है. उठते समय उनका चेहरा लाल हो जाता है.

मां के कहने पर उसने डाक्टर मित्र से इस दर्द के बारे में पूछा था. डॉक्टर ने साइटिका कहा था. कहा था कि चिंता की बात नहीं है, इस उम्र में बहुत लोगों को यह दर्द हो जाता है. उसने डाक्टर की बतायी गोलियां मां के हाथ में रख दी थीं. गोलियों के ऊपर की पन्नी देख कर मां का चेहरा कुछ पल के लिए हलकी चमक से पुत गया था. वैसे, अब मां हंसती या मुसकराती नहीं हैं. धीरे-धीरे तमाम रिश्ते भी भूल रही हैं. कभी उसे भी भूल जाती हैं——उसका नाम और रिश्ता.

पिछले दो-ढाई बरस से यह होने लगा है. पहले कभी नहीं हुआ. मां को ले कर अब वह किसी आशंका से घिर गया है. उसने यह मां से नहीं बताया. बताने का भी अर्थ नहीं है. और सच तो यह है कि अगर कुंती उसे यह सब न बताती, तो वह पता नहीं कब तक मां की इस मानसिक दशा से अपरिचित रहता.

कुंती मां के पास आ कर बैठा करती थी. एक दिन कुंती ने उससे कहा था—— बस, स्कूल मास्टरी ही करते रहोगे या मां का भी ध्यान रखोगे! कुंती और भी कुछ कहती, पर उसका चेहरा देख कर चुप हो गयी थी. उस रात अक्षरों के पीछे से कुंती का चेहरा बार-बार झांकने लगता था. कुंती के चेहरे पर चिपके कई अर्थों वाले एक और चेहरे को वह अपनी हथेलियों में दबाना चाहता था.

वह पास आ गया तो मां ने देख लिया. कुछ पल स्थिर हो कर वह सीढ़ियों के पास खड़ा रहा और हाथ टेक कर मां का तकलीफभरा उठना देखता रहा. उसे लगा कि मां उसे देख कर सब कुछ व्यवस्थित कर लेने के प्रयास में जुट जाती हैं. उसके वापस आ जाने से घर में नये सिरे से दिन शुरू होता है. दिन भर मां से जो भी छूटता रहा है, अनायास ही मां की पकड़ में आ जाता है.

मां खड़ी हो गयीं तो उन्होंने पूछा——आ गया बबुआ?

——हां, मां. उसने कहा.

फिर मां भीतर जाने लगीं. वह भी अपराधी मा[ि]से मां के पीछे चलने लगा. उसे लग रहा था कि दिन भ[र] की थकान के बावजूद भी वह बेफिक्र नहीं है. घर आ क[र] भी वह अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर पाता. भीतर जलता हुआ भय उसकी कनपटियों को गर्म करता रहता है. मां के चेहरे पर भूल कर भी तृप्ति का भाव नहीं आता. उसे पा कर पल भर के लिए ही मां के चेहरे की झुर्रियां अपनी संख्या कम कर लेती हैं. लेकिन जल्दी ही गहरी हो जाती हैं. अपने घर में ही वह उपेक्षित हो जाता है. मां की तरह.

मां सिर खुला नहीं रखतीं. लेकिन उनका सि[र] हमेशा ढंका भी नहीं रहता. पल्लू बार-बार कंधे पर गि[र] जाता है. मां के सफेद बाल वह अकसर देखता रहता है. मां के बाल पूरी तरह सफेद हो गये हैं. इसका उन्[हें] स्मरण नहीं है. वह शेव करने लगता है, तो मां कभी-कभी उसका आईना उठा कर अपना चेहरा देख लेती हैं. उनके चेहरे पर किसी तरह का भाव नहीं आता. जैसे वह पहचाना हुआ चेहरा हो, उसमें कोई परिवर्तन न पा कर वे खुश हों.

अंगीठी जल रही थी. मां ने कोयला डाल दिया. फिर पूछा——चाय पियेगा?

——पी लूंगा. बना दो. उसने खड़े-खड़े कहा.

——मुंह-हाथ धो लिया?

——अभी धो लेता हूं.

——आज देर कर दी. . . .

——हां.

——रोज ही तो देर से आता है.

——क्या करूं, मां. . . .

——अजीब नौकरी है ! क्या करता है?

——पढ़ाता हूं.

——पढ़ाता है?

——हां, मां. कल बताया था न.

——क्या पढ़ाता है?

——पेड़-पौधों के बारे में

——कौन-सी क्लास?

——बड़ी क्लास.

फिर मां चुप हो गयीं. उन्होंने एक बार उसे आत्मी[-]यता और बेहद खुलेपन से देखा भर था. जैसे बड़ी क्लास सुन कर अच्छा लगा हो उन्हें.

वह गुसलखाने चला गया. गुसलखाने से ही जै[से]

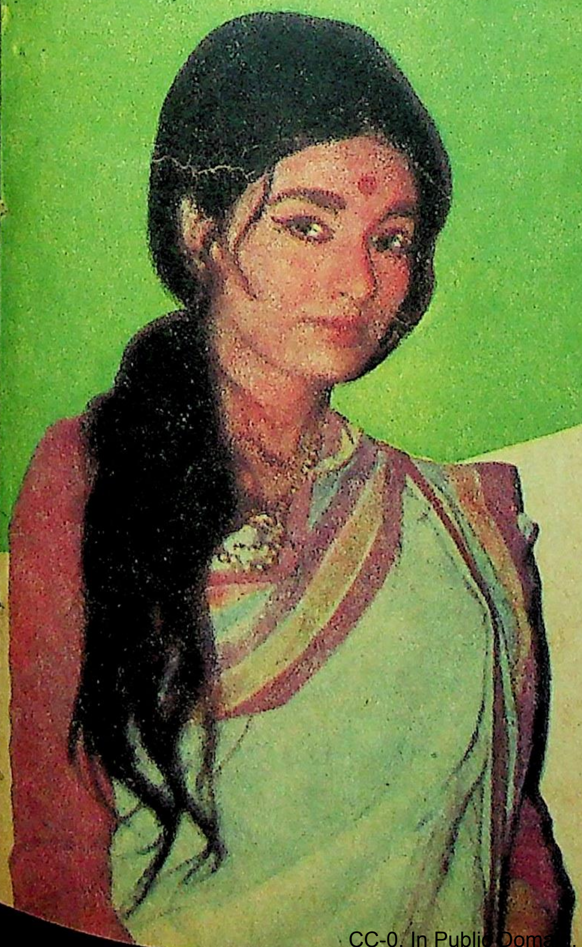
ह मां को देख सकता था. मां ने चाय का पानी चढ़ा दिया. दूध डाल दिया. अब शक्कर डाल रही हैं. सुबह भी मां यह सब करती थीं. सुबह सबसे पहले उठ कर पूरे घर में झाड़ू देती थीं. पानी भरती थीं. जल्दी ही नहा लेती थीं. चाय बना कर उसके पास आ जाती थीं. उसके साथ ही चाय पीती थीं. उसे देखती रहती थीं. कभी पूछती थीं—भूख तो नहीं लगी?

वह मना कर देता था. सोचता था कि मां को कौन तकलीफ दे. उसके सामने ही मां खाना बनाने लगती थीं. लेकिन वह घर से खाना खा कर नहीं जाता था. पड़ोस का रिक्शे वाला उसका खाना स्कूल पहुंचा देता था. वह बहुत सुबह लाला हरदयाल के यहां ट्यूशन पढ़ाने चला जाता था. मां यह जानती थीं.

वह तौलिया निकाल रहा था. खूंटी पर लटका था. चाय की पत्ती डालते हुए मां ने कहा—मैं तो भूल ही गयी. . . ले, यह चिट्ठी आयी है. चिट्ठीरसा दे गया था.

उसने मां की तरफ नये ढंग से देखा. उसे मां के चेहरे के आसपास एक और चेहरा दिखने लगा. मां के आसपास फैले स्याहीभरे उजाले में उसने चिट्ठी पढ़ डाली. हाथ में लिये वह मां के पास बैठ गया. मां चाय छान रही थीं.

गिलास उसकी ओर बढ़ा कर मां ने पूछा—क्या लिखा है?



अभी पढ़े हुए शब्दों का अर्थ निकालने लगा वह. निहायत जरूरी अर्थ मां से वह कहना चाहता था. उसी की तलाश में लग गया. कुछ देर तक द्विविधा में पड़ा सोचता रहा. फिर उसने कहा—कुंती की चिट्ठी है.

—कुंती की चिट्ठी है? क्या लिखा है?

मां ने दुबारा पूछा था. उसे याद आ गया. आसपास की दीवारों पर नाचती परछाइयां वह देखने लगा. उसने चाय का बड़ा घूंट लिया. उसके मुंह से हलकी-सी आवाज निकली. मां ने उसे फिर देखा. उससे कुछ सुनना चाहती थीं.

उसने कहा—कुंती आ रही है.

मां ने अपने लिए चाय नहीं बनायी थी. शाम को मां चाय नहीं पीतीं. उसे देखने लगीं. काफी देर तक देखती रहीं, जैसे कह रही हों कि बोलता क्यों नहीं. कुछ बोल. या पूरी चिट्ठी ही पढ़ कर सुना दे. फिर मां ने ही कहा—कुंती आ रही है. अभी पिछले महीने ही तो गयी थी. बहुत जल्दी आ रही है!

—जल्दी कहां.

—और नहीं तो क्या. . . ससुराल से लड़कियां इस तरह भाग कर घर नहीं आया करतीं. ठीक नहीं कर रही है कुंती.

—उसका घर यह भी तो है, आ गयी तो क्या होगा.

—तू नहीं समझेगा. तू अब बहुत पढ़ने लगा है. ये बातें किताबों में नहीं लिखी रहतीं. दुनियादारी की बातें हैं.

—लेकिन, मां. . .

—अरे, बबुआ, मेरे घर में बहू आ जाये तब देखना. कभी मायके नहीं जाने दूंगी. इस तरह जवान लड़कियां बार-बार घर नहीं आतीं.

—जो हो, मां. आ तो रही है. कल शाम. मुझे बुलाया है.

—कल शाम ही आ रही है. और उसी वक्त तुझे बुलाया है. मां ने अचरज व्यक्त किया. अपनी आवाज में उन्होंने आसपास की बहुत ठंड भर-सी ली थी. उनकी आवाज कांप भी रही थी. उसे बुरा लगा.

उसने कहा—मां, काफी ठंड है. तुम शाल तो डाल लो.

—ठीक है, रे.

—और मां, कुंती अब बच्ची तो नहीं है. हो सकता है शर्मा जी ने ही उसे बुलाया हो. या घर का और कोई काम हो.

—हूं.

—मां.

—क्या है?

—अब खाना भी दे दो. आज रात कुछ काम करना है.

—खाना? अभी?

—घर के लिए कुछ सामान तो नहीं लाना?

—नहीं. सब है. राशन की शक्कर भर लानी है.

वह मैं दिन में किसी से मंगवा लूंगी. तू तो देर से आता है.

—तो खा लेता हूं.

—बैठा रह. थाली ले कर आती हूं.

मां उठ कर भीतर गयीं. बर्तन बगल के कमरे में रहते हैं, जहां मां सोती हैं. दो ही तो कमरे हैं. एक मां के लिए, दूसरा उसके लिए. मेहमान उसीके कमरे में ठहरा करते हैं. वैसे उसके यहां मामा भर आते हैं, पास के देहात से, साल में एकाध बार.

खाट पर लेट कर वह सोचता रहा. मां भी लेट गयी थीं. शायद उन्हें नींद आ गयी थी. लेटते ही मां को नींद आ जाती है. लेकिन रात में कई बार जागती हैं. उसके कमरे में भी आती हैं. महरिन के बारे में शिकायत करती हैं या उससे बार-बार सोने के लिए कहती हैं. कभी उसके हाथ से किताब भी छीन कर अलग रख देती हैं. वह कुछ नहीं कहता. बाद में मां को समझाता है. कहता है कि कल पढ़ाने के लिए उसका आज पढ़ना जरूरी है. आज रात में नहीं पढ़ेगा तो बच्चों को ठीक से पढ़ा नहीं पायेगा. मां मान जाती हैं. लेकिन अविश्वास की पतली-सी लकीर चेहरे पर जरूर खींच लेती हैं.

मरने से पहले पिता की भी अजीब आदतें हो गयी थीं– उसे याद आता है. घंटों पूजा करते रहते थे. ढेर-सा प्रसाद बांटा करते थे. सप्ताह में कई दिन फलाहार करने लगे थे. कई बार उसके प्रिंसिपल से आ कर मिले थे. पता नहीं क्या बातें करते रहते थे. एक बार अकेले इलाहाबाद चले गये थे. फिर काशी भी चले गये. वह कई दिनों तक मां के साथ परेशान रहा. पिता के बारे में सोचता रहा. कहीं कुछ हो न गया हो. मां ने कुछ नहीं कहा. जैसे वह पिता की आदत जानती हों. या आश्वस्त हों कि उन्हें कुछ नहीं होगा.

बीमार पड़ने पर पिता ने अपना इलाज भी ठीक से नहीं कराया था. कहने लगे थे कि मरना है तो इलाज से क्या होता है. कुछ दिन नाव और सरकेगी. लंबी जिंदगी में कुछ दिनों का कोई अर्थ नहीं होता. वह पिता का विरोध नहीं करता था. विरोध करने पर पिता जिद्दी हो जाते थे.

मां के साथ यह कुछ नहीं है. मां की आदतें विचित्र नहीं हैं. उन्हें बीमारी भी नहीं है. ले-दे कर बस अकेले रहने से घबराती हैं. और वह भी तो तनहाइयों से घबराता है. घर और बाहर की तनहाइयों से.

कभी-कभी उसे अहसास होता है कि उसका घर उसके कान में कुछ फुसफुसा रहा है. तब वह चौकन्ना हो जाता है. उसे लगता है कि मां से इतनी जल्दी संबंध नहीं टूटेगा – वह टूटने नहीं देगा. मां बीमार पड़ीं तो चाहे प्राविडेंट फंड से पैसा ही क्यों न निकालना पड़े, वह मां का सही ढंग पर इलाज करेगा. फल खिलायेगा. थारो चैक-अप करायेगा.

उसे लगने लगा था कि अब वह घर में बिजली लगवा ले. दोनों कमरों में ट्यूब लाइट फिक्स करवा ले. गर्मियों के लिए कूलर भी ले आये. लेकिन फिर सारा सारा प्लान अगले बरस के लिए स्थगित कर देता था. कुछ पैसे तब तक और जमा हो जायेंगे. अभी से कर्ज लेने की आदत वह नहीं डालना चाहता था.

वह कुंती के बारे में भी सोचता रहा. क्यों आ रही है? पत्र में आने का कारण लिख सकती थी. बस, दो पंक्तियों का पत्र लिखने से क्या फायदा हुआ उसे. लिखावट भी सधी हुई है. पत्र उसने सोच कर लिखा है. समय की कमी के कारण घसीटा हरगिज नहीं है. बंबई से उस शहर में पत्र तीसरे दिन आ जाता है. और पत्र पांच दिन पुराना है. पोस्ट करने की तारीख भी उसने लेटे-लेटे देख ली थी. पोस्ट करने के दो दिन पहले कुंती ने उसे लिख लिया था. सब कुछ गड़बड़ा गया तो वह फिर मां के बारे में सोचने लगा.

★ ★

वह तेज चलने लगा. अभी काफी दूर चलना है. शर्माजी का दोमंजला मकान काफी दूर से दिख जाता है. उस गली में दोमंजला मकान शर्माजी भर का है. एक आगे है. किसी सिंधी ने नया बनवाया है. नीचे दुकान भी खोल रखी है.

जब वह कुंती के घर के पास पहुंचा तो अंधेरा हो चुका था. अपने-अपने घर के आगे लोग या तो खड़े थे या बैठे थे. कई लोग बच्चों को खिला रहे थे. यह सब देख कर उसे मतली-सी आने लगी. लेकिन वह उदास हो गया. क्यों आने लगी उसे मतली? पहले भी कई बार इस तरफ आया है. अनजाने में उसने कुंती से कह भी दिया था— जानती हो, तुम्हारे घर का नाम क्या रखा है मैंने?

कुंती ने आंखें फैला कर उसे देखा था. जैसे कह रही हो, सुनाओगे या बस पहेलियां ही बुझाओगे.

उसने सिर झुका कर कहा था—हैप्पी हाउस.

कुंती ने तपाक से दुहराया था— क्या कहा! हैप्पी हाउस!' फिर सोचने लगी थी. फिर कुरसी से टिक कर कहा था— क्यों? फिर वह उदास हो गयी थी. उसने कहा था— यह हैप्पी हाउस नहीं है. तुम मुझ पर व्यंग्य कर रहे हो!

वह सहम गया था.

★ ★

उसे याद है. वह दिसंबर का महीना था. इसी तरह कोल्ड-वेव आयी थी. अचानक कुंती ने उसे बुलवाया था. पड़ोस के एक लड़के ने खबर दी थी. कुंती दीदी आपको याद कर रही हैं.

वह चला गाया था. कोट भर ऊपर डाल पाया था. जीना चढ़ कर ऊपर गया था. कुंती कमरे में बैठी फफक-फफक कर रो रही थी. वह काफी देर कमरे में खड़ा रहा. कुंती की रुलाई थमने को नहीं आ रही थी. पास जा कर उसने कुंती का कंधा झकझोरा था और पूछा था— क्या हुआ कुंती?

लेकिन कुंती रोती रही. उसकी तरफ उसने देखा भी नहीं. अचानक शर्माजी कमरे में आ गये. उन्होंने उसे बताया — आज ही खबर आयी है. सुमेश ने जहर खा कर आत्महत्या कर ली.

—आत्महत्या! क्यों?

--पुलिस वाले जांच कर रहे हैं.

वह खड़े-खड़े सुमेश के बारे में सोचने लगा. एक ही लड़का है शर्माजी का. सुमेश इंजीनियरिंग पढ़ता था. वह बायोलाजी पढ़ता रहा. मैट्रिक तक दोनों साथ थे. सुमेश ने गणित ले लिया. उसने बायोलाजी. लेकिन सुमेश इंजीनियरिंग में लगातार फेल होता रहा. तीन बरस में वह इंजीनियरिंग का पहला इम्तहान पास कर पाया था. दूसरे साल भी वह कई बार फेल हुआ था. फिर तंग आ कर उसने पढ़ाई छोड़ दी थी. किसी तरह उसे नागपुर की एक फैक्टरी में काम मिल गया था. वहीं नौकरी करने लगा था. साल में दीवाली पर वह जरूर आता था. उससे मिलता था.

सुमेश आता तो अपने साथ रम की बोतल लाता था. दोनों मिल कर पीते थे. दो दिनों में पूरी बोतल खाली हो जाती थी. फिर सुमेश उससे मांग करता था. वह सुमेश को होटल ले जाता था.

उसे याद है. सुमेश की सेहत खराब हो गयी थी. वह रात-रात भर सो नहीं पाता था. उसे भूख भी नहीं लगती थी. उसने दो-चार बार उससे कहा था कि कहीं उसे कैंसर तो नहीं हो गया. डाक्टर छिपा रहे होंगे. उसने हंस कर टाल दी थी सुमेश की बात. लेकिन उसका मन आशंका से भर गया था. कौन जाने, हो भी गया हो. वह बंबई जा कर इलाज करवाना चाहता था. नौकरी भी छोड़ना चाहता था. लेकिन शर्माजी ने उसे प्रोत्साहित नहीं किया. उलटे उसे डांट भरे पत्र लिखते रहे. कुंती ने पिता का विरोध किया था. उसने सुमेश को लिखा भी था कि वह अपने खर्च से बंबई जा कर इलाज करवा ले.

लेकिन सुमेश के पास पैसों की कमी थी. वह बंबई नहीं गया. नागपुर में ही रहा. पैसे उसके पास भी कभी नहीं जुड़े. वह चाह कर भी सुमेश को देखने और उसके साथ कुछ दिन बिताने नागपुर नहीं जा पाया. हालांकि वह एक बार सुमेश से मिलना चाहता था.

शर्माजी को रिटायर हुए दस बरस हो गये हैं. फंड के पैसे से कुंती की शादी की थी. उनकी जिद थी कि कुंती की शादी किसी डाक्टर या इंजीनियर से ही करेंगे. चैन से खा तो सकेगी.

पहले अपने महकमे का लड़का खोजते रहे. पर जब कोई ठीक लड़का नहीं मिला, तो एक डाक्टर से शादी कर दी. नौकरी करते हुए शर्माजी ने मकान बनवा लिया था. बनवाया कहना ठीक नहीं, रेनोवेट कराया था. सामने का कमरा तुड़वा लिया था. और उसी नींव पर ऊपर तक खींच ले गये थे.

घर का सारा सामान भी नौकरी के वक्त का खरीदा हुआ है. नौकरी पर थे तो बड़ा दबदबा था. गुंडे उनसे कांपते थे. महाजन उन्हें इज्जत देते थे. घूस लेते उन्हें किसीने नहीं पकड़ा, पर कहते हैं, सारा पैसा घूस का ही है. पता नहीं.

पुलिस महकमे के बारे में उसकी जानकारी यूं ही कम है. और जो बात वह जानता नहीं, उस पर ज्यादा सोचे ही क्यों. फिर कुंती के कारण वह शर्माजी के बारे में अच्छे विचार रखता आया है. मन में बुरी बात हो, तो कभी-न-कभी तो निकल आती है.

--आपने किसीको लिख दिया होता, उसने कहा.

--मैंने किसीको नहीं लिखा. शर्माजी ने कहा.

--अब जांच का लाभ ही क्या है?

--न हो. पर पुलिस अपना काम तो करेगी. आत्म-हत्या का मामला है. इसीका तो खाती है पुलिस.

शर्माजी चले गये. कुंती सामान्य हो गयी थी. वह बैठ कर कुंती को समझाता रहा.

फिर कुंती ने कहा था-- चलो, भीतर. कुछ देर वहीं बैठना.

वह कुंती के पीछे-पीछे चला गया था. ऊपर बगल वाला कमरा कुंती का है. वहीं पढ़ती थी. उसके कमरे में किसीको जाने की इजाजत नहीं थी. हां, उसकी सहेलियां ही उस कमरे में जा सकती थीं.

काफी देर तक कुंती इधर-उधर की बातें करती रही. शर्माजी को ले कर वह चिंतित थी. कहा था--पिताजी का क्या होगा ?

--क्यों?

--उनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है.

--तुम तो उनका सारा काम करती हो. तुम्हारे रहते वे निश्चित हैं.

--लेकिन. . . मेरे बाद.?

--अरे, अभी कहां. तुम अभी यहीं रहोगी.

--नहीं, बाबूजी ने रिश्ता पक्का कर लिया है. कह रहे थे. उस दिन तुम्हें बुलाया था. घर भी गयी थी, लेकिन तुम किसी इम्तहान में बिजी थे. शाम तक बैठी रही थी तुम्हारे यहां.

--कुंती!

--ठीक कह रही हूं.

वह कुछ देर चुप रहा. सोच नहीं पा रहा था कि क्या कहे. कुंती का रिश्ता पक्का हो गया है. उसे बाद में मालूम हो पाया. दूसरे दिन भी कुंती से वह नहीं मिल पाया था. शायद कई दिन नहीं मिल पाया था. उसके फाइनल इम्तहान हो रहे थे. प्रैक्टिकल्स की तैयारी करनी पड़ती थी. सारा समय लैबोरेटरी खा जाती थी.

★ ★

आज याद करता है तो मन पर नीला-सा कुहासा छा जाता है. आसपास की धुंध भी आंखों में आंसू बन कर गलने लगती है. रात में वह महसूस करने लगा है कि उसे अब चश्मे की जरूरत पड़ेगी.

ऊपर का दरवाजा खुला था. उसने दूर से देख लिया था. कमरे में काला उजाला भरा था. सीढ़ियां चढ़ कर वह ऊपर चला गया. नीचे के कमरे में शर्माजी अकेले बैठे थे. वह उनके पास नहीं रुका. शर्माजी ने उसे देख लिया था. कुछ बोले नहीं. पहले उसका मन हुआ था कि शर्माजी से पूछे कि कुंती क्या कर रही है. लेकिन सीढ़ियां चढ़ते समय वह इसे याद नहीं रख सका. भूल गया.

उसने कुंती को देख लिया था. वह खड़ी हो कर साड़ी की सलवटें ठीक कर रही थी. जूतों की आहट से कुंती ने चौंक कर उसे देखा था. देख कर मुसकरायी नहीं. हालांकि वह उसे देख कर मुसकराये बिना कभी नहीं

रही. उसे याद है. उसे देखते ही कुंती मुसकराती है. फिर उससे बैठने के लिए कहती है. विदा लेते समय कुंती उसे नीचे के दरवाजे तक छोड़ने आती है. कुंती उसके यहां आती है, तो वह भी कुंती का सारा व्यवहार वापस कर देता है.

वह भीतर आया और बगैर किसी औपचारिकता के कुरसी पर बैठ गया.

कुंती घबरायी-सी कुछ पीछे हट गयी. फिर उसके सामने की कुरसी पर बैठ गयी.

उसने कुंती को गौर से देखना चाहा . लेकिन नहीं देख सका. कुंती उसे ही गौर से देख रही थी. कुंती ने ही कहा—मैं जानती थी कि तुम आज ही आओगे. न आते तो मैं और टूट जाती .

—क्यों? उसने आश्चर्य से पूछा.

कुंती ने सांस भरी. साड़ी ठीक की. बाल संवारे. सामने आ गयी चोटी पीछे की. पैर के ऊपर पैर रख लिया. शायद वह सीधे जवाब से बचना चाहती थी. वह कई मौकों पर ऐसा करती है. उसे जब सीधे जवाब से बचना होता है, तो वह भीतर से ऊन का गोला उठा लाती है. यह क्रूमिये से बुनने लगती है.

या हो सकता है, आज न बताना चाह रही हो. अभी दो-चार दिन आराम करेगी. सारी थकान उतारेगी. फिर उसे बुलायेगी, खिलायेगी और उस दौरान कोई वजनदार बात कहेगी. यह भी कई बार हो चुका ह. ठीक है, वह सोच लेता है. कुंती की भावना की रक्षा का खयाल उसके सामने सर्वोपरि होता है.

सोचते हुए कुंती ने कहा— आज ही सुनोगे?

—क्यों, आज क्यों नहीं?

—आज कितना सुना पाऊंगी.

वह कुछ नहीं बोला. कुंती ने फिर कहा — अभी तो यहां हूं. फिर कभी सुन लेना.

—कब तक हो?

—बहुत दिनों तक.

—मतलब?

—वह भी बताऊंगी.

यह कमरा कुंती सोने के लिए भी इस्तेमाल करती थी. अब घर में दो ही व्यक्ति बचे हैं. वह और शर्माजी. सुमेश नीचे का कमरा लिये था. दाहिनी ओर कुंती की कई साड़ियां टंगी थीं. बेतरतीब. शायद हैंगर भी उसने अभी नहीं निकाले. दोनों सूट-केस भी बंद रखे थे. एक ओर होलडाल लुढ़का पड़ा था.

बगल में काफी पुरानी मैगजीन पड़ी थी. उसने उठा ली. देखने लगा. फिर उसे लगने लगा कि वह जान-बूझ कर चुप है. उसने कहा—आज मैं बिलकुल खाली हूं. आज बता दो. अभी. इस तरह तुम्हारा मन भी हलका हो जायेगा.

—क्या बता दूं?

—वही, सब कुछ.

टोक दिये जाने से कुंती के चेहरे पर कई भाव आये थे. सोच के और झिझक के. उसने भी महसूस किया कि वातावरण व्यर्थ ही बोझिल हो रहा है और उसीके कारण हो रहा है. तब वह झुक कर बाहर देखने लगा. उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया. दरवाजे पर परदा लटका हुआ था.

कुंती ने पूछा—क्या पियोगे?

—मैं?. . . कुछ नहीं.

—क्यों?

—अभी खाना है. मां इंतजार करती रहती हैं, तुम जानती हो.

—तो क्या होता है! इतने दिनों बाद आयी हूं.

—पिछले महीने ही तो गयी थीं. ज्यादा दिन कहां हुए?

—एक माह कम होता है!

वह कुछ नहीं बोला. कुंती को देखने लगा. वह भीतर जाने लगी थी.

—कहां जा रही हो? बैठो.

—महरिन से चाय के लिए बोल आऊं. और आयी.

कुंती लौटी तो उसके हाथ में दालमोठ की प्लेट थी. उसने कहा—यह क्यों ले आयी?

—और क्या लाती?

—मेरा मतलब यह नहीं है. चाय भर ठीक थी.

कुंती उठ कर सूटकेस से साड़ियां और दीगर सामान निकालने लगी. कुंती उसकी उपस्थिति मानो भूल गयी थी. वह कुंती को देखता रहा. उसके कानों के रिंग अचानक चमक उठते थे. दो-एक बार कुंती ने कलाई-घड़ी देखी थी. यह अंतराल उसने जान कर दिया था शायद. वह उसे बरदाश्त करता रहा.

फिर खिड़की के फड़फड़ाते पर्दे देखते हुए कुंती ने पूछा था—मां कैसी हैं?

—ठीक हैं.

—उन्हें मेरे आने की खबर है?

—है. मैंने बताया था.

—क्यों?

—चिट्ठी तो मां को ही दे गया था, पोस्टमैन. उन्होंने पूछा था कि किसकी चिट्ठी है.

—क्या कह रही थीं?

—कह रही थीं कि तुम ससुराल से बहुत जल्दी वापस आ रही हो. पिछले महीने ही तो गयी थीं.

—तुमने क्या कहा मां से?

—मैंने तुम्हारा पक्ष लिया था. तुम्हारे आने का औचित्य समझाने की कोशिश की थी मां को.

—मेरे आने का कारण तुम्हें कैसे मालूम हो गया?

—मालूम नहीं था. इस वक्त भी नहीं मालूम. यूं ही अंदाज से कह दिया था कि कोई खास बात होगी, तभी आ रही हो.

वह कुछ नहीं बोली.

महरिन चाय रख गयी थी. वह खाने लगा था. बीच-बीच में चाय सिप करता जाता था. कुंती चाय के बड़े घूंट ले रही थी.

जितने उत्साह में भर कर वह कुंती के पास आया था, उससे ज्यादा ही उदासी उसके भीतर उतर

गयी थी. कुंती का उदास भाव कमरे में भरे हुए अंधेरे को और भी कुरूप बना रहा था.

उसने कहा—क्या बात है, कुंती? तुम सामान्य नहीं हो!

वह बोली नहीं. खड़ी हो गयी. फिर उसने खाली कप नीचे रखते हुए उसे आत्मीय नजरों से देखा. कुंती ने मुसकराने का प्रयत्न किया था. उसके गालों में मामूली भंवर की तरह उथले गड्ढे भी पड़ गये थे. लेकिन फिर वह संभल-सी गयी. उसका चेहरा कुम्हला गया.

कुछ देर द्विविधा में पड़े रहने के बाद कुंती कप-प्लेट समेट कर भीतर चली गयी. वह कमरे में फिर अकेला हो गया.

* *

एक दिन वह इसी तरह शर्माजी के पास अकेला बैठा था. उनसे मिलने आया था. जिस वक्त वह शर्माजी के यहां पहुंचा, शाम उतर आयी थी. वह अभी-अभी कहीं से लौटे थे. जूते भी नहीं खोले थे.

उस दिन पहली बार उसे लगा था कि शर्माजी असाधारण व्यक्तित्व के धनी हैं. दुनियादारी समझते हैं. संभल-संभल कर कदम रखना उनकी आदत बन चुकी है. एक-एक मिनट का हिसाब रखते हैं. जीवन की उनकी नाप-तौल में शायद ही कभी फर्क आया हो.

उसने गौर से देखा था, उन्हें. वह सामने देख रहे थे. हर कश के साथ काफी धुआं उगल रहे थे. यह चेहरा सुमेश के चेहरे से बिल्कुल भिन्न था. कई बार उसने इस बारे में सोचा भी था. बाप-बेटे के चेहरों में किसी तरह की समानता नहीं है. सुमेश का रंग साफ होने के साथ ही एक तरह का खुलापन लिये रहता था. ओठों पर मुसकराहट तिरती रहती थी. वह सब शर्मा जी के चेहरे पर नहीं था. यह दूसरा ही चेहरा लगा था, उसे.

उसने कहा था—आपने मुझे याद किया था. कल खबर मिली थी.

—मैं तो कल ही तुम्हारा इंतजार करता रहा था. तुम नहीं आये. आना था. जरूरी बात कहनी थी तुमसे.

—देर से घर वापस आया था. सोचा कि आप कहीं निकल न गये हों.

वह रुक गये थे. कहा था—यही तो दिक्कत है. आज की यह पीढ़ी बहुत गैर-जिम्मेदार हो गयी है. और जानते हो मैंने क्या सोचा था? लेकिन शर्माजी एका एक कुछ नहीं कह सके. सोचने-से लगे. फिर कहा उन्होंने—तुम्हारे बारे में ही सोचा था, मैंने. सोचा था कि तुम नौकरी करते हुए ऐसा कोई काम नहीं करोगे जिससे मेरे ऊपर किसी तरह की आंच आये. पर, तुमने सब गड़बड़ कर दिया.

उसने मार्क किया कि गड़बड़ शब्द पर शर्माजी ने जोर दिया था. अपने को संभालने की कोशिश में वह बेहद खोखली हंसी हंसने लगा था.

पहले वह शर्माजी के यहां जाता जरूर था. बहुत जाता था. पर कभी वह शर्माजी के पास नहीं बैठा. सीधा कुंती के पास चला जाता था. सुमेश था, तो उसीके पास बैठा रहता था. शर्माजी के कमरे से ही भीतर जाने का रास्ता था. शर्माजी कमरे में रहते भी थे, तो भी वह उनसे नहीं बोलता था. हाथ में चश्मा ले कर कई बार उन्होंने देखा था, उसे. उसने भी यह देख लिया था.

शायद उन्होंने उत्तर की आशा की थी. पर वह नहीं बोला कुछ. अधीर हो कर शर्माजी बोले थे—मिस्टर विलसन तुम्हारी शिकायत कर रहे थे. तुम बाहर बहुत ट्यूशनें करने लगे हो. सुबह स्कूल देर से भी पहुंचते हो. स्कूल का काम इस सबसे सफर होता है. . .यही सब है. .

वह चुप. आरोपों को स्वीकारता हुआ.

शर्माजी फिर चीरती-सी आवाज में बोले—मुझे नहीं मालूम था कि तुम भी वही सब करोगे, जो आम मास्टर करते हैं.

वह अपने एक मित्र की शादी में पटना जाना चाह रहा था. उसने मिस्टर विलसन से छुट्टी मांगी थी. मिस्टर विलसन ने छुट्टी देने से इनकार ही नहीं किया उसे खरी-खोटी सुना दी थी. उसका जाना जरूरी था. उसने मिस्टर विलसन को समझाने की असफल कोशिश की थी. यही कहने वह शर्माजी के पास आया था. तभी उसे समाचार मिला था कि शर्माजी उसे बुला रहे हैं. उस दिन वह बहुत भरा हुआ था. कहीं जाने का मन नहीं था. उसने सोचा था कि वह शर्माजी से कल मिल लेगा.

लेकिन उसे अपनी बात कहने का मौका ही नहीं दिया शर्माजी ने. उसे लगा कि शर्माजी नहीं, मिस्टर विलसन ही उसका अपमान कर रहे हैं. उसके अस्तित्व को चुनौती दे रहे हैं. उसे यह भी लगा कि वह अपनी सारी शक्ति संचित कर ले और इस टुच्ची मास्टरी को लात मार दे. कोई दूसरी नौकरी कर ले, यह शहर छोड़ कर कहीं और चला जाये—जहां उसका कोई परिचित न हो, जहां उसे काम करने की कम-से-कम सीमित आजादी हो. लेकिन उसे अपने पिछले दिन याद आ गये. . .अभी घाव सूखा भी नहीं है. वह एम. एस-सी. प्रीवियस में था, जब उसके पिता मर गये थे. घर में पैसा नहीं था. पिता ने बीमा भी नहीं कराया था. मां के पास गहने भी नहीं थे. उसका कोई भी रिश्तेदार नहीं था, जो उसे आर्थिक मदद देता. लिहाजा मां को सिंधी की दूकान के लिए पैकेट बनाने पड़ते थे, वह घर-घर जा कर छोटी ट्यूशनें करता था, अखबार के लिए लिखता था और किसी तरह पढ़ाई पूरी करना चाहता था. पढ़ाई के बाद फौरन नौकरी करना चाहता था.

इम्तहान के बाद उसे नौकरी नहीं मिली. कुंती ने शर्माजी से कह कर उसे एक एंग्लो-इंडियन स्कूल में नौकरी दिलवा दी थी. एक थर्ड डिवीजनर को नौकरी दिला दी थी, शर्माजी ने.

बहुत दिनों तक वह सोचता रहा था कि उसे नौकरी कुंती ने दिलवाई है या शर्मा जी ने. उसने इस बारे में कभी कुंती से चर्चा नहीं की थी. वह कुंती को हर्ट नहीं करना चाहता था. उस दिन उसने महसूस किया था कि परेशानियों का भी अंत नहीं होता. परेशानियां अपना मुखौटा भर बदल लेती हैं.

बुझा हुआ चेहरा ले कर वह वापस आ गया था. उसने कसम खायी थी कि वह भविष्य में कभी शर्माजी से मुलाकात नहीं करेगा. वह कभी कुंती के यहां नहीं जायेगा. कभी नौकरी छूट भी जाये, तो किसीके सामने हाथ नहीं फैलायेगा नौकरी के लिए.

* *

लौटते समय सब ठीक था, पर घर पहुंच कर उसका सिर दुखने लगा था. मां से उसने नहीं बताया था. लेट गया था. घना अंधियारा. उसे नींद नहीं आ रही थी. अपने और मां के बारे में सोचता रहा था. आंखें बंद करता था, तो शर्माजी और मिस्टर विलसन उसे दिखने लगते थे. उस पर थूकते हुए-से. उसकी आंखों को निकालते हुए-से.

अंधेरे में भी बनी अंधेरे की छायाएं वह देखता रहा था. चित्रपट की तरह. छायाओं का तांता. सभी उसे घूरती हुई. खिलखिलाती हुई. फुसफुसाती हुई.

शर्माजी का विकृत चेहरा उसकी आंखों में नीली रोशनी बन कर समा गया था. उसे डर लगने लगा था. वह उठ कर मां के कमरे में चला गया था. मां सो रही थीं. आहट पा कर उठ गयी थीं. पूछा था —— कौन है?

उसने कहा था—— मैं.

मां आवाज पहचान कर लेट गयी थीं. फिर कहा था—— जा, सो जा, बबुआ. बहुत जागने लगा है. मेरा कहा नहीं मानता. ये अच्छे लक्षण नहीं हैं.

उस रात उसे पहली बार अपना घर मिट्टी का घरौंदा लगा था. कितनी कच्ची गृहस्थी है उसकी! कितना बेबस है वह, उसका दो जनों का परिवार! कौन-सी दुश्मनी उससे निकाली जा रही है. कौन-सा रेगिस्तान उसके हाथ पर रखा जा रहा है.

उसे याद आया था. इसी कमरे में पिता की मौत हुई थी. किसी मरते आदमी का चेहरा उसने पहली बार देखा था. कितना विवश, कितना दयनीय, कितना एकाकी. आज वह भी अपने पिता के समान है. फर्क यही है कि वह दुनिया के लिए जिंदा है. उसे अभी जिंदा रखा जायेगा. उसे पिता की तरह जल्दी मरने नहीं दिया जायेगा.

लेकिन फिर सुबह आयेगी. उसे स्कूल की तैयारी करनी पड़ेगी. न आये सुबह, तो क्या हो? मगर सुबह को कौन रोक सकता है! वह आयेगी और उसीके लिए आयेगी. उसे स्कूल ले जाने के लिए. मिस्टर विलसन के कमरे के भीतर जा कर दस्तखत करने के लिए. बतलाने के लिए कि वह समय पर स्कूल आ गया है.

सुबह वह देर तक सोया रहा. सिर दर्द कम नहीं हुआ था. उसने जल्दी-जल्दी दरख्वास्त लिखी थी और स्कूल जाते एक लड़के के हाथ में थमा दी थी, मिस्टर विलसन को देने के लिए. कैसे जा सकता था स्कूल? सिर दर्द कम हो, जब न. पता नहीं, कब कम होगा.

मां से कह दिया था कि सिर दर्द है. छुट्टी ले ली है. मां ने उसका शरीर छुआ था. देखा था कि कहीं बुखार तो नहीं है. नहीं था. निश्चिंत हो कर सुबह का काम निबटा लिया था. फिर दवाई की एक टिकिया उसे खिला गयी थीं. दवाई खा कर वह फिर लेट गया था.

दोपहार के पहले ही मां ने खाना तैयार कर लिया था. मां उसे बुलाने आयीं, तब भी वह लेटा था. सिर दर्द नहीं था. मां ने पूछा भी था. उसने कह दिया था कि अब वह ठीक है. वह खाना खाने आया तो मां ने उसे डांटा था. उसकी चढ़ती उमर की चर्चा छेड़ दी थी. और उसने सोचा था कि मां ठीक कह रही हैं. उसके भले की कह रहीं हैं. कई बार वह तीखे उलाहने दे चुकी थीं. कहा भी था कि अपने बड़े भाई को लिखेंगी. और ब्याह वह अपने लिए कर रही हैं. आराम उन्हें होगा. अब उनकी कमर तो झुकने लगी है. गठिया का दर्द कम नहीं होता. आंख तो और खराब होगी.

उसे मालूम है, उसके बड़े मामा समाज के मुखिया हैं. उनके पास तमाम ब्याहे जाने वाले लड़के-लड़कियों की फेहरिस्त रहती है. उसमें उसका नाम होगा और जरूर होगा. उनके पत्र भी आते रहते हैं.

मां का घुमड़ता हुआ मन मुखर हो गया था. सब कह डाला था. एक ही तो औलाद है. वह भी कितनी मान-मनौवल के बाद हुई थी——कितने देवताओं का हवन-पूजन बाबूजी ने करवाया था. बचपन में चांदी का कड़ा डाला था, पैर में. दस बरस तक तो सिर भी नहीं मुड़वाया था. दूध का फोहा था वह. सर्दी-गर्मी से उसे बचाती रहीं. राजकुमार था एक तरह का. गरीब राजकुमार. क्या राजकुमार गरीब नहीं होते? बाबूजी यही कहते थे.

फिर ऊब कर पूछा था——तू क्या कहता है?

——मैं मामा को लिखूंगा.

——लिख चुका. कितनी चिट्ठियां लिखी हैं उसे अब तक. बोल?

——तुम मानती क्यों नहीं, मां.

——मैं तेरी बात मानूं या तू मेरी बात मानेगा?

इस तर्क के सामने वह हार गया था. वैसे भी मां के किसी तर्क का वह जवाब नहीं देना चाहता था. मां भरी हुई थीं. वह जानता था.सारा संकोच मां ने तोड़ कर अपने दिल की बात कह दी थी. यही तो मां का दिल है. वह सोचता रहा. पहली बार तीखेपन के साथ उसने मां शब्द का सही अर्थ जाना था. कितना अच्छा होता है, पढ़े शब्दों का सही अर्थ जान लेना.

शाम को बाजार गया था. सब्जी खरीदने. मां के बारे में ही सोचता रहा था. छिह, इतनी-सी बात पर उसका दिल भर आया. इतनी भावुकता ठीक नहीं. वह बच्चों को समझाता है और खुद भावुक बना फिरता है. कच्ची मिट्टी का लौंदा है वह. जरा-सी बात पर उस पर निशान बन जाता है. बचपन तो केंचुल है. वह पीछे छोड़ आया है. आगे का रास्ता उसे तय करना है. मां को साथ ले जाना है. रास्ते भर वह मन-ही-मन पछताया था. अब जीवन को सीरियसली जियेगा. नौकरी है, तो हजार दिक्कतें हैं. पैसा कमाना कठिन होता है. तन इसी तरह पेरना पड़ता है. मन को बांधना पड़ता है.

* *

खट् खट् खट्. . .

——कौन है? उसने कहा.

——अरे, मैं हूं. कब आ गये? शर्माजी ने पूछा.

--बहुत देर से बैठा हूं. आते समय आपको देखा था, लेकिन आप अखबार पढ़ रहे थे. फिर मैं ऊपर चला आया था.

--अच्छा!

--बैठिए न . वह खड़ा हो गया था.

--नहीं, भाई. भीतर जाऊंगा. कुंती कहां है?

--कुंती? भीतर होगी. भीतर ही गयी थी.

शर्माजी भीतर चले गये. कुछ देर बाद कुंती आ गयी. आते ही देर कर देने के लिए माफी मांगने लगी. कहने लगी कि महरिन से खाना बनवायेगी आज. वही समझा रही थी. सामान निकाल रही थी. सब्जी भी नहीं थी. पसे दे कर समझाती रही. पढ़ी-लिखी नहीं है. कुछ-का-कुछ काम कर आती है.

फिर कुंती बैठ गयी थी. बहुत देर तक बात का सिलसिला नहीं बन पाया था.

--और कुछ खाओगे?

वह हंसा. कहा--अभी तो खाया है. अब क्या खाना?

--मेरा मन रखने के लिए कुछ खा लो.

उत्तर सुनने के लिए कुंती नहीं बैठी. भीतर चली गयी. लौटी तो उसके हाथ में प्लेट थी. उसके सामने रख दी.

फिर कुंती ने उठ कर दरवाजे का परदा ठीक किया. खिड़की बंद की. स्टील की आलमारी से गहरा पीले रंग का शाल निकाला और लापरवाही से ऊपर डाल लिया. फिर बैठ गयी. वह खाने लगा.

धीरे-धीरे सन्नाटा उतरने लगा. उसे इसी सन्नाटे से डर लगता है. खाते समय उसने महसूस किया कि कमरे की ठंड भुरभुरी रेत बन कर उसके शरीर में समाने लगी है, समा गयी है. शरीर का सारा रक्त किरकिरा हो कर तेजी से बहने लगा है.

कुंती ने उसके संवेदनशील चेहरे की रेखाएं गिनीं और स्वर को संजीदा बना कर कहने लगी--अब मैं बंबई नहीं जाऊंगी.

झन्न!

सन्नाटा एक झटके से चिटख गया. जैसे कांच का खाली गिलास अचानक हाथ से छूट जाये.

कुंती ने सिर झुका लिया और बहुत धीमे स्वर में उसने कहा--मैं अनिल से सारे संबंध तोड़ लूंगी. जानते हो, उसने तलाक की कार्रवाई की है. पहले दिन से ही उससे मेरी नहीं पटी. वह मुझे कोठे वाली समझता है. दोस्तों के साथ कर देता है. खुद रात-रात भर गायब रहता है. शराब पीता है और मुझ पर चाहे जब हाथ भी उठा देता है...

पिछले माह उसने अबार्शन करा दिया था... उसे मालूम पड़ा था, तो बहुत नाराज हुआ था. मुझे दवा ला कर दी थी. मुझे जबरन खानी पड़ी थी. मार डालने की भी धमकी देता रहता है.

मैं कई दिनों तक रोती रही थी--वह खूनी है. किसी मासूम के खून से उसके हाथ रंगे हैं. मैंने बहुत सोचा है और यह निर्णय लिया है.

वह कुंती को बरदाश्त कर रहा था. उसे लगा था कि उसके सामने कुंती नहीं, शर्माजी बैठे हैं. रिटायर्ड पुलिस अफसर मोहनलाल शर्मा. जबड़े भींचे हुए. उसे किसी उलझे मुकदमे की कार्रवाई सुना रहे हैं. वह अपराधी का कोई रिश्तेदार है या खुद अपराधी है.

चेहरा पोंछने के बहाने उसने रूमाल निकाल लिया और उससे चेहरा छिपा लिया...

फिर याद करने लगा. सुमेश कहा करता था कि पिता कुंती की शादी इंजीनियर या डॉक्टर से ही करेंगे. उन्होंने कुंती को बी. ए. भी नहीं करने दिया. उस बरस वह फाइनल में थी. शादी के बाद उसका पढ़ना छूट गया था.

किसी रिश्तेदार के सुझाव मात्र से उन्होंने जल्दी में कुंती की शादी डॉक्टर अनिल से कर दी थी. शेष आफर ठुकरा दिये थे.

उसने बाहर नजर डाली. हवा के साथ परदा फड़-फड़ा रहा था. दरवाजे के बाहर गाढ़ा अंधेरा टुकड़ों में बिखरा हुआ था.

उसे मां याद आ गयी. घर में अकेले उसका इंतजार कर रही होंगी. दरवाजे पर ही बैठी होंगी. हर निकलने वाले को बबुआ समझ रही होंगी. नाहक ही आज यहां आ गया. और कभी आ सकता था. वह अफसोस से भर गया.

जाने के लिए और कुछ कहने के लिए वह खड़ा हो गया, लेकिन उसे उपयुक्त शब्द नहीं मिले. वह कुंती को देखने लगा. कुंती भी खड़ी हो गयी. उसने कहा--इस साल बी.ए. करना चाहती हूं. तुम मेरी मदद कर सकते हो?

--तुम पढ़ोगी?

--हां, एम. ए. भी करूंगी.

--फिर?

कुंती बोली नहीं. उसे देखती रही. वह हलके-से कांप रहा था.

क्षण भर बाद ही अस्फुट स्वर में कुंती ने कहा--बहुत देर हो गयी...

सौ-सौ अर्थों वाली निगाह से उसने कुंती की तरफ देखा और सीढ़ियां उतरने लगा, गिनता हुआ...एक, दो....

□□□

१९१०, राइट टाउन, जबलपुर.

एक लघुकथा

जमाना

• अग्निशेखर

बाबा, उसका लड़का फेल हो गया. एक व्यक्ति ने अपने पड़ोसी से कहा.

--मुझे क्या!

--तुम्हारा पास हो गया.

--तुझे क्या!

□□□

घर

रमेश गुप्त

वह भूखा प्यासा कृषि-भवन से बाहर आ गया.

मां को डिस्पेंसरी ले जाना है. वह उसके साथ जायेगी? पता नहीं. सुबह पापा के सामने तो उन्होंने मना कर दिया था.

वह बस स्टॉप की ओर बढ़ गया. उसे जल्दी घर पहुंच जाना चाहिए.

घर! घर की याद आते ही खटमलों को मारनेवाली दवा की बदबू का भभका उसके नथुनों में घुस गया और वह 'सी. सी. . ' करने लगा. जब भी वह अपने आपको किसी ऐब्सर्ड स्थिति में पाता है, उसके मुंह से हलकी 'सी. सी. .' सीटी-सी बजने लगती है.

वह क्यू के सिरे पर जा कर खड़ा हो गया. निरर्थकता से उपजती लिज-लिजाहट को वह झेलता हुआ लेडी डाक्टर की कल्पना करता रहा.

—छक्का!

—किसने मारा?

—इंजीनियर ने.

उसके पीछे खड़े सुरी ने सुपर बाजार से साठ रुपये में खरीदे मीडियम वेव ट्रांजिस्टर को थोड़ा तेज कर के कान से चिपका लिया.

—दिन के खेल की समाप्ति के अंतिम क्षणों में छक्का मारना बड़ी हिम्मत और जोखिम का काम है.

—लो, अगली गेंद पर क्लीन बोल्ड. इंजीनियर पेवेलियन को लौट रहा है.

कानपुर टेस्ट मैच के तीसरे दिन का खेल समाप्ति पर था. घर में ग्यारह खिलाड़ियों में चार की कमी थी.

—यार, इस साल तो सर्दी बिलकुल ही नहीं पड़ी.

—तुझे सर्दी क्यों लगने लगी, साले? रीता तेरा बिस्तर जो गर्म रखती है.

कौन कहता है इस साल सर्दी नहीं पड़ी है.वह तो पूरे सीजन सर्दी से ठिठुरता रहा. रात को बिस्तर में पड़े-पड़े ठंड के कारण वह सो नहीं पाता. रजाई और पप्पू के बावजूद उसके पांव घंटों तक ओले की माफिक ठंडे रहते हैं. पप्पू भी इतनी घिचपिच करता है कि ठीक से नींद नहीं आती. जैसे ही उसकी आंख लगती है, पप्पू की टांग फटाक् से उसके पेट पर आ कर पड़ती है.

उसने शुरू से ही पप्पू को अपने पास सुलाने का विरोध किया था.

—जाड़ों में कोई पास सोये तो अच्छा लगता है, मां ने सूखे से मुंह से कहा था.

वह मां से सिद्धांत रूप में सहमत था. पर अपनी बगल में उसने पप्पू की कल्पना नहीं की थी.

—भैया, अभी से प्रेक्टिस शुरू कर दो. बाद में दिक्कत होगी. बी. ए. फाइनल में आते ही शशि का मुंह खुलने लगा था.

शशि की बात सुन कर शायद उसके मुंह से 'सी. . सी. .' की आवाज होने लगी थी. उसे सुन कर आरती हंस कर बोली थी— भैया, दीदी इसलिए ऐसा कहती है कि उसकी लाइन क्लियर हो जाये.

—मुझ से ऊपर तो अभी पूजा है. शशि ने आरती के चपत जड़ दी.

तो उसकी ट्रेन एक छोटे से स्टेशन पर अनिश्चित समय के लिए क्यों रुकी खड़ी है?

—शाम को जरा जल्दी आ जाना. ममी को डिस्पेंसरी ले जाना है. वह सुबह आफिस जाने के लिए तैयार हो रहा था तो पापा ने 'राधा तू बड़भागिनी,कौन तपस्या कीन' का पाठ करते हुए, बाथरूम से निकल कर कहा था.

—आप आज जरा जल्दी आ जाना. मां पापा से बोली थीं.

—तुम्हें पता है, आजकल संसद का अधिवेशन चल रहा है.

—मैं अनु के साथ डिस्पेंसरी नहीं जाऊंगी.

—क्यों ?

उसने ममी का उत्तर नहीं सुना था. शायद ममी ने उत्तर दिया ही नहीं था. वह जल्दी से घर से निकल पड़ा था. इसी हड़बड़ाहट में वह अपना लंच लाना भूल गया था.

बस आ गयी. पांच बीस की स्पेशल थी. एकदम खाली. नियंत्रित क्यू आगे बढ़ने लगी.

वह बस के अंदर पहुंचा तो सिर्फ एक सीट खाली थी. उसने उसे हथिया लिया. बस चल पड़ी.

एक के बाद एक क्यू! बस की क्यू के बाद डिस्पेंसरी में मरीजों की क्यू. पर इस सबसे ज्यादा अहम एक क्यू और है जिसमें वह वर्षों से खड़ा है— एकांकी, निष्प्रयोजन, दिशाहीन-सा.

बस की छत्त से लगी रेलिंग से बहुत से लोग लटके थे. उनमें से एक पर उसकी दृष्टि खटक गयी. कोणार्क मंदिर की दीवार से उतर कर कोई मूर्ति उसके सामने आ खड़ी हुई थी. सांवला रंग. भरपूर मांसलता. बड़ी-बड़ी आंखें. कमर तक झूलती बालों की गुच्छियां. सौंदर्यप्रसाधनहीन मुख.

उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उसके सिवाय कोई भी उस कोणार्क की मूर्ति में रुचि नहीं ले रहा है.

—कहां का?

—पच्चीस पैसे की. उसने जेब से एक रुपये का नोट निकाला और कंडक्टर की ओर बढ़ा दिया.

—रुपया न दिखा, भलेमानुस. चेंज निकाल.

घर में चेंज की दिक्कत होती है इसीलिए वह नोटों को भुनाता रहता है. उसे यह देख कर संतोष हुआ कि कोणार्क की मूर्ति के ओंठों पर एक क्षीण-सी मुसकान उभर आयी थी. उसने फौरन चवन्नी निकाली और



● गिरीश शुक्ला

कंडक्टर को पकड़ा दी.

तभी दृश्य-परिवर्तन हुआ.

कोणार्क की मूर्ति दुल्हन की तरह सज गयी थी—गहरे लाल रंग की सिलमा सितारों से जड़ी साड़ी में लिपटी. उसके हाथ में वरमाला थी और वह कह रही थी— मनु, अपना सिर झुकाओ न!

वह मुड़ा. उसे मां को तलाशना था. मां को एक साथ बहू-बेटे की आरती उतारनी थी. पर मां नहीं थीं. शायद वह डिस्पेंसरी गयी थीं.

अगले स्टॉप पर कोणार्क की मूर्ति उतर गयी. उसकी जगह एक आधुनिका आ गयी. कंधे तक झूलते बाल—कटे, खुले, रूखे. रंगे ओंठ, नीले रंग के ढ़ीलेढ़ाले पैरेल. चुस्त ब्लाउज टाइप का आला कुर्ता. गोरा रंग. मासूम-सी आंखें.

उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इस लड़की को देख कर, उसके अलावा, सब में हलचल मच गयी.

घर तो वह ठीक समय से पहुंच जायेगा. मां से कहेगा. यदि उनकी मर्जी हो तो वह उन्हें डिस्पेंसरी ले जायेगा. अगर वह न जायें तो उनकी मर्जी. उससे ज्यादा वह और कुछ नहीं कर सकता है.

—अब क्या करने का इरादा है? एक दिन लंच में मधुर ने पूछा था.

—इस प्रश्न का उत्तर देने की स्थिति में होना एक उपलब्धि होती.

—सात रुपये दैनिक की तुम्हारी यह नौकरी कभी भी खत्म हो सकती है. तुम उस बार भी कम्पटीशन में रह गये.

—अगले साल बैठ नहीं सकता. इन इक्कीस दिनों ने समूची जिंदगी को एक अंधी गली में ला कर खड़ा कर दिया है.

—पच्चीस ऊपर इक्कीस दिन. ओवर ऐज. अब क्या करोगे मनु?

—नयी नौकरी की तलाश में जुटूंगा. कविताएं लिखूंगा. सपने देखूंगा. क्यू. . . और ज्यादा क्यू!

उसकी बगल में बैठे पॉप-सिंगर टाइप एक नवयुवक ने अपनी सीट उस आधुनिका के लिए खाली करके उसे धर्म-संकट में डाल दिया.

आधुनिका के सामीप्य से उसे कुछ असुविधा-सी होने लगी.

अकसर वह देखता है, वह एक महिला को अपने सिर पर उठाये बीहड़ मार्ग से गुजर रहा है. वह उस महिला को पहचानने की कोशिश में जुट जाता है—क्या वह मां है? नहीं, वह तो डिस्पेंसरी जाने के लिए पापा की बाट जोह रही है. तो क्या मधुर? कई दिन से वह मधुर के दाहिने गाल पर उभरे एक लाल निशान को देख रहा है— एकदम दंत-पंक्ति जैसा. यह निशान क्लर्क-ग्रेड के परीक्षाफल घोषित होने के बाद उभरा था.

वह गौर से उस आधुनिका को देख रहा था जिसके घुटने बार-बार उसके घुटनों से टकराते थे. धीरे-धीरे लड़की की शक्ल स्पष्ट होने लगी. वह मधुर से कितनी मिलती-जुलती थी. . . आज से बीस वर्ष बाद यह मधुर की लड़की होगी. . . मधुर की लड़की यानी उसकी बेटी. अनंत काल की तुलना में ये बीस वर्ष कितना नगण्य समय था! ये बीस वर्ष चुक गये थे और वह एकटक अपनी बेटी को निहार रहा था.

—मुझे मनु के साथ डिस्पेंसरी नहीं जाना है. उसे याद आया.

बस टर्मिनस पर पहुंच गयी थी. सब उतर पड़े. वह भी उनमें था. पर यह क्या? उसकी बच्ची अपने घर की विपरीत दिशा में जा रही थी.

★ ★

स्टॉप से घर तक के लिए घुमावदार रास्ता लेना पड़ा. सेक्टर एक के चौकोर स्क्वायर में शामियाने तने थे और रंगबिरंगी रोशनियां झिलमिल कर रही थीं. किसी की शादी हो रही थी.

उसे ठंड लगने लगी. उसने अपने कोट का कालर खड़ा कर दिया.

सेक्टर एक के बाजार से समोसे खरीद कर लाती हुई, टेलीविजन में कैमरामेन के पद पर काम करनेवाले उसके पड़ौसी खुराना की पत्नी उसके सामने पड़ गयी. उन्होंने अपने स्थूल शरीर को समेट कर जबर्दस्ती इकट्ठा किया और मुसकरा कर बोलीं—मिठाई कब खिला रहे हो, मनु?

—मिठाई? किसलिए? वह उलझ गया.

—क्या शादी का यह मौसम भी यूं ही सूना चला जायेगा?

--शादी? किसकी? वह चौंक गया.

--क्या जन्म भर यूं ही क्वांरे रहोगे?

--ममी की तबियत खराब है, आंटी. उन्हें डिस्पेंसरी ले जाना है.

--मनु, तुमसे कितनी बार कहा है कि मुझे भाभी कहलाना अच्छा लगता है.

वह श्रीमती खुराना को नीचे छोड़ कर फटाफट सीढ़ियां चढ़ कर घर में पहुंच गया.

बरामदे में लगे वाश बेसिन पर मां कमान बनी खड़ी थीं. वह पल भर को ठिठका. मां के पास गया. उनकी पीठ सहलाई. मां सीधी खड़ी हुईं तो उसने देखा--उनकी नाक और आंख से पानी टपक रहा है. नाक का अगला हिस्सा लाल हो रहा है. वह हांफ रही थीं और दोनों हाथों से अपने वक्ष को दबाए हुए थीं. माथे पर पड़ी झुर्रियों की खाइयां और गहरी हो गयी थीं. आंखों के इर्दगिर्द उभरे काले साये और ज्यादा गढ़ा गये थे.

--डिस्पेंसरी चलिए, मां.

--नहीं.

--पापा का कुछ ठीक नहीं.

--मैं ठीक हूं.

वह वहां से हट गया. कमरे में फटी चटाई पर बैठी कविता ड्राइंग कर रही थी. न-वह बोल सकती है और न सुन सकती है. उसके पास ही पप्पू बैठा प्लास्टिकसीम से खिलौने बना रहा था.

पूजा खिड़की के सहारे प्रस्तरमूर्ति बनी खड़ी थी. उसे बी. ए. किये पूरा वर्ष हो चुका था. वह बी. टी. करना चाहती थी पर दाखिला ही नहीं मिला. वह आगे बढ़ा. उसने पूजा के कंधे पर हाथ रखा और पूछा--क्या बात है?

--कुछ नहीं.

--फिर तुम्हारा मुंह कैसे पीला हो रहा है?

--मुंह पीला होने में क्या लगता है, भैया. हां, हाथ पीले करने में जरूर परेशानी होती है.

अनायास उसके मुंह से 'सी. . .सी. . . की आवाज होने लगी.

--हम्टी डम्टी सेट आन ए वॉल! पप्पू आया और बोला--भैया, आज हमने नयी कविता सीखी है. पूरी सुनेंगे?

--पप्पू, मुझे आती है यह, उसने पप्पू को टाल दिया.

वह जूते खोल कर और कोट उतार कर चारपाई पर लेट गया.

--हम्टी डम्टी सेट आन ए वॉल. . .

--अब क्या करोगे, मनु? मधुर ने आज फिर पूछा था.

--शादी. उसने मधुर के गाल पर उभरे लाल निशान को देखते हुए निर्विकार भाव से कह दिया.

मधुर बुरी तरह चौंकी थी. फिर उसने मुसकरा कर पूछा था-- उसे खिलाओगे कहां से?

--क्या वह मुझे नहीं खिला सकती?

--अगर वह नौकरीपेशा न हुई तो?

--हम्टी डम्टी हेड ए ग्रेट फाल!

वह घबरा कर चटाई से उठ बैठा. बाहर बरामदे से अजीब-सी आवाजें आ रही थीं. वह दहलीज पर आ कर खड़ा हो गया. मां एक बार फिर वाश बेसिन पर झुकी खड़ी थीं. शशि और आरती आ गयी थीं और मां की पीठ सहला रही थीं.

वह वाश बेसिन पर लगे शीशे में मां का प्रतिबिंब देख रहा था.

--मां,मुंह में भुनी इलायची डाल लो,आरती बोली

मां ने कुल्ला किया और धोती के पल्लू से मुंह पोंछ कर वहां से हट गयी.

--आग लगे मरी! मां बड़बड़ा रही थीं.

--मां, तबीयत खराब है तो डिस्पेंसरी चल कर दवा क्यों नहीं ले आतीं?

--दवा इसमें क्या करेगी? ये बेटे-बहुओं के दिन हैं या. . .

मां कमरे में जा कर चारपाई पर पड़ रहीं.

* *

पूजा रसोईघर में खाना बना रही थी. वह रसोईघर की चौखट पर जा कर खड़ा हो गया और बोला--यह मां को. . .

--चाय पी थी सो उलट दी. पूजा ने परोठे सेंकते हुए कहा.

--तो क्या. . .?

--तुम्हें क्या पता भैय्या,तुम्हारे घर में तुम पर क्या गुजर रही है?

--आल दि किंग्स हार्सेस एंड आल दि किंग्स मैन कुड नाट पुट हम्टी डम्टी टुगेदर अगेन. पप्पू ने नर्सरी राइम की अंतिम पंक्ति गा दी थी.

वह तेजी से बराबर वाले कमरे में जा कर चारपाई पर लेट गया. कमरे की चारों दीवारें सिकुड़ती हुई उसकी ओर बढ़ रही थीं. छत नीचे की ओर झुकी आ रही थी.

--मैं खुद नये जन्म के लिए तड़प रहा हूं, वह बुदबुदाया.

--रानीपुर से भाभी आयेंगी जापा कराने के लिए. पूजा रसोईघर से आ कर सूचना दे गयी.

उसके मुंह से अनवरत 'सी. . सी' की सीटियां बजने लगीं.

'राधा तू बड़भागिनी, कौन तपस्या कीन' का स्वर जीने में गूंज रहा था. दिन के खेल की समाप्ति के अंतिम क्षणों में छक्का मारना हिम्मत का काम है. अगले क्षण काफी जोखिम के होते हैं. □□□

१, बाबर प्लेस,
नई दिल्ली --१

सारिका के कुछ आगामी अंक

- अप्रैल, १९७६ — दुष्यंत कुमार-स्मृति-अंक
- मई, १९७६ — नवलेखन अंक
- जून, १९७६ — कच्छी कहानियां

हिंदी के ओजस्वी, प्रखर प्रतिभावान साहित्यकार श्री दुष्यंतकुमार ३० दिसंबर १९७५ को हमारे बीच नहीं रहे. सारिका का अप्रैल, १९७६ अंक उनकी स्मृति को समर्पित है.

●●

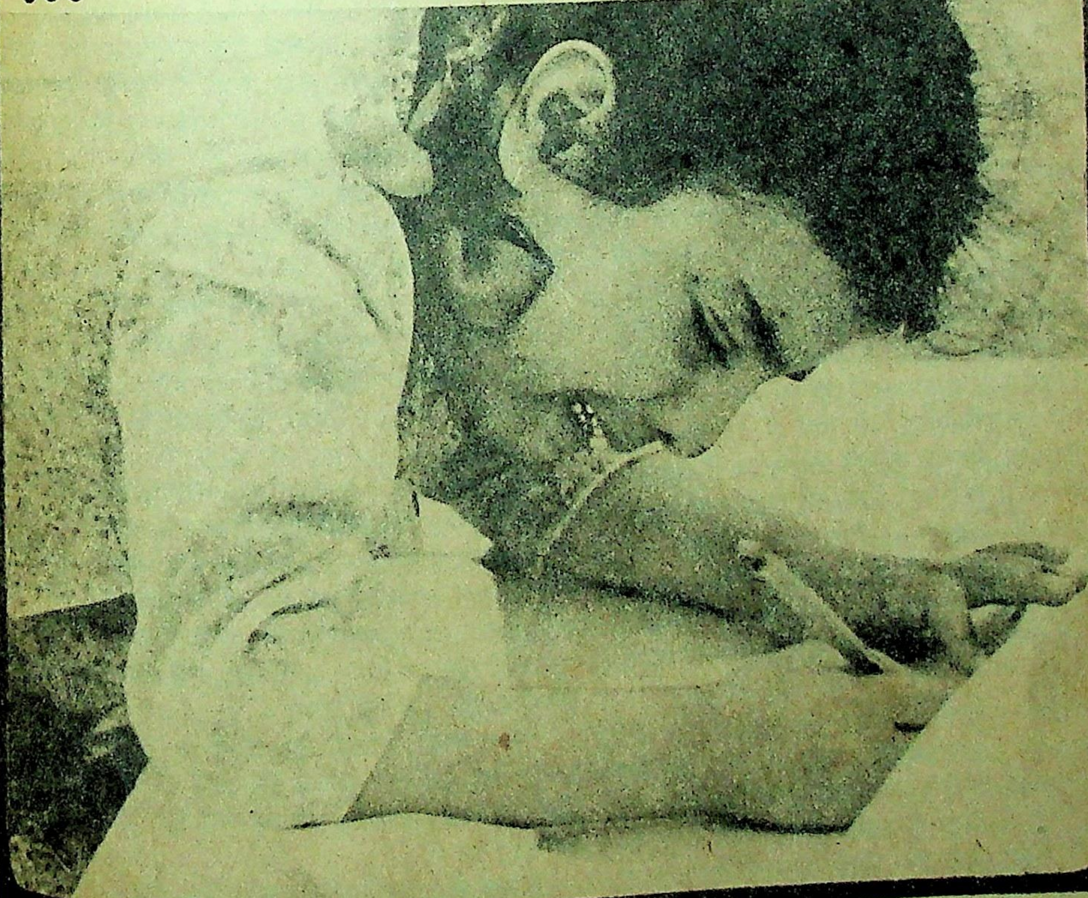
हर बार की तरह इस बार भी मई अंक नवलेखन अंक होगा. यद्यपि पिछली बार जून और जुलाई अंक नवलेखन अंक थे लेकिन उससे पहले मई अंक ही नवलेखन को समर्पित रहा था और इस बार फिर से रहेगा.

●●●

जून, १९७६ अंक में अधिकतर कच्छी कहानियां रहेंगी, जो हिंदी पाठकों को कच्छ के सामान्य जन-जीवन से परिचित करायेंगी.

साथ ही सभी स्थायी स्तंभ

सारिका



टाइम्स आर्ट

संज्ञा और सर्वनाम

• सुरेश चतुर्वेदी

जब-जब, मैंने तुमसे वह बात कहनी चाही है, तब-तब, न जने कितनी तरह के डर, कितनी आशंकाओं और अनिष्ट की न जाने कितनी संभावनाओं ने मेरी जुबान पर ताला डाल-डाल दिया है.

कई बार मैं इस विश्वास के बहुत निकट पहुंच-पहुंच गया हूं कि मेरी मन:स्थिति का ज्ञान तुम्हें हैं, फिर भी,वह बात तुमसे कहने का इरादा मैं अकसर करता रहा हूं, हालांकि उस निश्चय को कार्यान्वित करने का पूरा साहस उस दिन के पहले मैं जुटा नहीं सका था.

मुझे मालूम है कि तुम शार्ट टैंपर्ड हो और तुम्हारी अप्रसन्नता की अपेक्षा तुम्हारी औपचारिक उदासीनता सहते जाना मैंने इसीलिए हमेशा बहतर समझा है. यह भी कितनी अजीब बात है कि तुम शार्ट टैंपर्ड तो हो, मगर तुम्हारे गुस्से से मेरा साबिका अभी तक सिर्फ एक ही बार पड़ा है, जब कि तुम्हारे भाई-बहन तो अकसर ही, और तो और, कभी-कभी तुम्हारे मम्मी-पापा भी इसके शिकार हो जाते हैं.

उस बार जब तुम गुस्सा हुई थीं तो अचानक ही तुम्हारा चेहरा तमतमा आया था और आंखें चढ़ गयी थीं. अपनी कुर्सी से उठ कर तुम मेरे पास आ खड़ी हुई थीं और अपने दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध कर, उन्हें मेरे सामने हिला कर, तुमने पूछा था कि वह बात मैंने उस व्यक्ति विशेष से आखिर कही ही क्यों थी?

तुम्हारी तुनकमिजाजी के बारे में उस दिन तक मैंने सिर्फ सुना भर ही था. तुम्हारे उबाल पर मैं बेसाख्ता हंस दिया था और मैंने कहा था--तो इसमें नाराज होने की क्या बात है, नीना— नीना तुम्हारा नाम नहीं है--तुमने चोरी नहीं की है, डाका नहीं डाला है, किसीसे कुछ मांगने भी तो नहीं गयी हो. सिर्फ नौकरी ही तो करने लगी हो न. कितनी सारी लड़कियां आज-कल नौकरी करती हैं--कर रही हैं.

और तुम्हारा गुस्सा खौलते दूध में पानी पड़ने की तरह अगले ही क्षण ठंडा हो गया था और तुम इस तरह मुसकरा पड़ी थीं जैसे कुछ हुआ ही नहीं था.

और नीना--नीना तुम्हारा नाम नहीं है, मगर संबोधन के लिए मुझे तो कोई संज्ञा चाहिए ही न, क्योंकि बिना संज्ञा और सर्वनाम के काम जो नहीं चलता है--उसके बाद तुम्हारे क्रोध से मेरा सामना दुबारा नहीं हुआ है.

यही कारण था कि मैंने तुम्हें उस दिन बहुत डरते-डरते फोन किया था. वैसे फोन इसलिए भी करना पड़ा था कि तुम्हें कई दिन से देखा जो नहीं था. तुम्हारी आवाज सुनने की इच्छा तो रही थी, अकसर ही जब तुम्हें देखे दो-चार दिन हो जाते हैं, तो तुमसे मिलने को, और नहीं तो, कम-से-कम, तुमसे फोन पर ही बात करने को तबीयत मचलने लगती है.

कुछ दिन पहले मैंने तुमसे कहा था--नीना--तुम्हारा नाम नीना नहीं है, तुम्हारा वास्तविक नाम रहता तो मेरे होठों पर हर समय ही है, मगर उसका उल्लेख यहां करना संभव नहीं है--चौथे-छठे मुझे फोन कर लिया करो न.

तुम्हारी 'क्यों' के जवाब में मैंने कहा था--क्योंकि मैं तुम्हारे यहां रोज-रोज तो आ नहीं पाता हूं. बिना तुम्हें . . .

अपना मन्तव्य कि बिना तुम्हें देखे बेचैनी होने लगती है, मैंने अस्पष्ट ही रहने दिया था और टुकड़ों में जोड़ दिया था--तुमसे . . . बात ही . . .हो जाया करेगी.

--बेकार, तुमने एक साथ ही जैसे सवाल भी किया था और फैसला भी दे दिया था.

—बेकार ही सही, मेरा मन रखने को तुम इतना भी नहीं कर सकोगी क्या ?

--देखेंगे, तुमने मुसकरा कर जवाब दिया था.

चार-पांच दिन के बाद मैंने तुम्हें एक चिट भेजी थी, लिखा था— तुमसे कुछ कहा था, तुम्हें शायद याद नहीं रहा. अगर सोचने पर भी याद न आये तो कल सुबह नौ बजे के पहले मुझे रिंग कर लेना.

अपने पंच पेपर की फाइल से फाड़ी एक चिट पर तुमने उत्तर लिख भेजा था---कल सुबह हम आपको नौ बजे फोन कर लेंगे.

मगर दूसरे दिन तुमने फोन किया नहीं था. दफ्तर से जब ग्यारह बजे मैंने तुम्हारे यहां फोन किया था तो तुम्हारी छोटी बहिन इक्की ने बताया था कि तुम यूनीवर्सिटी चली गयी हो. इक्की उसका भी असली नाम नहीं है.

मैंने तब इक्की से कहा था--नीना, लौट कर आये तो उससे पूछना कि अभी नौ नहीं बजा है क्या?

तुम्हारे द्वारा तब अपनी अवज्ञा किये जाने पर मुझे अजहद तकलीफ हुई थी. और फोन तुमने फिर भी नहीं किया था. शायद इक्की तुम्हें मेरा मैसेज देना भूल गयी थी. या फिर उसने तो तुम्हें बता दिया होगा, तुम खुद ही भूल गयी होगी.

सच मानो, पिछले कुछ दिनों से मानसिक अशांति इतनी बढ़ गयी थी कि न तो रातों को नींद आती थी और न दिन को ही चैन मिलता था. हर वक्त तुम, तुम और तुम !

जिस दिन तुम्हें फोन किया था, उसके तीन-चार दिन पहले मैं तुम्हारे यहां आया था न? यही निश्चय करके गया था कि वह बात तुमसे कह जरूर डालूंगा. मगर तुमसे सामना होते ही हिम्मत साथ छोड़ गयी

थी—तुमसे बात करने का इरादा, मैंने बीसियों बार किया है, मगर होता हर बार यही है.

सच पूछो तो तुम्हारे घर पर मुझे तुम्हारे साथ एकांत भी तो नहीं मिल पाता है—एक बार के अलावा कभी मिला नहीं है. और तब यही सोचा था कि तुमसे फोन पर बात करूंगा—तब, कम-से-कम, तुम्हारे सामने बात करने की जहमत तो नहीं होगी मुझे.

पिछली बार जब तुम अपने चाचा के पास पटना गयी थीं तो मेरे वे पैंतीस दिन कितनी बेकली से कटे थे इसका तुम अनुमान भी नहीं कर सकोगी. अठारह महीनों में वह सब से लंबा वियोग था.

हां, छत्तीसवें दिन तुम अचानक लौट आयी थीं. उस दिन तुम्हारे आने की बात भी नहीं थी—गाड़ी का टाइम भी निकल चुका था—उस दिन मेल काफी लेट आया था न—सो तुम्हारे अनायास आ जाने पर मुझे बेहद खुशी हुई थी.

तुम्हारे चले जाने के कोई हफ्ते भर बाद मैंने तुम्हारे घर फोन किया था तो तुम्हारी छोटी बहिन पम्मी ने—पम्मी उसका भी असली नाम नहीं है—छूटते ही कहा था—अंकल, जीजी नहीं है तो आपने आना भी छोड़ दिया है.

तुम्हारे भाई-बहन तुम्हें जीजी नहीं कहते हैं. मगर जो संबोधन वे तुम्हें देते हैं, वह है जीजी का पर्यायवाची ही. और बात तो सच ही थी. उधर जाने का मन ही नहीं होता था. मगर मैंने उलटे शिकायत ठोक दी थी—कहा था नीना नहीं है तभी न तुम में से किसीने एक बार भी यह खबर ली है कि अंकल मर गये या जिंदा हैं?

मैंने जब उस दिन तुम्हें फोन किया था तो न तो मेरी आवाज कांपी थीं और न मैं घबराया ही था—बिल्कुल सहज स्वर में मैंने कहा था—नीना, तुमसे कुछ बात करनी है.

—कहिए, तुमने तुरंत पूछ लिया था.

मगर असली मुद्दे पर आने से पहले मुझे उन सभी संभावनाओं का ध्यान आ गया था जो यदि तुम्हें क्रोध आ जाता, तो उसके विस्फोट से उत्पन्न हो सकती थीं. ज्यादा सोचने का वक्त था ही कहां और विषय चूंकि मैंने छेड़ ही दिया था, एक पल में सारी विषमताओं का सामना करने को मैं तैयार हो गया था और मैंने कहा था—पहले तुम्हें यह वायदा करना होगा कि तुम नाराज नहीं होगी. तुम शार्ट टैंपर्ड हो न. और दूसरे यह कि वह सब तुम किसीसे कहोगी भी नहीं.

धीरे से हंस कर तब तुमने कहा था—ऐसा कोई प्रामिस हम नहीं कर सकते, अंकल.

असहमति में भी कहे गये तुम्हारे वे शब्द फूल से महकते और तुम्हारे नाम के अनुरूप कोमल हैं.

और तुम्हारी वह संक्षिप्त हंसी बड़ी उजली थी. चमेली के फूलों की तरह बेदाग. तुम्हारी वह, वैसी हंसी मैंने बहुत बार देखी है. तुम्हारी वह हंसी किसी लंबे वाक्य में अल्पविराम की तरह होती है.



● **प्रबोध गोदीवाला**

तुम्हारी भरपूर हंसी का स्वर मेरे कानों में हर वक्त गूंजा करता है. थोड़ाखाल की देवी के मंदिर में टंगी अनगिनत घंटियों की मिली-जुली झंकार की तरह ही ती है तुम्हारी खिलखिलाहट.

उस बार जब मैं भवाली में तुम्हारे यहां था, हम लोग साथ-साथ ही तो देवी के दर्शन को गये थे. उसी दिन कैंची भी गये थे, भीमताल भी गये थे. सैकड़ों घंटियां हम लोगों ने बजा कर भी देखी थीं. हजारों घंटियां लटकी हैं वहां. छत से, पेड़ों से, खंभों से, बांसों पर, दीवालों पर—छोटी-बड़ी, माझोली, अलग-अलग आकार की, भिन्न-भिन्न धातु की. अलग-अलग ध्वनि वाली.

एक बार हम लोग तुम्हारे यहां अंदर बरामदे में बैठे उन दिनों चर्चित मेरी कहानी 'फिर' पर बात कर रहे थे. मैंने दिल्ली के एक सीनियर आई. ए. एस. आफिसर की चिट्ठी का हवाला दिया था जिन्होंने कहानी की प्रशंसा करने के साथ यह भी पूछा था कि अंत में नीना का होता क्या है.

कई दर्जन प्रशंसक पाठकों में से, जिन्होंने मुझे सीधे पत्र लिखे थे, वहीं एक, कोई मिस्टर जौहरी थे, जौहरी उनका भी असली नाम नहीं है, जिन्होंने यह जिज्ञासा की थी. मुझे तब लगा था और अब भी मेरा यही खयाल है कि वे भी तो मेरी तरह किसी नीना के साथ डीपली इन्वाल्व हैं. अगर ऐसा न होता तो वे नीना का अंत जानने को व्यग्र होते ही क्यों.

मैंने तुम लोगों को बताया था कि मैंने उन्हें यही लिख भेजा है, कि सारी कहानी मेरा भोगा यथार्थ है,

कि अभी नीना का कुछ भी नहीं हुआ है. कुछ होगा भी या नहीं, यह न तो मैंने उन्हें ही लिखा था और न तुम्हीं लोगों को बताया था. और सच पूछो तो अभी कुछ हुआ ही कहां है! कभी कुछ होगा भी या नहीं यह भी तो मैं नहीं जानता. तुम भी तो नहीं कह सकती हो. होगा शायद कभी भी कुछ नहीं.

तुम ठीक मेरे सामने बैठी थीं. तुम्हारे मुंह पर लाली दौड़ गयी थी और तुम अजीब तरह मुसकरा दी थी—वही चमेली के सफेद फूलों को शरमा देने वाली मुसकान. तुम्हारे मुंह पर उस वक्त एक साथ गुलाब और चमेली खिल उठी थी और मुझे कॉकटेल का स्वाद याद आ गया था.

तुम्हें शायद यह घटना भी याद नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारी उम्र में, बहुत कुछ भूले रहने की मस्ती और बेपरवाही आदमी के मन पर छायी रहती है.

और उस दिन तुम्हारे शरमा कर लाल हो जाने पर मुझे बहुत खुशी हुई थी, क्योंकि तब मैं इस विश्वास के और भी ज्यादा पास पहुंच गया था कि अपने प्रति मेरी रुझान तुम समझती अवश्य हो.

नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं. जो है वह तुम्हें मालूम है. मैं भी जानता हूं. और भी बहुत सारे लोगों को मालूम है. नीना तो मेरी उस कहानी की प्रमुख नारी पात्र का नाम था न? तुम्हारी वह चमेली के फूलों से होड़ करने वाली मुसकान मैंने हजारों मर्तबा देखी है. बहुत बार तो तब देखी है जब तुम्हारे यहां से चलते वक्त अपना हाथ आगे बढ़ा कर मैंने कहा है—नीना, मैं अब चलूंगा.

तुम्हें परोक्ष रूप से छूने का यह बहाना मैंने अपना रखा है. तुमसे विदा लेते वक्त तुम्हें स्पर्श करने की इच्छा अनायास होने लगती है. संभव है, तुम मेरा यह छल समझती भी हो. मगर यह जानने का कोई साधन मेरे पास नहीं है. हां, मेरा छल जान कर, समझ कर भी अगर तुम अपना हाथ मेरे हाथ में दे देती तो यह तुम्हारी बहुत बड़ी उदारता है. और हां, वह इस बात का प्रमाण भी है कि तुम मेरी मनोभावना से अनवगत नहीं हो.

तुम अपनी खुली हथेली मेरी तरफ बढ़ा देती हो जिसे मैं अपने हाथ में ले कर धीरे से दबा देता हूं तो तुम आंखें झुका कर मुसकरा पड़ती हो. हर बार तुमसे बिदा लेते वक्त मुझे तुम्हारे चेहरे पर खिली चमेली देखने को मिल जाती है.

तुम्हारी हथेली का आकार बिलकुल शंख जैसा है यह मैंने तुमसे कहा भी है. तुम्हारा शार्ट टैंपर्ड होना शायद तुम्हारे हाथ की इस बनावट के कारण ही होगा. मैंने पढ़ा जरूर है. बहुत दिन पहले पढ़ा था, ज्यादा कुछ अब याद नहीं है.

कभी-कभी, मुझे यह सोच कर आश्चर्य होता है कि आखिर तुम कितनी तरह मुसकरा लेती हो.

नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने हंसने के छह प्रकार बताये हैं—स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित और अतिसहित . तुम इन सभी तरह से हंस लेती हो .

मैं जब चलने लगता हूं तो तुम फेयरवैल में अपना बांया हाथ ऊपर उठा कर वेव करती हो तो इस प्रक्रिया के साथ, अपनी गुलाबी मुसकान छिपाने को तुम अपने होंठ भींच लेती हो, हांलाकि मुसकान तुम्हारे बंद होठों पर आ ही जाती है—तो तुम्हारे होंठ इस तरह आगे बढ़ जाते हैं जैसे उन्हें एक चुंबन में दबा लिया गया हो.

तुम्हारी मुसकान जहां चमेली की याद दिलाया करती है, वहीं तुम्हारा शरमा कर लाल हो जाना मुझे गुलमोहर की याद दिलाया करता है. वैसे, शरमा कर लाल तो सभी लड़कियां हो जाती हैं. मगर तुम्हारा शरमाना भी कुछ खास है—औसत से कुछ ज्यादा ही लाली तुम्हारे गालों पर बिखर जाती है.

तुम्हारे उतने ज्यादा लाल हो उठने का कारण शायद यही है कि अपने प्रति मेरा प्यार और मेरे प्रति अपने आदर की भावना-दोनों के बीच, किसी जगह तुम अटकी हुई हो. काश मेरा अंदाज ठीक हो.

एक बार हम लोग—मैं और तुम दो ही थे—और वहां एक अवसर ऐसा था जब हम लोग काफी देर तक अकेले बात करते रहे थे, बड़े कमरे में बैठे थे. अचानक मेरा फोल्डर हाथ से छूट कर नीचे जा गिरा था. उसे उठाने को तुम झुकी थीं तो तुम्हारे कुर्ते के गले के लटक जाने से तुम्हारे छोटे-छोटे कुआरे वक्षों के बीच की, पसीने से नम, तलहटी की एक झलक मुझे पल भर के लिए मिल गयी थी और मुझे लगा था जैसे मेरी आंखों के सामने बर्फ की किरचें उड़ने लगी हों.

एक सुखद आश्चर्य से मेरी आंखें खुली रह गयी थीं. विस्मय विमुग्धता का भाव तुमने जरूर ही मेरे मुंह पर पढ़ लिया था, तभी न तुम गुलमोहर की तरह सुर्ख हो उठी थीं और अपना एंबेरेसमेंट छिपाने को, चाय का पानी चढ़ाने के बहाने, किचन की तरफ दौड़ गयी थीं.

तुमने जायसी का पद्मावत पढ़ा है न, एम. ए. में पढ़ा जरूर होगा. उसमें एक स्थान पर फुट नोट में नारी अंगों की आदर्श सुंदरता के सोलह प्रतिमान बताये गये हैं. चार दीर्घ-केश, अंगुली, ग्रीवा और नयन, चार लघु-दशन, कुच, ललाट और नाभि, चार पुष्ट—कपोल, जंघा, नितम्ब और कलाई और चार प्रतनु-नाक, कटि, पेट और अधर.

तुम नहीं जानती होगी—अपने बारे में कोई जान भी तो नहीं पाता है—कि उन सोलह में से तेरह प्रतिमान तुम्हारे अंगों पर पूरी तरह सार्थक उतरते हैं. कहना चाह कर भी यह मैं तुम से कभी नहीं कह सका हूं.

तुम्हारे ब्लाउज और कुर्ती के चौड़े गले से झांकते तुम्हारी ब्रा के शोल्डर स्ट्रैप्स तो मुझे अकसर दिख जाते हैं और जब तुम आंचल का एक हिस्सा ब्लाउज के गले में खोंस लेती हो तो ब्रा-स्ट्रैप्स का बकल तक दिखाई दे जाता है, तो मुझे ऐसी अनुभूति होने लगती है जैसे तुम्हारे बाहुमूलों को पकड़े मेरे दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियां उन स्ट्रैप्स में उलझी तुम्हें टीज कर रही हैं तुम्हारे अध उघाड़े कंधों को सहला रहीं हैं.

तुम्हें छल से छूने का एक रास्ता मैंने और भी खोज रखा है. कान कुरेदने के बहाने मैं कभी-कभी तुमसे एक हेअरपिन मांग लेता हूं. अपनी जरूरत जस्टीफाइ करने को कान खुजलाता भी हूं और फिर हेअरपिन चुपचाप जेब के हवाले कर लेता हूं.

हेअरपिन के माध्यम से तुम्हारे स्पर्श की अनुभूति, है न अजीब बात.

हेअरपिन बहुत मामूली चीज है. तुम अपनी ड्रेसिंग टेबल की ड्राअर से दूसरा निकाल कर लगा लेती होगी. तुमसे अकसर खो भी जाते होंगे. सभी लड़कियों से खो जाते हैं. मगर मैं उन्हें बहुत सम्हाल कर रखता हूं. मेरे पर्स में तुम्हारे कई हेअर पिन हर वक्त रखे रहते हैं.

आकार और मूल्य की दृष्टि से हेअरपिन बहुत छोटी चीज है. तुम्हारा भी यही खयाल होगा. मगर मेरा दृष्टिकोण तुमसे भिन्न है. तुम्हारे शरीर के स्पर्श और गंध तत्व का कुछ न कुछ अंश तो हेअरपिन में बस ही जाता है. और इसलिए होम्योपैथिक हाई पोटेंसी दवा की तरह तुम्हारे हेअरपिन का प्रभाव भी मुझ पर बहुत गहरा और लंबा होता है. तुम्हारे हेअरपिन पर्स में पड़े मेरे शरीर से लगे रहते हैं, मानो तुम हर वक्त मेरे पास रहती हो.

अब, जब तुम्हारे शरीर की गंध की बात चल पड़ी है तो तुम्हें यह भी बता दूं कि वह भी मेरे लिए अब अपरिचित नहीं रह गयी है. तुम चौंक रही हो क्या? नहीं नीना, चौंको मत, डियर.

तुम्हारे बाल बहुत लंबे नहीं हैं—तुम्हारी कमर तक ही तो पहुंचते हैं न, मगर हैं बहुत घने, इतने घने कि उनकी चोटी बहुत मोटी बनती है—रीतिकालीन कवियों द्वारा दिये गये काली नागिन के उपमान की तरह होती है तुम्हारी चोटी.

तुम्हारे खुले बाल मुझे बहुत अच्छे लगते हैं. यह तो मैंने तुमसे बीसियों बार घुमा-फिरा कर कहा है. खुले बालों में तुम्हारे बहुत सारे स्नैप्स भी लिये हैं मैंने. कई बार तो जबर्दस्ती तुम्हारे बाल खोल कर मैंने कंधों पर बिखेर दिये हैं और तब तुम्हारी तसवीरें खींची हैं.

कभी-कभी तुम ढीली चोटी बना कर दाहिने या बायें कंधे से आगे निकाल लेती हो. तुम्हारी यह मुद्रा मुझे बहुत भाती है. यह भी मैंने तुमसे कभी नहीं कहा है.

कई बार नहाने जाने से पहले धोने को खुले, या नहाने के बाद सूखने को खुले छोड़ दिये गये तुम्हारे बालों को, इस बहाने, कि देखूं तो उनसे कैसी गंध आती है, मैंने अपनी मुट्ठियों में भर-भर कर सूंघा है.

तुम्हारे बालों से एक अजीब, पर्सनल-सी गंध आती है. यह तो मैंने तुम से कहा भी है. मगर वह गंध मुझे बहुत रुचिकर है यह कभी नहीं कहा है.

उस बार मवाली में-जब तुम्हारी मम्मी शारदा बीमार थीं—तुम्हारी मम्मी का नाम शारदा नहीं है और न वह कभी बीमार ही थी—एक दिन मर्दाने बाथ-रूम में, लिनेन वास्केट पर पड़े तुम्हारे काले ब्लाउज पर मेरी नजर जा पड़ी थी. मैं उसे अच्छी तरह पहचानता था क्योंकि तुम्हें उसे पहिने मैंने यहां बहुत बार देखा था.

साबुन लगे हाथों मैंने उसे लपक कर उठा लिया था और उसे अपने होठों तक ले जाने की अदम्य इच्छा मेरे रोके रुक नहीं सकी थी. तुम्हारे पसीने की वह तीखी गंध-प्रवोकेटिव, पंजेंट, आर्म-पिट ओडर ! उफ ! मुझे रोमांच हो आया था? आंखें बंद किये न जाने कितनी देर तक मैं उसे नाक से लगाये सांसें अंदर खींचता रहा था. और मुझे लगातार यही लगता रहा था जैसे पसीने से तर, तुम्हारे गूढ़ अंगों पर मेरे होंठ फिसलते जा रहे हों. यह मेरी इडियोसिंक्रेसी हो सकती है. मैं शायद फैटिचिस्ट हूं.

तुम्हारे पसीने की वह गंध जिससे औरों को जुगुप्सा हो सकती है, मेरे लिए दुनिया के बेहतरीन कास्मेटिक्स से ज्यादा खुशगवार है.

जब भी उस गंध की याद मुझे आ जाती है तो दिल की धड़कन तेज हो जाती है और सांस उखड़ने लगती है.

★ ★

तुम्हारे लिए मेरे मन में यह टैंडरनेस चूंकि मवाली में पैदा हुई थी. तेरह जून का वह दिन सचमुच बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण था—कुछ लोग तेरह के अंक को अशुभ मानते भी हैं. . मवाली से मेरा कुछ भावनात्मक संबंध जुड़ गया है. अकसर ही, यह इच्छा हुआ करती है कि अगर जिंदगी के शेष दिन उसी हवा, पानी और मिट्टी में बीत सकें तो कितना अच्छा हो. और इससे भी आगे-अगर इस शरीर के अवशेष उसी मिट्टी के हवाले हो जायें तो और भी अच्छा हो.

तुमसे मैंने कई बार कहा है —नीना, डार्क शेड तुम पर बहुत फबता है-कहा है न ? यह भी तुम्हें याद नहीं होगा.

एक बार तुम्हारे लिए कहीं से हलके शेड की जापानी नाइलोन की एक साड़ी आयी थी. तुमने दिखाई थी तो मैंने कहा था यह शेड तुम पर चलेगा नहीं, नीना.

—नहीं चलेगा तो मम्मी पहन लेंगी, तुमने अपनी आयु-सुलभ बेपरवाही से कहा था . मगर तुम भूल गयी थीं कि शारदा का रंग तो तुमसे भी ज्यादा साफ है. यह घटना भी तुम्हें याद नहीं होगी.

तुम्हारी सालगिरह के दिन मैं तुम्हारे यहां पहुंच नहीं पाया था. वैसे, अपने यहां लड़कियों की सालगिरह मनाता ही कौन है. मनाना तो दूर, उसे याद रखना भी बहुत से लोग जरूरी नहीं समझते हैं. मगर वह तारीख याद थी. तुम्हें विश करने को मैंने फोन किया था. और पूछा था—नीना आज कौन तारीख है ?

—क्यों, ग्यारह है ? तुमने कुछ चौंक कर पूछा था.

—तो?

—कोई खास बात? तुमने कुछ पल सोच कर सवाल किया था.

—तुम्हें नहीं मालूम ? मैंने तुम्हें प्रांप्ट किया था.

सोचो तो?

—नहीं, हमें नहीं मालूम.

—इडियट कहीं की! आज तुम्हारी सालगिरह है न. मैंनी हैपी रिटर्न्स डार्लिंग!

—ओह! हाउ स्वीट आफ यू!! तुमने एक लंबी सांस खींच कर कहा था—मगर आपको यह तारीख याद कैसे रही आयी, अंकल?

—याद रखने की बातें तो याद रखनी ही चाहिए नीना, कहने के बाद मैंने सोचा था, तुम्हारी तरह सब कुछ भूल जाने, भूले रहने की मेरी उम्र अब रही ही कहां है.

उस दिन फोन पर तब तुमने कहा था—ऐसा कोई प्रामिस हम नहीं कर सकते, अंकल! अगर कोई ऐसी ही बात हुई जिस पर हमें गुस्सा आ ही गया तो?

मुझसे उम्र और रिश्ते दोनों में जूनियर होते हुए भी तुमने मुझ पर गुस्सा हो जाने का अपना अधिकार कैसे मान लिया था इसलिए तो नहीं कि तुम जानती थी कि मैं तुम्हें प्यार कता हूं.

तुम्हारी आवाज में सख्ती नहीं थी, रूखापन नहीं था, अथवा अवज्ञा नहीं थी, निरादर, आक्रोश, झुंझलाहट कुछ भी तो नहीं था. सीधे सपाट लहजे में तुमने यह कहा था. ऐसा लहजा जिसे इंटरप्रिट करना हमेशा मुश्किल होता है.

—गुस्सा तुम्हें आना तो नहीं चाहिए, मैंने तुम्हें कॉर्नर करना चाहा था—पूरी बात सुनने के बाद गुस्सा तुम्हें आयेगा नहीं, नीना.

—तुम्हें मुझ पर गुस्सा नहीं, दया आयेगी, यह मैंने सोचा जरूर था मगर कहा नहीं था.

लाइन पर कुछ देर खामोशी रही थी. तुम सोचने लगीं थीं. यह भी शायद इस बात का सबूत था कि तुम जानती थीं मुझे क्या कहना है, जानती थीं न?

—तो बोलो न? मैंने खामोशी तोड़ी थी.

—क्या बोलें? तुमने बहुत ही कोमल, बहुत ही मीठे स्वर में, जवाब दिया था, इतने मीठे स्वर में कि मेरा मन भीग आया था.

स्वर में छटपटाहट नहीं थी, उलझन नहीं थी, अधीरता नहीं थी. मुझे लगा था जैसे तुम अपने को कुछ मजबूर-सा महसूस तो कर ही रही हो मगर न तो उस जाल से बाहर ही आना चाहती हो और न ही उसमें फंसे रहना तुम्हें गवारा हो रहा है.

—यही कि, मैंने थूक गटका था, 'कल जब तुम्हारे यहां आऊं तो तुम्हें यह याद रहेगा न कि मुझे तुमसे कुछ कहना है.

—कह नहीं सकते, अगर भूल गये तो, तुमने भरपूर मासूमियत से जवाब दिया था—मासूमियत, जिस पर कई जिंदगियां निसार की जा सकती हैं और, उम्र तो खैर तुम्हारी भूलने की है ही.

—अच्छा, मैंने एक दीर्घ निश्वास ली थी, या शायद वह औचक ही निकल पड़ी थी और अगले क्षण मैंने इस विश्वास को थपकी दी थी कि वह निश्वास तुम्हें उस सबके विषय में आश्वस्त कर देगी, जो तुम जानती थीं, मुझे तुम से कहना है. और अगर. उस वक्त तक तुमने उस सब के बारे में नहीं भी सोचा होगा तो वह निश्वास तुम्हें उस दिशा में सोचने के लिए बाध्य नहीं भी कर पायेगी, तो प्रेरित तो अवश्य ही कर देगी.

—बस? तुमने पूछा था और रिसीवर तुमने नहीं मैंने ही रख दिया था.

तुमसे अपने मन की बात कहने की इच्छा इस बहुत तीव्र, कहना चाहिए अदम्य, हो गयी है, क्योंकि मैं कुछ दिनों से एक असह्य मानसिक संत्रणा, एक मेंटल टार्चर से गुजरता आ रहा हूं. यह यातना मात्र निराशा जनित ही नहीं है—अपराध की भावना का प्रतिफल भी है और यह इतनी अधिक हो गयी है कि कभी-कभी लगता है जैसे इससे छुटकारे की एक ही राह रह गयी है—आत्महत्या.

मेरी आयु और बौद्धिक स्तर के आदमी के लिए इस तरह की बात सोचना अजीब है न?

अगर मैं किसी डाक्टर के पास जाऊं तो वह मेरी मानसिक विपन्नता को लंबे डिप्रेशन का कुफल बतायेगा, कोई ट्रैंक्विलाइजर बता देगा जिसके खाने से मेरी नर्व्ज का तनाव कम हो जाये, कोई टॉनिक प्रेसक्राइब कर देगा जिसे खाने से मेरी स्पिरिट पैप-अप हो जायें और मेरी जीने की इच्छा लौट आये.

मगर जीने की इच्छा का अभाव मुझमें है ही कहां!

तुम्हारे लिए जब मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया और जैसा मैंने शुरू में सोचा था कि यह एक पासिंग फेज है, जल्द खत्म हो जायेगी. वैसा न हो कर जब इसने स्थायी रूप ले लिया था तो मैं एक डाक्टर के पास गया तो था.

तुम्हार लिए मैं जो फील करता हूं उसे उन्होंने अस्वाभाविक तो नहीं कहा था, हां दुर्भाग्यपूर्ण जरूर बताया था. कोई नयी बात नहीं थी. दुर्भाग्यपूर्ण तो उसे मैं स्वयं भी मानता हूं. मानता ही आ रहा हूं. अगर ऐसा न होता तो मैं इस अनवरत मानसिक संताप से पीड़ित ही क्यों रहा आया होता.

उन्होंने सलाह दी थी कि मैं अपनी इच्छा शक्ति का सहारा ले कर उस भावना से लड़ने का प्रयत्न करूं, तुम्हें मन से निकालने की कोशिश करूं और वह नाकाम कोशिश मैं इतने दिनों से करता तो आ ही रहा हूं. मगर लगता है कि उस कोशिश में अंदर से मैं बहुत कुछ टूट आया हूं. पहले से ज्यादा वलनेरबिल भी हो गया हूं.

शायद मुझे अब किसी सायकैटिस्ट के पास ही जाना चाहिए. मगर, फिर सोचता हूं कि अगर एक इस बात को छोड़ दूं तो अन्य दृष्टियों से तो मैं बिलकुल सामान्य हूं. वह बेचारा भी क्या करेगा. वही ट्रैंक्विलाइजर्स, वही नर्वाइन टॉनिक्स, वही बी-वन, बी-ट्वैल्व के इंजेक्शन और सिटिंग्स का वही लंबा सिलसिला. उहुंक! वह कुछ भी नहीं कर सकेगा. क्योंकि तुम मेरे मन में, कहीं अंदर, बहुत गहरे पैठ चुकी हो.

चाणक्य ने कहा है कि राजा, लता और नारी

उसीकी तरफ झुकते हैं जो उनके पास होते हैं. कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या मैं तुम्हारे बहुत पास नहीं हूं? तब क्या तुम मेरी तरफ झुक आयी हो? आकृष्ट हो गयी हो? काश ऐसा ही हो. ना, ना, ना! काश ऐसा कभी न हो.

खैर, आत्महत्या तो मैं नहीं कर पाऊंगा क्योंकि जिंदगी की दुश्वारियों से भाग जाने वाला आदमी मैं नहीं हूं. इतना कायर भी मैं नहीं हूं. फिर, घर के लोग, नाते-रिश्तेदार, इष्ट-मित्र, परिचित और उनसे ऊपर, तुम! कितनी बाधाएं हैं उस राह में. तुम्हें देखते-देखते रहने का लोभ मुझे कभी मरने नहीं देगा. नीना, मेरी जीने की इच्छा अभी मरी नहीं है न-- वैसे कौन जानता है कि यह सब, जो तुमसे कहना है, उसे कह पाने, लिख पाने के पहिले ही मौत आ धमके.

और यह स्थिति भी कितनी विषम है कि जीने और मर जाने की दोनों ही इच्छाएं मेरे मन में हर वक्त विद्यमान रहती हैं.

नैनीताल में एक शिव मंदिर है, जो गुफा महादेव के नाम से प्रसिद्ध है. पिछले साल भवाली पहुंचने के शायद दूसरे ही दिन तो हम लोग गुफा महादेव के दर्शनों को गये थे. तुमने उस दिन व्रत रखा हुआ था. सोमवार था न उस दिन.

मैंने उस दिन उनके सामने शीश नवा कर कहा था-- हे ईश! अब यह यातना बिल्कुल असह्य हो गयी है. इस व्याधि से मुक्त करा दो, देव - यह अंतर्द्वंद्व अब पागल किये दे रहा है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, भूतनाथ-बस मुक्ति. मैं जो था वही फिर हो जाऊं.

और दूसरे दिन मुझे सचमुच यही लगा था, जैसे मैं तुम्हारे प्रेमपाश से मुक्त हो गया हूं. जैसे मुझे कभी कुछ हुआ ही नहीं था. मैं फिर मैं हो गया था.

मैंने तुमसे कहा भी था कि गुफा महादेव सचमुच ही भक्त-वत्सल हैं, दीनानाथ हैं, बड़े कृपालु हैं. उनसे मैंने जो मांगा था उन्होंने दे दिया है. तुम्हें शायद यह भी याद नहीं होगा.

मगर बीस दिन के बाद यहां लौट कर आते ही वह सब रिलैप्स हो गया था. अनिश्चय का वही दौर, विकल्प की वही स्थिति-- मैं उसी चौराहे पर आ खड़ा हुआ था जहां से आगे बढ़ने की सही दिशा मैं भूल गया था.

यह तो तुम समझती ही होगी, सिर्फ उस स्थिति में समझती होगी, जब मेरी मन:स्थिति का ज्ञान तुम्हें होगा--और इस विश्वास को मैं अकसर सहला लेता-हूं कि तुम्हें देख लेने, तुमसे बात कर लेने और एक आचार संगत सीमा में रह कर तुम्हें छू लेने से आगे मैं कभी नहीं बढ़ूंगा-कभी नहीं बढ़ सकूंगा.

* *

तुम्हें पाने के सपने मैं चाहे जितने संजोता रहूं, तुम्हें पाने की दिशा में कोई प्रयत्न मैं कभी नहीं कर सकूंगा. उस स्थिति में भी नहीं कर सकूंगा जब मुझे यह पता भी चल जायेगा कि तुम मेरा प्यार रेसीप्रोकेट करने को सिर्फ तैयार ही नहीं हो, उत्सुक और आतुर भी हो.

जब मुझे यह पता चलेगा कि तुम भी मुझे प्यार करने लगी हो तो--काश ऐसा कभी न हो! और अगर हो जाये तो काश मुझे इसका पता कभी न लगे--मैं तुमसे यही कहूंगा. यह अनुचित है नीना. बहुत बुरी बात है, बेबी.

यही तो मैंने तुमसे भुवाली में, वर्षा धुली पूनम की उस रात को भी कहा था, कहा था न?

और हालांकि अब तुम तेईस-चौबीस की भरपूर औरत हो गयी हो, तुम्हें बेबी कहने का लोभ कभी-कभी हो आता है, क्योंकि बचपन में तुम्हें गोद खिलाया है न मैंने. काश वे दिन लौट सकते. मगर गुजरे दिन कभी लौटा नहीं करते, नीना.

अपने और तुम्हारे बीच के लौकिक संबंध के संदर्भ में मैंने इससे आगे की बात जाने कभी सोची भी नहीं है, डार्लिंग, हालांकि डॉक्टर की राय के अनुसार तुम्हें पाने की इच्छा करना अस्वाभाविक नहीं है. इंसेस्ट की कानूनी रूप से भी तुम मेरे लिए अभोग्या नहीं हो, क्योंकि हम लोग आपस में शिबलिंग नहीं हैं.

नीना-तुम्हारा नाम नीना नहीं है, मगर मुझे जो भी कहना है वह है तुम्हारे ही निमित्त-जिंदगी डाक्टरी राय पर नहीं, संस्कारों पर चलती है. और संस्कार कानून से ऊपर होते हैं. शायद वही संस्कार तुम्हारे भी आड़े आ रहे हैं-आ रहे हैं न?

तुम्हें मैं एक थाती मानता हूं जिसे सप्तपदी तक सुरक्षित रहना है, अछूता रहना है, क्योंकि तुम मेरे दोस्त की बेटी हो.

और यह भी कितने संतोष की बात है कि इधर कुछ दिनों से, तुम्हारे घर में, तुम्हारे विवाह की चर्चा चलने लगी है. काश, वह दिन जल्द आ जाये. बहुत जल्द आ जाये ताकि मैं एक साथ रो भी सकूं और हंस भी सकूं.

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि क्या यह जरूरी है कि प्यार कुछ पाने की खातिर ही किया जाये. बाईस महीने पूर्व की उस तेरह जून के पहले भी तो मैं तुम्हें प्यार करता ही था न, हालांकि सयानी तुम तब भी हो चुकी थीं. क्या मन की भावना, प्यार का प्रकार बदलने भर ही से कुछ पाना, कुछ पाने की इच्छा करना आवश्यक हो जाता है. क्या तुम्हें देख लेना, तुमसे बात कर लेना, तुम्हें छू लेना, तुम्हारे लिए कुछ कर पाना, पहले की तरह ये सब उपलब्धियां नहीं हैं?

नीना-तुम्हारा नाम नीना नहीं है, मगर अपनी बात कहने के लिए मैंने नीना को तुम्हारा स्थानापन्न जो बनाया हुआ है. कहते हैं चौबीस घंटे में एक क्षण ऐसा होता है जब मुंह से निकली बात घट जाती है, मन की हुई इच्छा पूरी हो जाती है. मगर वह क्षण कौन-सा होगा, कब होगा, यह हमें नहीं मालूम होता, हम जान नहीं पाते हैं. अगर जान पाते तो हमारी कोई भी आकांक्षा अधूरी नहीं रह पाती.

तुम्हें ले कर मेरे साथ ऐसा कई बार हो चुका है-पहली बार तो उस साल भवाली से चलते वक्त मैंने

भगवान से मनाया था कि तुम हम लोगों के साथ ही लौट चलो और हालांकि दोपहर के बारह बजे तक, जब हमारा सामान पैक हो चुका था, तुम्हारे चलने की कोई बात नहीं थी. तुम अचानक ही तैयार हो गयी थी क्योंकि तुम्हें यहां अपने भाई-बहनों के एडमिशन का प्रबंध करना था.

फिर एक बार, जब तुम अपने चाचा के पास गयी हुई थीं, मैंने चाहा था कि तुम जल्द आ जाओ और तुम अगले दो दिन के बाद लौट आयी थीं और पिछले साल सोलह अगस्त को, पता नहीं क्यों, सुबह उठने के साथ मैंने इच्छा की थी कि काश, आज तुम मुझे अपने आप फोन करो. दोपहर बीतते न बीतते तुम्हारा फोन आ भी गया था.

मगर तुम मुझे मिल जाओ, यह इच्छा मैंने आज तक इसी डर से नहीं की है कि कहीं ऐसा न हो जाये कि यह इच्छा मैं उसी भाग्यशाली क्षण विशेष पर कर बैठूं जब मुंह से चाही निकली बात पूरी हो जाती है.

तुम्हें शायद भवाली के वे दिन याद होंगे, जब हम लोग वहीं थे—पाइन काटेज में न—यों बहुत कुछ भूल जाने, भूले रहने की तुम्हारी उम्र तो है ही—जब हम लोग वहां थे—और उस वर्षा भीगी रात को तुम मुझे जबर्दस्ती कोटेज के बगल वाले टीले पर ले गयी थी—कितनी बातें की थीं हमने, याद है न? मेरा मतलब है तुमने मेरी कहानी 'फिर' तो पढ़ी है न. छपने के पहले ही मैंने तुम्हें पढ़ा दी थी वह, क्योंकि उस कहानी की प्रमुख नारी पात्र नीना छद्म-धारिणी तुम्ही जो थीं एक सुखांत कहानी है न वह.

एल्डिस के अनुसार हर कहानी, हर उपन्यास, हर नाटक, हर फिल्म, बैले, आपेरा, यहां तक पार्टियों में सुनाये जाने वाले गंदे लतीफे, सभी एक विशफुल थिंकिंग होते हैं.

उस कहानी को सुखांत बनाने के पीछे मेरी भी विशफुल थिंकिंग ही थी. तुम्हें प्राप्त कर लेने की कल्पना, क्योंकि कहानी का 'मैं' मैं स्वयं ही था न.

मेरी और तुम्हारी आयु का अंतर देखते हुए कहानी का जो अंत मैंने रचा था वह एक असंभव-सी, अनहोनी बात थी. और असंभव का घटित होना चूंकि बहुत रोचक और आकर्षण होता है, वह कहानी बहुत पसंद भी की गयी थी. तुम्हारी उम्र की लड़की मेरे जैसे प्रौढ़ के प्रति यौनिक रूप में आकृष्ट हो जाये, इसके चांसेज ज्यादा से ज्यादा हजार पीछे एक पर रखे जा सकते हैं. और मैं उन हजार में से वह एक नहीं हूं. यह मैं जानता हूं. बखूबी जानता हूं, नीना.

वैसे अपवाद तो हर जगह होते हैं. काश, तुम एक अपवाद हो सकती सिर्फ मेरे मानसिक संतोष के ही लिए, एक दिन को, एक बार, एक पल को ही अपवाद हो सकती. मगर नहीं, तुम भी उन हजार में से वह एक नहीं हो. अपवाद तुम नहीं हो, अपवाद तुम नहीं हो सकोगी. और अगर होना भी चहोगी तो मुझे खुद एक अपवाद होने को विवश होना पड़ जायेगा.

औरत अगर स्वयं को समर्पित करने आगे आये और ना कर दे, ऐसा मर्द अभी पैदा नहीं हुआ. मगर नीना, वैसा मर्द, तुम्हें ले कर वैसा मर्द मैं जरूर बनना चाहूंगा, मुझे अपने पर विश्वास है कि मैं अपवाद बन भी जाऊंगा. क्योंकि तुम मेरे दोस्त की बेटी हो-मैंने तुम्हें गोद खिलाया है न.

हां, इतना अवश्य है कि यह विशफुल थिंकिंग, तुम्हें पा लेने की कल्पना करना, करते रहना, जीने का एक आधार तो बन ही गयी है. भविष्य में बनी भी रह सकती है, बनी रहेगी भी, मगर है तो मृगमरीचिका ही न, कभी न पूरी होने वाली एक असंभव इच्छा जो सृष्टि के अंत तक जीती रह सकती है. जिसे युग युगांतरों तक मन में सहेज कर रखा जा सकता है क्योंकि उसे कभी पूरा नहीं होना है.

और नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है. तुम तो वह मौलिक मूर्ति हो जिसने मेरी कहानी की प्रमुख नारी पात्र को एक आधार दिया था, एक रूप दिया था, एक अस्तित्व दिया था, अगर मृगतृष्णा न हो तो दुनियां के न जाने कितने लोग निराश हो कर आत्महत्या कर लें.

अगर कोई मुझसे पूछे कि तुम्हें ले कर मेरी न्यूनतम इच्छा क्या है? और मैं चाहता हूं कि आगे-पीछे कभी यह प्रश्न तुम्हीं पूछो तो कितना अच्छा हो. काश तुम्हें यह सवाल करने को मजबूर हो ही जाना पड़े, तो मैं पूरी ईमानदारी से कहूंगा कि वह मात्र इतनी ही है कि वह अपनी पीड़ा, अपना अंतर्द्वंद्व, अपना रिमोर्स, तुम चाहे उसे पहले से भले ही जानती हो, अपने मुंह से तुम्हें सुनाने का एक अवसर मुझे मिल जाये. हां, पिछले बाईस महीनों से तुम्हारे लिए मैं जो फील करता आ रहा हूं, उसे कभी मन से निकाल पाऊंगा, यह संदिग्ध ही है.

और नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है, वह कमला हो सकता है, विमला हो सकता है, शोभा, रचना, सरोज, मृदुला, राजुल, ममता, सरिता, कुछ ही हो सकता है. यह विश्वास मुझे हो चला है कि अपने प्रति मेरे प्यार से नावाकिफ अब तुम रह नहीं गयी हो.

तुम्हें पाने की आतुरता और न पा सकने की कुंठा से उत्पन्न अशांति के साथ तुम्हारे प्रति अपराधी होने की भावना से उपजा पश्चाताप, ग्लानि, क्षोभ, शरमिंदगी, उलझन और अंतर्द्वंद्व ही तुम पर प्रकट कर पाने का एक अवसर मैंने चाहा था. अपराध की भावना किसी से न कह पाने से उपजी घुटन से मुक्ति पाने को मैं तुम्हारे समक्ष एक स्वीकारोक्ति करना चाहता था. एक कनफैशन करना था मुझे. हालांकि भवाली की उस चांदनी रात में टीले पर तुमसे बात करते हुए मैंने यह कहा जरूर था कि कनफैशन अपने से छोटों के नहीं, बड़ों के सामने किया जाता है. मेरा उद्देश्य इतना ही था. मगर इतनी जरा-सी शर्त कि तुम नाराज मत होना तुमने नहीं मानी. मेरी मानसिक मुक्ति में सहायक तुम नहीं हो सकीं. यद्यपि यह तुम्हारे हाथ की बात थी.

पाप और पुण्य की विवेचना के पचड़े में मुझे नहीं पड़ना है, क्योंकि पाप और पुण्य के बीच का अंतर एक

कृत्य को अलग-अलग तरह इंटरप्रिट करने का ही फर्क होता है. मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है कि मेरा तुम्हें प्यार करना गलत है तो क्यों?

अगर बाईस वर्षीया मार्गेट सिनक्लेयर कनाडा के बावन वर्षीय प्रधान मंत्री त्रूदो को प्यार कर सकती है तो तुम मुझे प्यार क्यों नहीं कर सकती? अगर पैंसठ वर्षीय अरबपति ओनासिस जैक्विलिन को प्यार कर सकते हैं तो मैं तुम्हें प्यार क्यों नहीं कर सकता?

मगर नीना, तुम मार्ग्रेट सिनक्लेयर नहीं हो और मैं पियरे त्रूदो नहीं हूं. तुम जैकी नहीं और मैं ओनासिस नहीं हूं. मैं तो पंकज हूं, तुम्हारे पापा का दोस्त. नहीं, मैं पंकज भी नहीं हूं. वह तो मेरी अनुकृति था, मेरी भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम था. असल और नकल में बहुत अंतर होता है. नीना डार्लिंग.

तो नीना, तुम्हारा नाम नीना कभी नहीं था, कभी होगा भी नहीं. मेरी कहानी की नीना का भी यह नाम नहीं था. नीना तो उस मूर्ति की एक प्रतीक मात्र थी जिसे मैं प्यार कता हूं मगर पा नहीं सकता, कभी पा भी नहीं सकूंगा, पाना चाहता भी नहीं हूं क्योंकि मेरे और उस मूर्ति के बीच संस्कारों के ऊंचे हिमालय जो खड़े हैं.

हजार कल्पों तक तुम्हें पाने की कल्पना करते रहने के बाद भी मैं तुम्हें पा नहीं सकूंगा. कभी नहीं पा सकूंगा.

* *

कहते हैं कि मारने वाले के हाथ पकड़े जा सकते हैं, उसे कानून दंड भी दे सकता है. गाली देने वाले का मुंह भी, अगर कोशिश की जाये तो शायद बंद किया जा सकता है. कानून उसे भी सजा दे सकता है. मगर तुम किसी को प्यार या घृणा करने से रोक सकती हो? किसी को चाहना, या किसीसे नफरत करना किसी के हाथ में नहीं होता, नीना.

फिर प्यार करने की कोई एक खास उम्र हो ऐसा भी तो नहीं है—एज मैन इज ऐज ओल्ड ऐज ही फील्स—मेरी मनःस्थिति दूसरों के लिए हास्यास्पद होगी. मगर मेरा विचार है कि जिस पर किसी का वश न हो प्यार की उस भावना को उम्र के दायरे में बांधना गलत है. यह भी मैंने तुमसे भवाली की उस वर्षा धुली पूर्णिमा की रात को कहा था-कहा था न?

नीना—तुम्हारा नाम नीना नहीं है. मगर यह अपने अर्थ में बहुत कोमल है, बहुत प्यारा है. मन कानून से नहीं, भावना से बंधते हैं. और भावना न कानून के दायरे में आती है और न संस्कारों की परिधि में. वह तो नितांत निर्बाध होती है.

मेरा अंतर्द्वंद्व तुम शायद अब समझ गयी होगी. इससे मुक्ति तुम मुझे दिला सकती थीं. किंतु तुम मेरी बात सुनने को तैयार ही नहीं हुई. और मैं सोचता हूं कि तुमने यह अच्छा ही किया. अगर तुम मेरी बात सुनने को सहमत हो जातीं तो शायद मैं अपनी बात तुम्हारे सामने इतने विस्तार से और तर्क संगत रूप में प्रस्तुत कर नहीं पाता.

अदालत में मौखिक और लिखित दोनों ही प्रकार से वक्तव्य देने की छूट होती है. चलो, मैं यही समझ लूंगा कि मैंने तुम्हारे सामने एक कलमबंद बयान ही पेश कर दिया है.

उस दिन जब तुम्हारे यहां दस-बारह दिन के बाद पहुंच पाया था तो मैंने तुम्हें जी भर देखा था, तुमसे खूब बातें भी की थी और किसी न किसी बहाने से तुम्हें छुआ भी था. इतना ही तो मेरा प्राप्य है न? मैं बहुत संतुष्ट और प्रसन्न लौटा था उस दिन.

बी. बी. सी. ने उस दिन एक बड़ी मनोरंजक बात बतायी थी. दिन था चौदह फरवरी, जिसे ब्रिटेन में सेंट वैलेंटाइंस डे कहते हैं—उसे प्रेमियों का दिन भी माना जाता है. यह भी कैसा सुखद और अनपेक्षित संयोग था कि प्रेमियों के दिन पर ही मैं तुम्हारे पास था—चाहे थोड़ी ही देर को सही, हम लोग साथ-साथ थे.

वैसे, सच पूछो तो सही अर्थ में हम तुम कभी साथ नहीं हो पायेंगे. क्योंकि मेरे और तुम्हारे बीच संस्कारों के हिमालय ही नहीं आचारों की गंगा-यमुना भी है.

शायद यहां आ कर तुम्हारी आंखें नम हो आयी होंगी, क्योंकि नारी का मन बहुत कोमल होता है. चलो ठीक है, अपने अभागे अंकल की मानसिक विपन्नता अपने आंसुओं ही से धो डालो, नीना डियर.

आज उन्नीस फरवरी है. अभी-अभी बी. बी. सी. सुन कर रेडियो आफ किया है और यह चिट्ठी पूरी करने लगा हूं. बी. बी. सी. ने अभी बताया था कि ब्रिटेन में आज के दिन का भी विशेष महत्व होता है. आज के दिन अगर कोई लड़की किसी लड़के से प्रपोज करे तो या तो लड़के को उससे विवाह करना पड़ता है या फिर एक पाउंड का जुर्माना देना पड़ता है.

नीना, अगर आज तुम मुझसे प्रपोज करतीं तो सच कहता हूं मैं तुम्हें बखुशी एक पाउंड का जुर्माना दे देता.

तुम्हारी आंखों में आंसू आ गये हैं न? उन्हें पोंछ डालो, बेबी. पूरी तरह आश्वस्त रहो कि तुम्हारा अंकल इतना गया गुजरा नहीं है, कभी होगा भी नहीं. भावना और कर्म में बहुत अंतर होता है, नीना डार्लिंग, आदमी सोचने को, सपने देखने को, कल्पना के महल बनाने को स्वतंत्र अवश्य होता है. मगर कर्म के रास्ते में, समाज, कानून, संस्कार, लोकाचार और भी न जाने कितनी तरह की बाधाएं होती हैं.

खैर, अब यह चिट्ठी पूरी हो गयी है. इसे पढ़ने के बाद मुझे फोन करके बताना कि तुमने मुझे माफ कर दिया है. माफ तुम जरूर कर दोगी क्योंकि तुम बहुत समझदार हो. वैसे, मैंने अपने को क्षमा योग्य भी रखा कहां है?

मगर यह नौबत आयेगी ही कैसे? चिट्ठी मैंने लिख जरूर ली है. इसे पोस्ट कभी नहीं कर पाऊंगा. कभी पोस्ट नहीं करूंगा. □□□

२ बिहारी भवन, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ–१



नदी जा रही सागर को

• अभिमन्यु अनत 'शबनम'

● प्रबोध गोदीवाला

शारदा आयेगी इसी पगडंडी से. . . !

दूर तक फैली ईखों के बीच से, पहाड़ों की बगल से होती हुई. हमेशा की तरह सर्वप्रथम उसकी धुंधली-सी आकृति दिखाई पड़ेगी. सूरज निकल आयेगा, उसके प्रकाश में उसके काले बाल चमकते-से प्रतीत होंगे. उसकी वही नीली ओढ़नी हवा से बातें करती हुई लगेगी. और जब किशन उसे एकटक लगाये देखता रह जायेगा तब उसे प्रतीत होगा कि शारदा की आंखें भी चमक रही हैं, ठीक सूरज की तरह. सूरज की तरह उनमें भी अहम के भाव होंगे. आंखें आज भी हमेशा की तरह उसे पहचान कर भी नहीं पहचानेंगी और वह इसी चट्टान पर खड़ा रह जायेगा, एक अजनबी की तरह.

जिस बात को महत्व देना हो, वह नहीं देती. क्यों? उसके होंठ हिलते हैं कुछ कहने के लिए. किशन अधीर हो जाता है, सुनने को बेताब हो जाता है.पर धीरे-धीरे बेसब्री टूट जाती है और वह सामने से निकल जाती है बिन कुछ कहे.

किशन ने पहाड़ से आंखें हटा लीं. पगडंडी अदृश्य हो गयी. बगल की किसी डाली से दो मैनाओं की आवाजें आयीं——टॉय टॉय !!

किशन ने दोनों मैनाओं की ओर आंखें फेरीं. डाली ऊपर थी. सूर्यकिरणों ने, जो कि पत्तों की आड़ से आंख-मिचौनी खेल रही थीं, किशन की आंखों को चकाचौंध कर गयीं. उसकी कल्पना बिखर गयी, सपना टूट गया. हर बार तो ऐसा ही होता आया है. जब भी शारदा की याद उसके ख्यालों में अधिक सजीव हो जाती, तभी किसी न किसी झटके से सभी कुछ भंग हो जाता. खेतों की लालमुनियाओं की तरह उसकी अपनी कल्पना भी एक डाली से दूसरी डाली को उड़ती चली जाती और धीरे-धीरे उससे ओझल हो जाती.

इस तरह रोज किशन को अपना वह सपना नये सिरे से शुरू करना पड़ता था. नयी उमंग और नये विश्वास के साथ, नयी कल्पना और नये रंगों के साथ. और खयाल अतीत को दौड़ जाता. शारदा से जब उसकी भेंट हुई थी, उस समय भी वह एकदम आज ही की तरह थी. इस लंबी जान-पहचान के बाद आज भी उसी पहले दिन का अजनबीपन . किशन को हैरत होती. उसने सुन रखा था समय के साथ अजनबीपन गायब हो जाता है और घनिष्टता आ जाती है. शुरू से आज तक की घटनाओं को उसने इस ढंग से याद किया मानो किसी पाठ्यपुस्तक की पुनरावृत्ति कर रहा हो. उसने चाहा कि उन तमाम यादगारों के साथ, जो कि हकीकत थीं, कुछ कल्पना भी जोड़ दे ताकि उसमें केवल यथार्थ की कड़वाहट ही न हो.

उस दिन भी सूरज अपनी पूरी शक्ति के साथ चमक रहा था. उस दिन भी शारदा नीली ओढ़नी ओढ़े आयी थी, समस्त मासूमियत के साथ.

पहाड़ों के आगे पेड़ों का झुरमुट था. पगडंडी अदृश्य हो गयी थी और उससे आती हुई शारदा भी आंखों से ओझल थी. किशन ने अपने भीतर एक बहुत भारी सन्नाटा महसूसा. श्मशान की निर्जनता अनुभव की अपने भीतर. एक खटकता हुआ एकाकीपन और वह कराह उठा हेमंत की हवा की तरह. पहले भी एक बार उसने ऐसा ही अनुभव किया था. उस समय प्यास से उसका कंठ सूख गया था. बगल से जामुनी रंग की ईख तोड़ कर उसने चूसने की कोशिश की थी. ईख फीकी थी. रंज में आ कर उसने उसे फेंक दिया था. रोया था भीतर ही भीतर और दौड़ गया था घर की ओर.

——किशन! किशन!

किसीने उसे पुकारा. आवाज सुरीली थी, जानी-पहचानी थी. वह उसकी मां की आवाज थी. वह दौड़ गया उसके पास. मां श्वेत साड़ी में थी. उसके हाथ में पूजा की थाली थी और ओंठों पर मीठी मुसकान. किशन ने सोचा मां टीका लगाने के बाद उसे कोई काम सौंप

देगी और नीरसता की झुंझलाहट अपने आप मिट जायेगी. मायूसी कम हो जायेगी. मां के अति पास आ जाने पर उसने उसकी उस मुसकान को अपने माथे पर अनुभव किया. उसका कोमल स्पर्श और मीनी गंध.

उसके माथे पर चंदन का टीका लगाते हुए मां ने पूछा—तू उदास है?

—नहीं मां.

—कहां था तू?

—खेतों से मैनाओं को खदेड़ने गया था.

—मैं कई दिनों से खेत नहीं जा सकी हूं. क्या हाल है वहां?

—ठीक है मां. बीजों से अंकुर आने लगे हैं.

—पानी पहुंचाते रहना.

—हां, मां!

और मां हंस कर घर के भीतर चली गयी थी. किशन आंगन में आम के पेड़ के नीचे अकेला रह गया. बॉबी कहीं से दौड़ता हुआ आ कर उसके पास पूंछ हिलाने लगा. कुत्ते को भूख लग गयी थी. किशन ने सिर उठा कर सूरज की ओर देखा. समय का अनुमान किया और तब बॉबी से बोला—अभी समय ह बॉबी!

अपनी मां की बातों से उसका सपना टूट गया था. एक तरह से अच्छा ही हुआ था. वह उस सपने से एकदम थक गया था. उसका अंग-अंग दुख रहा था. छटपटाना चाह कर भी वह नहीं छटपटा पाता. सांस लेने में भी उसे कठिनाई पेश आती. इस वक्त बॉबी से खेलते हुए उसे कुछ शांति-सी मिली थी. बॉबी अच्छा था, बहुतों से अच्छा. सक्रियता थी उसमें. वह प्यार का जवाब देता. प्यार की प्रतिक्रिया थी उसमें.

★ ★

घड़ियां बीत जाती हैं. कभी धीरे-धीरे और कभी एकदम वेग से लेकिन आज वे घड़ियां रुकी हुई-सी थीं. उसके हृदय की एक धड़कन एक सेकंड थी. वह उन्हें गिनता रहा. एकदम धीरे-धीरे धड़क रहे थे वे. सेकंड भी धीरे-धीरे चल रही थी. उसके हृदय की ६० धड़कनें कहीं जा कर एक मिनट होतीं. खेतों में भी यह समय इसी तरह अलसाई चाल से बीतता था. उस समय उसे शारदा की प्रतीक्षा होती थी. बहुत देर बाद वह दिखाई पड़ती थी और दिखाई पड़ते ही हृदय की धड़कनों की रफ्तार बढ़ जाती. सेकंड और मिनट भी दौड़ने लग जाते और वह मनमोहक समय कब बीत जाता, किशन को पता तक नहीं चलता. अगर उसे कुछ खलती थी तो बस समय की नीरस शिथिलता जिसका इस वक्त वह शिकार था.

खेतों की नीरसता में कभी-कभार बीच-बीच में क्षणिक रमणीकता भी आ जाती थी. पक्षियों के कलरव होते. रमोतार भगत के बिरहे की टीस भरी आवाजें होतीं. पहाड़ों से खोयी हुई ध्वनियों की अनुध्वनियां और ईख के पत्तों की सरसराहट होती थी. माहौल वियावान हो कर भी किशन को भा जाता क्योंकि इसका अपना दिमाग भी एक तरह से उसी तरह का था. उसमें भी लंबे सन्नाटे होते और फिर बीच-बीच में क्षणिक कोलाहल.

काले बादल चारों ओर से आ-आ कर ठीक खेतों के ऊपर इकट्ठे होने लगे थे. वातावरण अधिक गुमसुम हो चला था. अकुला देने वाली गरमी का खयाल करके मन में बहुत भारी वर्षा की संभावना हो चली थी. किशन खुश था. वह जानता था कि मूसलाधार वर्षा के बाद का दूसरा दिन बहुत ही सुहावना होता है. सूरज का ताप कम हो जाता है और प्रकृति नदी से स्नान करके निकली हुई युवती की तरह होती है—सौंदर्य की पराकाष्ठा पर.

...कल शारदा आयेगी उसी हरी पगडंडी से. वह आयेगी और भी निखरी हुई.

नदी की बगल में वह जो नाली है, उसमें बहता हुआ बरसात का पानी होगा. किशन खाद के पुराने कागज की नाव बना कर उसमें छोड़ेगा. और उसके पीछे-पीछे पहाड़ की गोद तक चला जायेगा जहां शारदा का गांव है. वहां उसका कोई जाना पहचाना न होगा और निराश वह वहां से लौट आयेगा. चट्टान पर बैठ कर पगडंडी की ओर आस लगाये रह जायेगा. रमोतार भगत पास से गुजरेगा और हमेशा की तरह इतना कहते हुए आगे निकल जायेगा—कल आ जायेंगे ईखों में फूल!

लेकिन इधर कई दिन होने को हैं वर्षा होती ही नहीं. बादल आते हैं, चले जाते हैं. किशन ने सिर उठा कर ऊपर देखा. काली बदली फट गयी थी. बादल के टुकड़े तितर-बितर होने लग गये थे. पांच मिनट पहले का धुंधलापन मिट गया था. वर्षा की संभावना जाती रही और किशन निराश अपने स्थान पर बैठा रहा. सामने के पेड़ पर मैनाओं का एक झुंड 'टांय-टांय' करता हुआ झगड़ रहा था. दो मैनाएं ऊपर से छूट कर नीचे गिरीं और कांय-कांय करती हुई दूसरे पेड़ को उड़ गयीं. किशन के पड़ोस के लड़के भी ठीक इन्हीं मैनाओं की तरह आपस में लड़ते, चिल्लाते एक दूसरे को गालियां देते. पंडितजी के आ जाने पर वे इधर से उधर भाग जाते. किशन अपने बरामदे में बैठा यह सब देखता. कभी उसका मन भी उन बच्चों के बीच जा मिलने को करता पर न जाने किस डर के कारण वह उनके बीच नहीं पहुंचता. देवदत्त के बार-बार के आग्रह पर भी जब वह टस से मस नहीं होता, उस वक्त देवदत्त कह उठता, तू लड़का नहीं, लड़की है.

सभी बच्चे उसे लड़की कह कर चिढ़ाने लग जाते और वह सुनते-सुनते रो उठता था. फिर अधिक सुनते रहने के कारण अंत में वह उसका आदी हो गया था और बात की कोई गिनती न ले कर वह चुपचाप बैठा रहता. बाद में जब लड़कों ने देखा कि अब चिढ़ाने पर किशन रोता नहीं तो उन्होंने भी चिढ़ाना बंद कर दिया था. इस दौरान किशन को अपने बाप की एक बात याद आ गयी थी. वह

कहा करता था, बड़े आदमी का कुछ बहरा होना जरूरी है. जो हर प्रहार, हर व्यंग्य और हर गाली को सुन लिया करता हो और उससे घायल हो कर हताश हो जाता हो, वह कभी भी बड़ा आदमी नहीं बन सकता.

किशन को बातें बहुत कम याद रहती थीं पर यह एक बात उसे जीवन भर याद रहेगी. वह भूल से भी अपने बाप के बारे में नहीं सोचना चाहता था केवल इसलिए कि वह डरता था कहीं बार-बार उसके बारे में सोचने से वह इस निर्णय पर न पहुंच जाये कि उसका बाप हृदयहीन था. लेकिन अपने बाप की इसी एकमात्र सीख की याद आते ही वह विवश हो उसके बारे में सोच ही उठता था.

★ ★

वर्षा अब नहीं होगी, यह जान कर किशन अपनी जगह से उठा और आगे बढ़ गया. सोचा आज अपने ही बनाये दायरे से निकल कर रहेगा. चलते-चलते सब्जियों के खेतों के बीच वह उस काली माई के चौतरे के पास पहुंचा जहां हर वर्ष बड़ी धूमधाम के साथ बहरिया पूजा हुआ करती है. शुरू में फूलों से घिरे इस चौतरे के पास आते उसे डर लगता था. उसका डर उस दिन भागा था जबकि निर्दोष होने पर भी वह अपने बाप द्वारा मौत की मार खा कर घर से भाग आया था और इन्हीं फूल की झाड़ियों के बीच उसने सिसकते हुए वह घटाटोप रात बिता डाली थी. इस भयानक स्थल पर उसने अपनी मां की मौजदगी महसूसी थी और निर्भयता के साथ सो गया था. बाद में उसकी मां ने कहा था—बेटा, तू कालीमाई की गोद में था.

जो बात उसकी समझ में आज भी नहीं आती, वह यह थी कि जो काली मां इतनी अच्छी हो और जिस ने उस दिन उसके हृदय से डर निकाल कर उसकी रक्षा की थी, उसी काली देवी को बकरों का खून क्यों चढ़ाया जाता है. मां इसे परंपरा कहकर बात टाल जाती थी. फिर भी उस दिन से जब भी वह वहां से गुजरता उसके हाथ अपने आप जुड़ जाते और मन ही मन वह कह उठता—मां, मेरी रक्षा करना.

यह उसकी मां का अनुरोध था, फिर भी बात उसके हृदय से निकलती थी.

वह चौतरे के पास ठिठक गया. उस पर सिंदूरी टीके थे. अपने हाथों को परस्पर जोड़ कर उसने अपनी वही प्रार्थना की और शीघ्र ही इस डर से आगे बढ़ गया कि कहीं छटपटाते बकरों की आवाजें उसे सुनाई न पड़ जायें. वह चलता रहा.

पगडंडी आ गयी. उस पर चलते हुए उसे एहसास हुआ वह अपने सपनों के रास्ते पर चल रहा हो. उसे अपना चलना भी एक सपना-सा लगा. नदी दौड़ी जा रही थी और किशन उसकी विपरीत दिशा को बढ़ रहा था. प्रतीत हुआ, जीवन की राहों से अलग और एकदम विपरीत राह पर वह बेतहाशा दौड़ रहा हो. उसने थकावट महसूस की पर रुका नहीं, चलता रहा. बादल भी प्रतिकूल दौड़ रहे थे.

सब्जियों के बाद ईख के खेत आये फिर तंबाकू के और फिर सब्जियों के. टमाटर का खेत आ गया. टमाटर जिसे यहां की क्रिओली और फ्रेंच में मुहब्बत का सेब कहते हैं. वह देख रहा था, फैले हुए हरेभरे पौधों पर गोल और चिकने प्यार के सेब लदे हुए थे. चमकीले और हरे थे, कुछ पर हलकी सफेदी थी और एक-दो प्यार से लबालब लाल हो गये थे. किशन ने देखा, पौधों के बीच शारदा अपनी छोटी बहन के साथ चुन-चुन कर टमाटर तोड़ रही थी— टमाटर नहीं बल्कि मुहब्बत के सेब.

परिस्थिति का सामना करना सीख, मां की यह याद आते ही किशन ने अपने ऊपर और भीतर के कंपन पर अधिकार पाया और अग्रसर रहा, सेब-ए-मुहब्बत के खेत में.

दोनों झुकी हुई टमाटर तोड़ रही थीं. एक की ओढ़नी नीली थी, दूसरी का झगला हरा था. अपने ही में खोयी हुई सावधानी के साथ पौधों को हटाती हुई दोनों आगे बढ़ी आ रही थीं. नीली ओढ़नी की खोंच टमाटरों से भर गयी थी. खेत के बीच इमली का एक बहुत ही पुराना वृक्ष था. किशन उसकी आड़ में जा कर खड़ा हो गया ताकि शारदा को जी भर कर देख सके. खेत के छोटे से कुंए के पास पहुंच कर शारदा ने कमर सीधी की. एक अंगड़ाई-सी ली और पीछे को जा कर अपनी ओढ़नी से टमाटरों को बोरे में गिर जाने दिया. आगे बढ़ी जहां पत्थरों की ऊंची मेंड़ थी और जिस पर जहां-तहां जंगली फूलों के पौधे पीले रंग के फूलों के साथ झूम रहे थे. अपने पतले कोमल हाथ को, जिसपर लाल रंग की रबड़ की चूड़ियां थीं, आगे बढ़ा कर शारदा ने एक फूल तोड़ा. उसे अपनी नाक तक ला कर उसने एक लंबी सांस के साथ सूंघा. दीर्घ श्वास लेते वक्त शारदा बेहद सुंदर लग रही थी. किशन ने चाहा, वह इसी तरह सांस लेती रहे.

—हाथ में फूल लिये लड़की इतनी सुंदर कैसे लगती है? किशन ने अपने ही प्रश्न का उत्तर दिया.

—दो सौंदर्यों का मिलन जो ठहरा! फूल और लड़की!

यहां किशन पक्षपात कर गया और अपने आप से बोला— फूल और फूल में अंतर आ गया. शारदा के हाथ का फूल तो डालियों के सभी फूलों को मात कर गया. सौंदर्य से सौंदर्य निखरता है.

चाहा कि शारदा के पास दौड़ जाये और उसके हाथ से फूल ले कर फेंक दे क्योंकि यह उसे गवारा नहीं था कि फूल उसके गालों का स्पर्श करके उसके सौंदर्य को अपना ले. ईर्ष्या ने उसे आगे बढ़ने को कहा और भय ने उसे रोक लिया. मन माननेवाला नहीं था. चाहा कि चिल्ला कर कह दे, शारदा फेंक दो उस फूल को! देखती नहीं, उसमें अनेमिया का पीलापन है, कहीं तुम्हारे गुलाबी रंग पर छाप न छोड़ जाये.

किशन को हमेशा से रंगों से प्रेम था और वह चित्रकारी भी कर लिया करता था. उसे रंगों की पहचान थी

अतः उसे अपना इरादा बदल देना पड़ा क्योंकि वह जानता था कि पीले और लाल की मिलावट से जिस रंग का जन्म होता है, वह दोनों रंगों से भी अधिक सुंदर होता है. उसे अपने रंग का भी खयाल आया. उसका अपना रंग गेंहुआ था. उसने कभी भी गेंहुवे और लाल का मिश्रण नहीं किया था पर उसे विश्वास था कि जो परिणाम आयेगा, अच्छा ही आयेगा.

* *

शारदा अपनी छोटी बहन के पास लौट आयी थी· दोनों बेखबर अपने कामों में जुट गयीं. किशन ने तुलना की. दोनों बहनें सुंदर थीं. छोटी बहन का नाम उसे मालूम था. उसका नाम अरुणा था. बेहद सुंदर थी वह, फिर भी उसके विकसने में अभी समय था जबकि शारदा विकसित थी और सौंदर्य की चरम सीमा पर थी. सूर्य की लोलुप किरणें उसके गालों को चूम रही थीं. पर किरणें स्त्रीलिंग थीं किशन को ईर्ष्या नहीं हुई. वह अनुमान कर रहा है सामने के उस सौंदर्य के सामर्थ्य को जो कि सेब-ए-मुहब्बत के खेत में इस छोर से उस छोर तक फैला था. ओठों पर हलकी मुसकान थी. मुखड़े पर पसीने की बूंदें जो मोती-सी लग रही थीं. आंखें झुकी हुई थीं, फिर भी किशन जानता था कि उसमें जो गहराई है वह अन्यत्र से अधिक है, जो मादकता और तरलता है वह कहीं भी नहीं. उसके वे घने घुंघराले बाल अमावस की रात थे. तभी एक दर्द भरा खयाल आया. इतनी सुंदर लड़की मुझे कैसे चाह सकेगी?

शारदा को देख लेने के बाद वह शीशे के सामने अपनी सूरत भी देखा करता था. वह कुरूप नहीं था और शारदा की तुलना में सुंदर भी नहीं था. उसे आत्म सांत्वना आती थी इसीलिए उसने अपने आपसे कहा था—सुंदर लड़कियां होती हैं, लड़के नहीं.

—तो फिर लड़के क्या होते हैं?

—मेहनती!

यह विशेषता तो उसमें थी और अपनी योग्यता पर उसे खुशी हुई थी.

किशन दायरे के भीतर खड़ा रहा. बाहर निकलने का साहस करके भी वह असफल रहा· लड़कियां सामने से गुजर गयीं. वह सांस रोके खड़ा रहा· बादल दौड़ रहे थे, दो मनाएं उड़ी जा रही थीं. अडिग था तो सामने का पहाड़ और स्थिर था किशन.

घड़ी बाद दोनों लड़कियां नदी की ओर दौड़ पड़ीं, अल्हड़-सी. किशन उनके पीछे हो लिया. रास्ते में उसे एहसास हुआ कि शारदा को उसकी उपस्थिति का भान था, फिर भी वह अनजान-सी बनी हुई थी. आखिर क्यों? किशन ने अपने आपसे पूछा. शायद इसलिए कि मेरी उपस्थिति उसे खटक न रही हो. एक बड़ी-सी चट्टान पर बैठ कर दोनों ने अपने-अपने पैर पानी में डुबो दिये. शारदा का लहंगा घुटने से ऊपर उठ गया था. किशन ने उन अंगों को देखा जिन्हें सूर्यकिरणें स्पर्श नहीं कर पायी थीं और जो अधिक गोरे थे. कहकहों के साथ दोनों बहनों ने एक दूसरे पर पानी की बौछार की. दोनों उन्मादित थीं. किशन ने उस खुशी को परखना चाहा, वह आगे बढ़ा, कंपन और झिझक के साथ.

वह संयोग था, भाग्य ने साथ दिया था या भगवान ने उसकी सुन ली थी, या कोई मानसिक संक्रमण था वह. अभी-अभी उसे अरुणा की उपस्थिति खटक रही थी. उसका यह सोचना था कि आखिर कबाब में हड्डी क्यों है, वह यहां से टल क्यों नहीं जाती. तभी सचमुच शारदा को अकेली छोड़ अरुणा टमाटर के खेत की ओर दौड़ पड़ी. खुशी के कारण किशन की बाकी हिम्मत भी जाती रही.

किसी तरह वह बढ़ता रहा. शारदा के पास आते-आते उसे सिसकियां सुनायी पड़ीं. उसने देखा, उसके गालों के रास्ते दो बूंदें नीचे को उतर रही थीं. उसकी खोयी हुई हिम्मत वापस आ गयी और उसने धीरे से पूछा.

—तुम रो रही हो?

उसने हाथों से मुंह छिपा लिया.

—अरुणा कुछ कह तो नहीं गयी?

ओढ़नी से आंख पोंछती हुई उसने किशन की ओर देखा. किशन की हैरत बनी रही. सिर के इशारे से उसने दोबारा प्रश्न किया.

* *

पानी में अंजली डुबो कर उसने पानी ऊपर निकाला और मुंह पर छिड़कती हुई हाथों को ललाट से ठोड़ी तक लायी. किशन की ओर देखा और नीली ओढ़नी से चेहरे के ऊपर की पानी की बूंदें पोंछने लगी. बालों के आंसू अस्तित्वहीन हो गये थे, फिर भी आंखें डबडबायी रहीं.

दूर से अरुणा के पुकारने की आवाज आयी, एक पल बाद जिसकी प्रतिध्वनि पहाड़ों ने की. दोनों चुप हो एक दूसरे को देखते रहे. किशन ने जानना चाहा, क्या उसके भीतर भी कंपन है धड़कनों की रफतार में तेजी है? गले में बातें रुकी हों और बाहर न आ पाती हों?

तभी एकाएक आम की डाली से छूट कर गौरैया का एक बच्चा नदी में गिर पड़ा. उस जगह का पानी पत्थरों के बीच स्थिर था. बच्चा अपने कोमल पर हीन डैनों को फड़फड़ाने लगा और शारदा चिल्ला उठी :

—उसे पानी से निकाल दो.

बीच की धारा पार करके उसे वहां पहुंचना था. किशन ने अपने पतलून को घुटने तक उठाया और धाराओं से होते हुए पत्थरों के बीच पहुंचा. गौरैया के बच्चे को उठाये वापस आया और शारदा को अलसाई चाल से पगडंडी पर जाते पाया. वह जा रही थी सेब-ए-मुहब्बत के हरे भरे खेत की ओर. किशन हाथ में गौरैया का बच्चा लिये चल पड़ा—इस बार विपरीत दिशा को नहीं. □□□

त्रिओले, मारीशस.

आधी रात गुजर चुकी थी.
बबन को लगा कि वह चार-पांच घंटे से अधिक सो चुका है. वह हड़बड़ा कर उठ बैठा. उसे बहुत पहले उठ जाना चाहिए था. सुबह से पेश्तर काम पूरा कर लेना है.

बत्ती जला कर मड़ई के हर कोने को एक बार देखा कि कहीं कोई कुत्ता बीवी-बच्चे के साथ तो नहीं सो गया है. कई बार ऐसा हुआ है, और सबेरे उठने पर जब पता चलता है तो मुंह से कुबोली निकलती है. पर बबन कभी कुछ नहीं कहता है क्योंकि वह जानता है कि कुत्ते को थोड़ी-सी आड़ देन के लिए वह एक टुकड़ा टीन नहीं ला सका है. बात सच भी है, वह अभी तक अपने लिए कुछ नहीं कर पाया है तो फिर. . .

औरत सूखी घास पर बोरे का बिछौना डाल कर सोयी है. उसका अपना बच्चा गहरी नींद में सोया है, उसके नंगे मैले पैर भारी ओवरकोट से झांक रहे हैं. फेरी वाले ने कहा था--मिलिट्री का ओवरकोट है, शायद अब नहीं मिलेगा. टोकर देख लो कितना मोटा और गरम है. महंगी का जमाना है, फिर भी मैं तुमसे अधिक नहीं मांग रहा हूं, बस, सात रुपया देना. अपने को ठाट-बाट नहीं चाहिए फिर ज्यादा दाम काहे लूंगा. आखिर पांच में बबन ने पकड़ लिया था.

उसने पहले ही से अधकटे पीपे में दो-चार डोल पानी, एक गालन गुड़-मुट्ठी भर मान्युर उन्नीस-बीस सेर चीनी और एक कटोरी अरहर के पीसे पत्ते आदि डाल कर तुर्शाने के लिए रख छोड़े थे. उसने आग सुलगा दी.

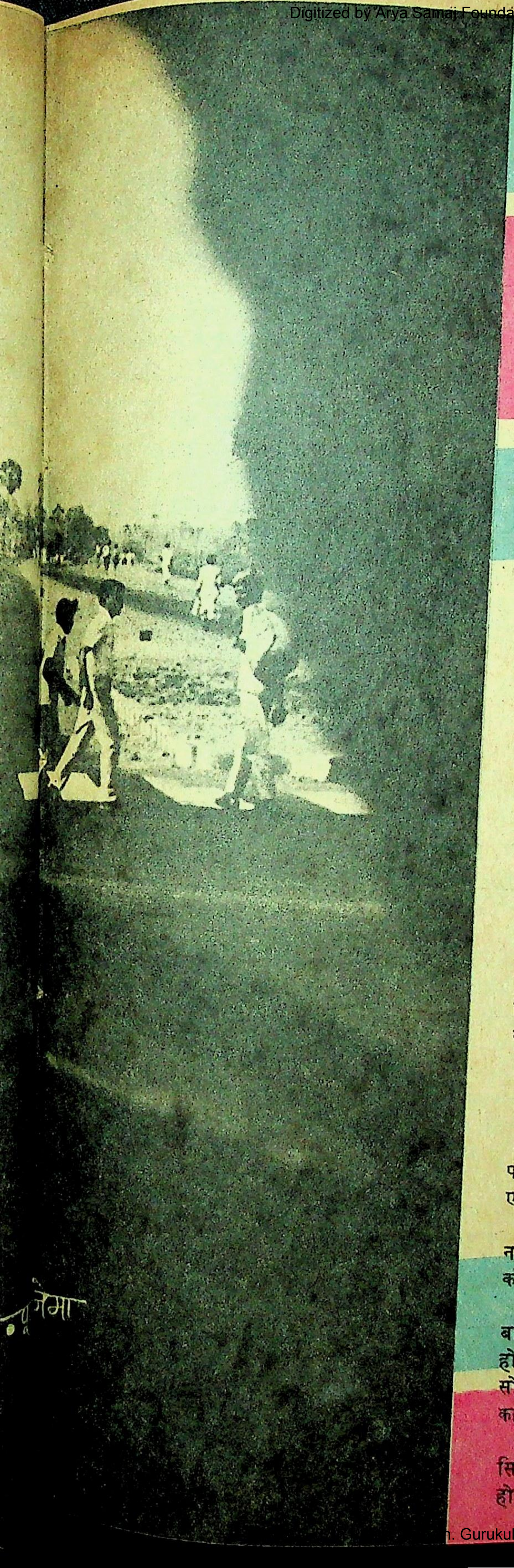
सरदी काट रही थी. उसने रत्ती भर गांजे को हथेली पर मल कर गन्ने के पत्ते की बनी चिलम में तंबाकू के साथ भर दिया. एक-दो कश में ही हलका-सा नशा आ गया. उकडूं बैठे-बैठे उसने एक बोरा अपने ऊपर फैला लिया. बारलू के घोल को एक दो-बार घोंटा, फिर ढक्कन लगा दिया जिसमें तांबे की नल्लिका लगी थी. बबन ने उसे दूसरे अधकटे पीपे के ठंडे पानी में डुबोया और दूसरे सिरे का मुंह साफ गालन में डाल दिया.

आंखों में कैफ आ गया था. अब प्रतीक्षा थी वी. सी. टेन की, याने रम् की. यह वी. सी. टेन के जमाने की देन है और इसे पीने से आदमी में वही विमान वाली रफ्तार और उड़ान आ जाती है, संभवत: इसीलिए इस चीज को हवाई जहाजों का नाम मिला है. परंतु बबन को उड़ना नहीं है, उसे तो सरदी के लिए पैसा चाहिए. हां, माह के अंत में जब उसे बीस रुपये का गरीबी का भत्ता मिल जाता है और खाद्यान्न जुट जाता है तो वह एकाध गुड़की (पेग) जरूर चढा लेता है. इस तरह जब भी जेब खाली हो जाती है या जब कड़ाही गरम हो जाती है तो वह रात को उठ कर यह कारबार करने लगता है.

★ ★

उसने बत्ती बुझा दी, नाहक इतना महंगा तेल जलेगा. आग की सुलगन से जो ज्योति फैल रही है, इस काम के लिए वह काफी है. आग की तपिश और गांजे





के असर से वह पिनकने लगा था कि अचानक उसकी आंखें खुलीं. कुत्तों के भूंकने के अंदाज से वह समझ गया कि कोई आफत आ पहुंची है. शायद पुलिस की गाड़ी हो जो गली के बीहड़पन से कुछ दूर ही पर रुक गयी है. बबन डरा नहीं, वह मड़ई की एक सुराख से झांकने लगा. बातचीत सुनाई देती है, कदाचित् सब उसी के यहां आ रहे हैं. इस गली में इधर कोई दूसरा तो नहीं रहता है.

सन्नाटा, खुसफुसाहट और फिर दो कुत्तों का दौड़-दौड़ कर भूंकना-गुर्राना. जरूर किसीने थाने में इत्तला कर दी है. चुगलखोरों को चाहे जितना भी पिला दो, वे अपना हसद छोड़ेंगे नहीं. मालूम नहीं आज के दोस्त इतने बेईमान और बेवफा क्यों हो जाते हैं? चवन्नी-अठन्नी के लोभ में अपने दोस्त को भी बेच डालते हैं.

यह जानने के बावजूद कि रंगे हाथों पकड़े जाने की सजा कड़ी होती है, वह पीपे को लुकाने-छुपाने की कोशिश नहीं करता है. वह इस चमक्को औरत से पिंड छुड़ाना चाहता है. उसे पता चल गया है कि यह अपनी आदत से कभी बाज नहीं आयेगी. एक बच्चा पहले ही बिना रसीद के जन चुकी है और अब फिर पेट वाली हो गयी है. मन-ही-मन वह एक फूहड़ गाली दे देता है.

अपना पेट भरता ही नहीं है और इसका पेट है कि कूड़ा करकट भी पचा लेता है. बबन कई बार कह चुका है—फमिली पनालिंग जाओ, शादी नहीं हुई तो क्या हुआ? अब तो सब जानते हैं कि तू मेरी औरत है, मेरे साथ रहती-सोती है. मांग-मांग कर कब तक कंट्रोल करेगी? आदमी करने में कंट्रोल नहीं तो फिर संतति का कैसा कंट्रोल?

* *

कुत्ते लगातार भूंक रहे थे. खोली पर टार्चलाईट फिसल-फिसल कर कुत्तों पर पड़ जाती थी. बबन बाहर निकला तो रोशनी उसकी आंखों को एक बार चौंधिया गयी.

—कौन?

—हम हैं, बबन. कांतोरेल से आये हैं.

—क्या बात है?

—तुम्हारे, पिताजी चल बसे. तुम इतनी दूर पहाड़ पर आ बसे हो कि तुम्हारा घर खोजते-खोजते एक घंटे से अधिक समय लग गया.

—अच्छा तो वह बूढ़ा साला मर गया! वह मरता नहीं तो शायद कोई मुझे खोजता भी नहीं. तुम लोगों को कैसे मालूम हुआ कि मैं अभी तक जिंदा हूं?

—बबन भैया, बिपत्त का समय है, गयी-गुजरी बातों को छोड़ दो. हम तो यहां तक आ भी गये. दूसरा होता तो तुम्हें इतना ढूंढ़ने की कोशिश नहीं करता. सोते आदमियों को जगा-जगा कर पूछते आये हैं. कोई कहता कि जेल में हो, कोई कहता लौटे हो.

जिंदगी के बस ये ही दो विकल्प तो हैं—इल्लिसिट रम और जेल. गैरकानूनी हरकतें तो आजकल आम हो गयी हैं. अंतर केवल इतना है कि जो हैसियतदार हैं

ह बाहर हैं और जो असमर्थ हैं, वह जेल की चक्की सता है. बबन के लिए जेल कोई बुरी जगह नहीं. ाना-पीना अच्छा मिलता है, दोस्त भी आत्मीयता रतते हैं और जेलरों को पटाना कोई मुश्किल काम हीं. पहली बार कुछ कष्ट जरूर अनुभव हुआ था पर सके बाद पूरी जेल धर्मशाला लगने लगी थी.

बाहर शराब और औरतें मिल जाती हैं और जेल ं जीने का थोड़ा बहुत एहसास हो जाता है, फिर आदमी ो चाहिए क्या? मड़ई की अपेक्षा जेल में कितनी सुरक्षा हसूस होती है, नींद भी खूब आती है.

* *

दोनों बबन के चिन्हारू हैं. बहुत दिनों के बाद मिले हैं, कुछ तो आतिथ्य होना चाहिए. उन्हें अंदर बुला कर उसने शराब की बोतल निकाली और दो बरतनों में ढाल ढाल कर शराब आगे बढ़ा दी. --यह तुम्हारे लिए बची थी, पी लो.

मोहन उसका जाना-पहचाना हमउम्र दोस्त है और दूसरा व्यक्ति नयी पीढ़ी का लगता है जिसके बारे में उसने कुछ जानना भी नहीं चाहा. उसने कहा था--चचा, मोटर में जगह है, हमारे साथ ही चलें. पर बबन ने यह कह कर इनकार कर दिया था कि वह सुबह बस के द्वारा आ जायेगा. वह जानता था कि शामरैल से कांतोरेल पहुंचने में उसे बहुत समय लग जायेगा और कभी-कभी सवारी मिलने की इतनी कठिनाई होती है कि पंगत में ही दिन बीत जाता है. फिर भी, वह साथ नहीं गया. उसे तो लांबिक (अवैध रम की गूढ़ोक्ति) चुआना था.

उन्होंने खड़े-खड़े पी ली.

उसे अपनों से इस बात पर चिढ़ हो गयी थी कि कि जब से छोटू पुलिस में भर्ती हुआ है, तब से बूढ़े ने वी. सी. टेन का पुश्तैनी धंधा छोड़ दिया है. कांतोरेल में कौन नहीं जानता कि छोटू ने बाप-बेटे के इसी रोजगार के सहारे पढ़ा-लिखा है और काम पर लगा है. अब उसे इसी कारोबार से नफरत हो गयी है.

घर में इल्लिसिट रम बरामद हो गया तो छोटू अपदस्थ हो सकता है. इस भय से बूढ़े ने यह खोटा व्यवसाय छोड़ तो दिया पर बबन की जेब एकदम खाली रहने लगी. उसे तंबाखू पानी के लिए छोटू के सामने हाथ फैलाना पड़ता. कभी-कभी उसने इधर-उधर रखा पैसा चुपके से उठा लिया पर यह आदत उसे अच्छी नहीं लगी. सिनेमा देखने के लिए एक बार उसने बूढ़े की जेब पर हाथ साफ किया. उस दिन घर में काफी हुड़दंग मचा था. बूढ़े ने कहा था--कोढ़ियिा-चोट्टा! न काम, न घाम, खा-पी कर मटरगश्ती करता है और बूढ़े बाप की चोरी करता है. जवानी में कमाई नहीं करेगा तो बुढ़ापे में करेगा? कान खोल कर सुन ले कि अब हम तेरा जिम्मा नहीं ले सकते.

बबन को यह बात चुभ गयी थी. पीठ पर यह कूबड़ नहीं होता तो वह भी किसी काम-धंधे में लग जाता. दरजी का काम तो वह सीख ही रहा था कि लोगों ने डरा दिया कि वह और कुबड़ा हो जायेगा और सेहत खराब हो जायेगी. फिर...

घर वालों ने तो हौसला नहीं बढ़ाया कि वह कोई काम सीखता. बचपन से उसने बारलू में औटती राब को देखा और नल्लिका में उतरती हुई अस्सी-नब्बे डिग्री की रम. जीने के लिए इससे आसान और क्या हो सकता है? उसने बूढ़े के साथ-साथ यह धंधा किया जिससे पूरे परिवार का पेट भरा, कंक्रीट का यह पक्का मकान बना और खेती-बाड़ी बढ़ी. छोटू को काम मिलते ही बबन का कूबड़ गोया संक्रामक हो गया. सब उसे ऐसे देखते जैसे घर में खारिश वाला कुत्ता कहीं से आ गया हो.

* *

खौलते खमीर से भाप उठ-उठ कर नल्लिका के जरिये पानी की टंडक से गुजरती हुई रम बन कर बूंद-बूंद टपकने लगी थी. बबन तो आंखों से प्रतिशोध और नफरत की ललाई उत्तर चुकी थी, उसके बदले में कतरे-दर-कतरे आंसू भर-भर कर लुढ़क रहे थे. जब अपनों ने ठुकरा दिया तो फिर कौन सुनेगा इस दिल की बात? कहा--मेरा बाप मर गया, अनित. मेरा अपना कोई नहीं. उसने अपनी आंखों को पोंछ लिया.

--उनके साथ चले जाते तो अच्छा था.

--सवेरे चला जाऊंगा.

--पैसा?

--आचून से उधार ले लूंगा.

आचून चीनी दुकानदार है जो उसकी रम सस्ते में खरीदता है और दाम चढ़ा कर बेचता है. साला धनी हो गया है. शहर में भी दुकान खोल दी है फिर भी शामारैल के पहाड़ पर रहना पसंद करता है. कहता है -- शहर में कुछ नहीं, पैसा तो देहातों में है. बबन को उसने उधार दे तो दिया पर शराब लेते समय कई पली अधिक ले लेगा.

शामारैल में बस जाती ही नहीं है. मोटरें घंटे-दो घंटे के अंतर से जाती हैं इसलिए सुबह होते ही वह टाट की थैली में लांबिक से भरा गालन् ले कर पैदल ही बेजूकाप पहुंचा.

अनीता साथ जाना चाहती थी पर उसने टाल दिया --न अनि, न फेरा, कोई पूछ ले कि यह कौन है तो क्या जबाब दूं? पेपे ने जिद की तो अनीता उस पर टूट पड़ी थी. कांतोरेल से निकल कर वह तीन गांवों में रह चुका है, इस हिसाब से अनीता उसकी तीसरी औरत है जिसके साथ वह पति का रोल अदा कर रहा है. वैसे उसने अपने गांव में एक लड़की से निस्बत जोड़ी थी, पर लड़की वालों ने आपत्ति की थी--कुबड़ा अपना पेट नहीं पाल सकता तो बीवी-बच्चा कैसे पोसेगा? छोटू की कई जगहों से बात आयी पर उसने अस्वीकार किया--बड़का का हो जाये, तब करूंगा. पर बड़का उर्फ बबन को लड़की पसंद ही नहीं करती. उसका कूबड़ हर किसीके सर पर लद जाता है.

एक बार दो बहनों की बात आयी थी. घर वाले प्रसन्न हो गये कि बड़का का भाग्य चमका पर लड़की ने ना कर दी थी. छोटू की बात भी कट गयी. धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि उसे क्वांरा ही रहना गवारा

कर लेना चाहिए. शादी का प्रस्ताव कर के हर बार उसके साथ मजाक ही किया जाता है. उस दिन जब उसे कोढ़िया—चोट्टा कहा गया था, उस दिन उस पर कहर-सा टूट पड़ा था. उसी क्षण उसने तै कर लिया था कि अब वह और ढेर दिन किसी पर बोझ नहीं बनेगा.

* *

बबन हर बार जेल से निकलता है तो अपने बाप के पास वापस चला जाना चाहता है. पर उसे ऐसा लगता है कि वह उन सबकी खुशहाली में बला का वह रक्तपूर्ण घड़ा बन कर जा रहा है जो ऋषियों ने रावण को कर रूप में सर्वनाश के हेतु दिया था.

थाने का हर अफसर उसका दोस्त है, और नये-पुराने सब मुखबिर उससे हाथ मिलाते हैं. इस फील्ड में वह इतना आ-जा चुका है कि उसे यथेष्ट जानकारी मिल गयी है. कौन बालाई आमदनी खाता है, किसे झिंगे पसंद हैं, किस वकील को ताड़ का गोंफा भाता है, किस जज का घर कहां है, कौन अच्छी वकालत करता है? यह सारी कुंजी बबन के पास है.

एक बार जिला मजिस्ट्रेट ने उस पर कृपा कर दी जब उसने कहा कि कुबे की बजह से वह काम नहीं कर पाता है. उसे कोई नौकरी नहीं मिलती है और विवश हो कर यही कारबार करना पड़ता है. उसे सोशल सेक्युरिटी की ओर से बीस रुपये माहवार मिलने लगे. शर्त यह थी कि अब वह यह व्यवसाय छोड़ देगा और एक ही जगह पर भले आदमी की तरह रहेगा. तभी से शामारैल के पहाड़ पर बच्चे वाली अनीता के साथ वह रहने लगा है.

* *

वर्षों बाद सुयाक के थानेदार ने उसे पहचान लिया और बुला कर थैली का माल देखा. कालर पकड़ कर थाने ले गया और हिरासत में रख लिया. उसके लाख कहने पर कि वह अपने बाप की मरनी में जा रहा है, दारोगा ने उसे नहीं छोड़ा क्योंकि पहले भी वह कई बार यह बहाना कर चुका है.

उसने सोचा था कि गर्मी में बहुत सारे लोग आयेंगे. कांतोरेल में पुलिस चौकी बन जाने से वहां पर लांबिक का कारबार बंद हो गया है, अतः यह चीज वहां पर खूब खपेगी. लौटने का भाड़ा तो मिलेगा ही, अच्छा दाम मिल गया तो एकाध कबाड़ कपड़े भी मिल जायेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ.

उसे दुख है तो केवल इतना कि उसका बाप मरा है और उसे यहां रोक लिया गया है. पकड़े जाने का उसे तनिक भी विक्षोभ नहीं. उसे तो फरियाद का मौका मिला है. इस बार पेशी हुई तो वह जज से अवश्य कहेगा कि इस महंगी में उसके बीस रुपये में न कोई वृद्धि हुई है न 'कोला' (मूल्यवृद्धि के मान पर मिलने वाली वेतन-वृद्धि—कास्ट ऑफ लीविंग अलाउंस) ही मिला है. अब बीवी-बच्चे हैं, बीस बस नहीं होता है.

उसने देखा कि एक सिपाही उसकी ओर आ रहा है. बूट की चरमराहट से उसका दिल दहल गया. □□□

ला फलोरा मारिशस.

आत्मरचना (२८)

कहानी बहुत बड़ी है, बहुत छोटी भी, जैसी कि जिंदगी होती है. लम्हों, क्षणों में जी जाती जिंदगी फैल कर दिनों, वर्षों का विस्तार पाती है. . . . और फिर सिमट कर शून्य भर रह जाती है.

याद आता है, एक अबोध लड़की थी. खरे गोरे रंग. बड़ी उज्ज्वल आंखों और रेशमी, काले बालों वाली. उस अबोध लड़की को दो आदतें पड़ गयी थीं— एक, अंगूठा चूसने की, दो— आकाश देखने की! और जब वह अंगूठा चूसते-चूसते, आकाश को देखते, चलने लगती, तो गिर पड़ती थी. गिर पड़ती, तो चोट लगती थी. चोट लगती, तो दर्द होता था. आकाश को देखने की परिणति में उसे दर्द मिलता था. लेकिन वह थी कि आकाश को देखते-देखते चलना छोड़ नहीं सकती थी. और चोट थी कि बार-बार लगती थी. और दर्द था कि बार-बार मिलता था. वह अबोध लड़की आज चोटों और दर्द से भरपूर है. किंतु आकाश को देखना वह आज भी नहीं छोड़ सकी है.

आकाश उसके लिए पर्याय है विस्तार का— उन्मुक्त विस्तार का. . . . जिसमें उड़ जाने के लिए वह होश संभालने के बाद से सदा आतुर रही है. आकाश की नीलाभ उज्ज्वलता उसके लिए पर्याय रही है उस सौंदर्य का, जिसे उसने सांसों में उतार लेना चाहा है. . . आकाश पर क्षण-क्षण बिखरते रंग उसकी चेतना में रंग भरते रहे हैं. . . और धरती पर जकड़ी खड़ी वह आकाश में उड़ जाने के लिए संघर्ष करती रह गयी है. . . . क्योंकि वह पंखहीन है. पंखहीनता उसकी नियति है. . . . आकाश उसकी कामना. . . इस नियति और कामना के बीच झूलती उसकी जिंदगी शायद एक शून्य है. . . . शायद यह शून्य वैसा ही है, जैसा आकाश होता है— बहुत कुछ और कुछ भी नहीं.

आज आकाश को देखने के साथ एक आदत और जुड़ गयी है. अंगूठा चूसना वह छोड़ चुकी है, तो आकाश को देखने के साथ कुछ और भी होना चाहिए न! ऐसा कुछ, जो उसके पार्थिव अस्तित्व को धरती से जोड़े रख सके. तो वह अगरबत्ती से जुड़ गयी है. अंगूठा चूसने की वह अबोधता, आज जीवन और जगत के बोधों से, और उससे भी अधिक दर्द और चोटों के यथार्थ से इतनी बोझिल हो गयी है कि यदि अब पंख मिल भी जायें तो भी उड़ नहीं सकेगी, आकाश को देखते-देखते थक कर पंखहीनता के क्षण-क्षण सालते यथार्थ को झेलती वह बोध-मयी अब अपने कमरे के एकांत में अगरबत्ती जला लेती है. . . . फिर उस घुटते एकांत को देर तक कड़वे घूंटों की तरह पीती वह उस धीरे-धीरे जलती, सुगंध बिखेरती अगरबत्ती को एकटक देखती रहती है. अगरबत्ती उसे अपने अस्तित्व का पर्याय लगती है.

जलना दीप्ति की नियति रही है, आग को आलोक बनाना उसकी प्रकृति. . . और इन दोनों का द्वंद्व उसकी जिंदगी. उसे याद नहीं, कब से उसे अपने भीतर कुछ 'उज्ज्वल' होने की चेतना रही है. यह 'उज्ज्वल' उसका जीवन-दर्शन रहा है. यह 'उज्ज्वल' उसकी विडंबना भी रहा है.

* *

सूरज में आग है तो वह एक प्रकाशपुंज बन गया है, जो ऊष्मा देता है, जीवन देता है, आलोक देता है. दीपक उस आग को अपने लघु परिवेश में आत्मसात कर लेता है, तो निविड़ अंधकार से जूझता, जलता, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'. . . को जीने लगता है. सूरज का तपना और दीपक का जलना सार्थक होता है. किंतु अगरबत्ती का तपना या जलना एक सुगंध की क्षणिक परिणति के

गर्दिश के दिन

• दीप्ति खंडेलवाल

अतिरिक्त कुछ नहीं होता. जलती अगरबत्ती भी है. . . जलने की दाह को झेलती राख होती जाती है. . . किंतु एक हलकी-सी सुगंध के अतिरिक्त अपनी दाह का कोई प्रमाण उसके पास नहीं होता. और वह सुगंध भी क्षणिक

जून, १९७२ से सारिका में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, राम सरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, रॉबिन शॉ पुष्प तथा राजेंद्र यादव की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और साथ ही सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्ष-शील यथार्थ का निरूपण करने वाली, प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी की कथा-लेखिका दीप्ति खंडेलवाल की आत्मरचना



होती है. और सुगंध को न छुआ जा सकता है, न देखा, केवल महसूस किया जा सकता है. वह भी तब, जब बहुत पास से उसे सांसों में भरा जा सके. किंतु किसी का पार्थिव अस्तित्व यदि अगरबत्ती-सा हो उठे, तो सूरज और दीपक की तुलना में वह नगण्य हो कर रह जाता है. सुगंध अपने आप में एक सूक्ष्म उपलब्धि हो सकती है, किंतु आग और आलोक की तुलना में वह कहीं नहीं ठहरती.

उसने सूरज-सा प्रकाशपुंज बनना चाहा था कि जीवन दे सके, आलोक दे सके. उसने दीपक-सा जलना चाहा था कि अंधकार से जूझ सके. . . . आग को उसने आत्मसात कर लिया था. . . 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उसका जीवन-दर्शन बन गया था, किंतु इनकी परिणति में वह केवल एक अगरबत्ती बन कर रह गयी है. हां, उसके भीतर वह आग अभी भी भड़क रही है, जिसे वह आलोक बनाना चाहती है और इस आग को आलोक बनाने के प्रयास में वह जलने की शर्त भी पूरी कर रही है.

पिता उसके संदर्भ में दो घटनाओं का जिक्र करते हैं. पहली घटना उसकी देह की है. बहुत छोटी थी वह, शायद पूरे एक वर्ष की भी नहीं. किसी धार्मिक उपलक्ष्य में पिता नदी में स्नान कर रहे थे, तो सोचा, एक गोता उस नन्ही जान को भी लगवा दें. पिता ने उसे एक बार डुबो कर निकाला ही था कि वह न रोयी, न चीखी, बस नीली पड़ गयी. पिता दुखी और चकित, एक साथ थे. न पानी इतना ठंडा था कि एक वर्ष की बच्ची की देह नीली पड़ जाये, न वह बच्ची ही देखने में इतनी दुर्बल थी. लेकिन नीली वह पड़ गयी थी.

और फिर उसका नीला पड़ना चलता रहा. तीन वर्ष की आयु तक उसे सात बार चेचक निकल चुकी थी. छह वर्ष की उम्र में उसे डिफ्थीरिया हुआ था. नौ वर्ष की अवस्था में वह खूनी पेचिश के कारण मरते-मरते बची थी. और सोलह वर्ष का कैलेंडर अभी बदला नहीं गया था कि वह टॉयफॉयड के आक्रमण से जो शैया पर गिरी, तो आज तक नहीं उठ सकी है. टॉयफॉयड ने उसे ऐसा क्षत-विक्षत किया कि उसका अंग-अंग पंगु-सा हो कर रह गया. सोलहवें वर्ष के वसंत के बीच खड़ी वह देखती रह गयी कि उसके चारों ओर पतझड़ की हवा चलने लगी है. . . उसकी देह का वसंत पथरा गया था.

आज भी जब उसकी पथराई देह तीन हजार से भी अधिक इंजेक्शनों से कोंची जा चुकी है और वह अनगिन दवा-प्रयोगों की त्रासदी से गुजर चुकी है, उसकी देह का नीला पड़ना जारी है. दोष उन हवाओं का नहीं, जिनमें वह सांस लेती है, दोष शायद उन पंचतत्वों का है, जिनसे उसका निर्माण हुआ है. और देह की यह अस्वस्थता इतनी दीर्घ हो गयी है कि अब मन भी रोगी हो उठा है. देह की यातना मन की यातना बनी जा रही है. . .जिस देह में उसे रहना है, वह देह उससे पग-पग पर विद्रोह किये रहती है. . .और उसका सब कुछ विरूप हो कर रह जाता है. उसकी आत्मा के रंग उसके जीवन में केवल इसलिए नहीं उतर सके कि बीच में उसकी चिर-अस्वस्थता की दीवार खड़ी हो गयी थी. . . आज भी जब वह लहूलुहान है, पराजित है, आंसुओं से अधिक अपने ही रक्त से भीगी हुई है, तो भी वह इस दीवार पर अपनी कोमल, दुर्बल हथेलियों से निरंतर प्रहार कर रही है. . .और, और अधिक लहूलुहान हुई जा रही है. यह दीवार शायद नहीं, निश्चित रूप से उसकी नियति है. . . और नियति से कोई जूझ भले ही ले, जीत नहीं सकता.

★ ★

अगरबत्ती जल कर बुझ जाती है और उसकी सुगंध भी विलीन हो जाती है तो वह उठ कर फिर खिड़की खोल लेती है और देखने लगती है—आकाश के उस अंतहीन विस्तार को, उस नीलाभ उज्ज्वलता को, उन बिखरते-मिटते रंगों को, जिन्हें पंखों से तौल लेने का सपना कभी उसका था. . आज पंखहीनता उसका यथार्थ है!

दूसरी घटना उसकी चेतना की है. पिता बताते हैं, उसके मामा का विवाह था. बारात निकल रही थी. उस बारात में, रेशमी फ्रॉक पहने, मोटर में बैठी और शायद अंगूठा चूसती वह भी थी कि दूसरी ओर से एक अर्थी गुजरी. शहनाइयों के स्वरों से 'राम नाम सत्य है' के बोल टकरा गये. उसके मुंह से अंगूठा निकल गया—एक तरफ बारात जा रही है, दूसरी तरफ कोई मर कर जा रहा है, शायद यही जिंदगी है! उसने साफ-साफ कहा. उसकी अबोध आंखें किसी दार्शनिक बोध से फैल गयी थीं. पिता ने उसे खींच कर सटा लिया था. वह उसे फिर बारात दिखाने लगे थे कि दार्शनिक बोध से फैल गयी उसकी आंखें अबोधत्व में सिमट जायें.

वह डर गये थे कि इतनी छोटी लड़की ऐसी बड़ी बात क्यों कर रही है! वह जानते थे कि बड़ी बातें करने वाले छोटे बच्चे संसार के लिए चुनौती बन जाते हैं और संसार चुनौती बनने वालों के बुत पीछे बनाता है, पहले उन्हें सूली पर चढ़ाता है. शायद पिता समझ गये थे कि उनकी बेटी को भी सूली पर चढ़ाया जायेगा. पिता का अनुमान गलत नहीं निकला, उनकी बेटी को सूली ही मिली है.

तीसरी बात जो पिता को नहीं, लड़की को याद है, वह है, पिता का उसे कहानियां सुनाना. पिता उसे अनेक कहानियां सुनाते, उसे केवल एक याद रह जाती—झांसी की रानी की. दांतों से घोड़े की लगाम पकड़े, दोनों हाथों से तलवार चलाती, रक्त से नहाती, स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती, वह झांसी की रानी, उस कहानी सुनने वाली लड़की की आंखों में इतनी मूर्त्त हो उठती कि वह चीख पड़ती—मैं भी झांसी की रानी बनूंगी. अनेक कहानियों के अनेक पात्रों में से उसने झांसी की रानी को ही क्यों अपना आदर्श चुना, यह वह तब नहीं बता सकती थी, अब बता सकती है—अब जब वह एक लेखिका बन चुकी है, उसके हाथ में तलवार नहीं, लेखनी है, तो इस लेखनी से वह तलवार का ही काम लेना चाहती है. यानी वह, वह सब काट फेंकना चाहती है जो अन्याय है, गुलामी है, गलत है! अर्थात वह सत्य को बदलते संदर्भों के व्यापक परिवेश में आंक लेना चाहती है, फिर चाहे वह लेखन में हो, चाहे जीवन में. सत्य को वह रूढ़ अर्थों में नहीं, चेतना के जीवंत धरातल पर, सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्तरों पर, जी लेना चाहती है. आज भी. . .अब भी. . .किंतु लेखन में चाहे वह किसी सत्य को पा भी सकी हो, जीवन में सब कुछ झूठ हो कर रह गया है. और जिसे सत्य की चेतना और झूठ का धरातल एक साथ मिला हो, उसकी सांसें एक साथ जीती-मरती रह जाती हैं.

* *

सत्रहवें वर्ष में एक ओर उसकी क्वांरी, कोमल, सुंदर देह में वसंत पथरा रहा था, दूसरी ओर उसके आंगन में शहनाइयां बजी थीं. उसके मेहंदी-लगे, लाल हाथों किंतु रक्तहीनता से सफेद पड़ी कलाइयों को किसी ने थाम लिया था. उसे थाम लेने वाले हाथ जिस राम के थे, वह निश्चय ही अभिराम थे—बिल्कुल सपनों के राजकुमार जैसे! एक ओर वह थरथरा रही थी कि उसे सपनों का राजकुमार मिला था. दूसरी ओर वह कांप भी रही थी कि सपनों के राजकुमार जिस महल में रहते थे, वह जीर्ण-शीर्ण था, पुराना था, भुतहा था. उसे फिर दो विरोधी तत्व एक साथ मिल गये थे. सपनों के राजकुमार का चिर इच्छित, चिर काम्य साथ और साथ-साथ रहने के लिए भुतहा महल. स्पष्ट कर दूं, वह भुतहा महल रूढ़ियों का था, अंधविश्वासों का. . .सत्य वहां बंदी था.

उस कोमल और दुर्बल देह वाली युवती को, जिसके मन में प्रतिपल किसी सत्य और सुंदर की चेतना फड़फड़ाया करती थी, उस भुतहे महल के भूत हांट करने लगे. सपनों के राजकुमार उन भूतों के आदी थे, वह उन्हें सहज स्वीकार कर चुके थे, किंतु वह युवती धीरे-धीरे उन प्रेतछायाओं के बीच होश खोने लगी थी. यदि उसके पैरों में शक्ति होती तो वह निश्चय ही उस महल से भाग निकलती . . .उस महल में सत्य के साथ वह युवती भी बंदिनी बना दी गयी थी.

सीता का आदर्श भी उस युवती का चिर इच्छित, चिर काम्य आदर्श था. तन-मन में उजले कमलों की शुभ्रता और सुगंध लिये सीता एकमात्र राम की थी . . . किंतु इतिहास की वह कोमल, उज्ज्वल सीता दुर्बल नहीं थी. उसे कर्त्तव्य के नाम पर राम के साथ वन के कंटीले-कंकरीले रास्ते पर चलना आता था. उसे राम के रामत्व के साथ रावण के राक्षसत्व का सामना करना भी आता था. उसे अग्नि-परीक्षा देना भी आता था... किंतु इन सबके पश्चात् भी जो अस्वीकार की दुर्वह त्रासदी से खंड-खंड होती भूमि में समा गयी थी. . और भूमि में समा जाना भी हर सीता की नियति होती है.

उस युवती को राम मिल गये थे और वह सीता बन जाना चाहती थी. एक स्वतंत्र अस्तित्व वाली सीता, जो सत्य को उसकी जड़ता में नहीं, चेतना में जीना चाहती थी. और फिर, एक ओर उसकी सत्य की चेतना थी, दूसरी ओर रोगी देह में अचेत होता उसका पार्थिव अस्तित्व था . . .वह राम की अनुगामिनी नहीं, सहगामिनी बनना चाहती थी, किंतु केवल बोझ बन कर रह गयी थी. फिर राम की प्रशस्ति में कसीदे पढ़े गये और निर्दोष सीता बोझ बन जाने के कारण अपराधिनी बन कर रह गयी.

और, यद्यपि अग्नि-परीक्षाओं का साहस उसमें भी था . . .वह अग्नि-परीक्षाएं देती भी रही . . .फिर भी उसके राम भी शत-प्रतिशत राम थे! सीता के लिए रावण से युद्ध करने वाले योद्धा राम, लोकापवाद जैसी हलकी बातों के डर से सीता का परित्याग करने वाले कायर राम भी थे. दो विरोधी राम दो ओर थे और बीच में अग्नि-परीक्षा देती वह सीता थी, अर्थात् वह युवती थी, जो केवल नियति के कारण अवश हो कर रह गयी थी, अन्यथा कदाचित जीवन में वह एक नयी रामायण लिख देती. तब वह कदाचित् राम के रामत्व को एक नयी परिभाषा देती, अपने सीतात्व को भी. किंतु, ऐसा नहीं हुआ, हो नहीं सका. हुआ केवल यह है कि राम का अभिराम साहचर्य पा कर भी एक दुर्वह त्रासदी उसकी नियति रही है. . . वह खंड-खंड भी हो चुकी है. . .कदाचित् अब केवल भूमि में समा जाना शेष है.

आज भी वह सोचती है कि सत्य को जीने की, सुंदर को पाने की अपनी जिद वह छोड़ क्यों नहीं देती? क्यों नहीं बाहर और भीतर दो स्तरों पर जीना सीख लेती? क्यों नहीं हार मान लेती? किंतु सारी स्थूल पराजयों के नेपथ्य में कहीं कोई संभावित जय का सूक्ष्म स्वर है, जिसे अपने बहुत भीतर केवल वह सुन पाती है . . .यह स्वर बहुत क्षीण हो चुका है, फिर भी कहीं है. . .जिस क्षण यह स्वर नहीं होगा, वह भी नहीं होगी.

न, आप गलत न समझें. न इस सीता का परित्याग हुआ है, न होगा. स्थूल स्तर पर वे सदा साथ रहेंगे—किंतु नियति के क्रूर बाण से विद्ध क्रौंच-युगल के समान मृत्यु के पलों में भी मिलन की चिर कामना चंचु में लिये...हां, रस से भरे पात्र और कांप-कांप जाने वाले हाथ भी उसे एक साथ मिले हैं ...रस की तृप्ति केवल रस की प्राप्ति नहीं होती...उस रस का ओंठों से प्राणों तक उतर जाना होती है ...! और इस अर्थ में उसे रस कहां मिला है? ...मिले हैं सूखते ओंठ और चटखते प्राण...जीवन भर अतृप्ति का अभिशाप झेला है उसने ...पल-पल रस का विद्रूप सहा है उसने ...और कदाचित उसने रस के पात्र बांटे भी हैं, किंतु स्वयं प्यासी रही आयी है. स्थूल स्तर पर साहचर्य मिला है उसे, किंतु सूक्ष्म स्तर पर वह एकाकिनी है—पंखहीन और एकाकिनी. यह एकाकीपन जैसे एक अंतहीन भटकन है—भटकन, जो किसी भी तलाश की शर्त होती है. यह पंखहीनता जैसे एक चिरंतन दर्द है—दर्द, जो किसी भी रचनात्मकता की शर्त होता है. हां, दर्द का भी एक दर्शन होता है ...दर्द आत्मा का संस्कार कर देता है... और वह अपने दर्द के दर्शन में जीना सीख चुकी है... दर्द उसकी आत्मा का संस्कार भी कर चुका है.

तो सत्य और सुंदर की चेतना से स्पंदित रोम-रोम लिये उसका यथार्थ यह है कि वह भयानक अनिद्रा की रोगिणी है ...बीस वर्षों से सेडेटिव्स ले रही है... नारी देह के रोग उसे घेरे रहे हैं...उसका अंग-अंग कष्टों से जकड़ा रहा है ...घोर रक्ताल्पता के कारण जीना उसके लिए कठिन रहा है और वह इतना कम खा-पी पाती है कि उसे फूल सूंघने वाली राजकुमारी की संज्ञा दी जा सकती है ...और सब कुछ तो वह झेल लेती है, किंतु अनिद्रा के कारण अंतहीन बनी रातें उससे काटे नहीं कटतीं...करवटें बदलती वह तड़पती होती है...फिर कोई दिन उसके लिए नया नहीं होता...केवल वह उस निरर्थक छटपटाहट की पुनरावृत्ति मात्र होता है, जिसे जाने कब से वह झेल रही है... और जाने कब तक झेलती रहेगी...थकी रात का सहारा ले कर खड़ा होता उसका दिन लड़खड़ाता होता है ... और लड़खड़ाते दिन से गुजर कर उसकी रात और थक जाती है ...रात के सन्नाटों में शैया पर अकेली करवटें बदलती वह केवल सोचती होती है—

किसी की शबे वस्ल सोते कटे हैं
किसी की शबे हिज्र रोते कटे हैं
ये कैसी शब है या इलाही
न सोते कटे हैं न रोते कटे हैं!

कितनी सच हो गयी हैं ये पंक्तियां उसके संदर्भ में! उसकी अपनी देह ही उसका 'वाटरलू' बन गयी. एक दुर्बल देह में बंदी एक प्रबल मन हारता रहा.

* *

बार-बार याद आता है, उसके अंग्रेजी के ट्यूटर, जो उसकी उड़ान भरने की क्षमता से बहुत आशा रखते थे, कहते रह गये थे—सांग बर्ड! व्हाई हैस्ट दाउ ए ब्रोकन विंग!

अपने आत्मपरिचय में उसने लिखा है :

एक पराजित नारी देह में बंदी एक अपराजेय मन है, जिसके संघर्ष भी इसलिए अमूर्त रहे कि उसकी आत्मा के रंग उसके जीवन में नहीं उतर सके ... दीप्ति केवल इसलिए दो टुकड़ों में बंट कर रह गयी कि बीच में उसकी चिर रुग्णता की दीवार खड़ी हो गयी थी ...फिर नियति से दो टुकड़ों में बंटा यह पंखहीन अस्तित्व जिंदगी की दीवारों पर सिर पटकता रहा... किंतु खंडित आकाश को झेल जाने का साहस उसमें था, कांटों भरी धरती पर चल कर लहू-लुहान होने का भी ...और खंडित स्तरों पर चलती वह बाहर से भीतर की ओर लौटती गयी...दीप्ति की कहानियां इसी बाहर से भीतर की ओर की यात्रा की कथाएं हैं ...

और खंडित स्तरों पर चलती, बाहर से भीतर की ओर की यह यात्रा दीप्ति का अति त्रासद भोगा हुआ यथार्थ रहा है. स्थूल स्तर पर वह निरंतर हार रही थी ...सूक्ष्म स्तर पर निरंतर मर रही थी ...उसका यथार्थ इतना विद्रूप था कि चेतना के स्तर पर सुंदर एक विद्रूप बन कर रह गया ...फिर इसी हार, इसी मृत्यु, इसी विद्रूप के बीच उसके लेखन ने जन्म लिया... जैसे उसे लड़खड़ाते पैरों पर खड़े होने के लिए एक अपनी जमीन मिल गयी ...जैसे उसे सारे अस्वीकारों के बीच एक स्वीकार मिल गया.

मानवीय संवेदनाओं के प्रति व्यापक धरातल पर खड़ी वह कहती है—लेखक केवल इस अर्थ में एक असामान्य प्राणी होता है कि वह मानसिक धरातल पर, विभिन्न कोणों से, अनेक रूपों में जी सकता है. ये रूप, ये कोण, उसके अपने व्यक्तिगत जीवन के ही हों, ऐसा कहां आवश्यक है? हर भोगा हुआ यथार्थ स्थूल स्तर पर उसका हो, न हो, संवेदना के स्तर पर उसका अपना होता है. मृत्यु को जानने के लिए मरना जरूरी नहीं होता.

संवेदनाओं के धरातल पर खड़ी वह अपने पात्रों के साथ जीती-मरती होती है...यथार्थ को हर कोण से चित्रित करती होती है ...किंतु उन क्षणों वह लेखिका नहीं, स्वयं पात्र होती है, चित्रकार नहीं, स्वयं चित्र होती है. किसी भी मानवीय स्थिति से, किसी भी दर्द से उसका तादात्म्य इतना गहरा है कि वह तादात्म्य किसी भी कहानी को उसका भोगा हुआ यथार्थ बना जाता है ...

अपने लेखकीय वक्तव्य में उसने कहा है—आदमी कुत्ता हो सकता है, लेकिन आदमी केवल कुत्ता ही नहीं है. उसका यह कथन उसके समस्त लेखन में प्रतिध्वनित एक सूक्ष्म स्वर है. आदमी से बहुत प्यार है उसे. उसने साफ-साफ देखा है—यदि देवत्व एक भ्रम है, तो प्रभुत्व भी सच नहीं. आदमी तो इन दोनों के बीच कहीं होता है. अपनी कहानियों में वह इसी बीच के आदमी को तलाश करती होती है... इस बीच के

आदमी से अतिशय प्यार है उसे!

पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक की कोई रूढ़िगत मान्यता को वह नहीं मानती, किंतु प्रकाश में उसकी आस्था है और प्रकाश और अंधकार के भेद को वह दृढ़ता से स्वीकारती है--जिद की हद तक.

कला के संदर्भ में किसी पश्चिमी कलाविद का यह कथन उसकी कला-चेतना पर अंकित हो कर रह गया है--सेब के चित्रण में सेब के चित्रण के साथ कुछ और भी होना चाहिए--यही 'कुछ और' कला है. इस कथन में वह अपना लेखकीय अनुभव और जोड़ देती है--यही 'कुछ और' तो वह कुछ है जो संवेदनाओं के माध्यम से कला की सृष्टि करता है. वस्तु की प्रामाणिकता और शिल्प के सौष्ठव को यही कुछ और जीवंतता, व्यापकता और अर्थ देता है. संवेदनाओं की तादात्म्य में परिणति जितनी तीव्र और व्यापक होगी, रचना उतनी ही सार्थक होगी.

प्रयोग के लिए प्रयोग में उसका विश्वास नहीं है. प्रयोग कला के लिए और कला जीवन के लिए--उसका विश्वास भी है, उसका प्रयास भी. उसके अनुसार रचनाकार को प्रतिबद्ध होना चाहिए--युग के प्रति, शाश्वत मूल्यों के प्रति, एवं अपनी कला-चेतना के प्रति. उसकी पसलियों से एक प्रश्न बार-बार टकराता है--क्या इन प्रतिबद्धताओं के प्रति मैं ईमानदार हूं? या मैंने भी रचनाधर्मिता के धर्म को झुठलाया है? क्या दिशा की खोज में मैं भी दिग्भ्रमित हूं?

* *

कागज पर कलम से, कुछ सिलसिले से, लिखना वह सन् ७० के आसपास ही शुरू कर सकी.

'क्षितिज', 'मूल्य', 'विषपायी', 'हव्वा', 'एक पारो पुरबैया', 'परिणति' एवं **'शेष-अशेष'** उसकी चर्चित रचनाएं रही हैं. **'क्षितिज'** में दंपती की चिर ट्रेजेडी को दीप्ति ने अपने समकालीन 'अंदाजे बयां' में कह दिया था. उसने बार-बार सुना है--यथार्थ की बेझिझक एवं ईमानदार अभिव्यक्ति के साथ मानवीय संवेदनाओं को गहरे स्पर्श करने तथा झंकृत करने की अप्रतिम सामर्थ्य आपमें है...

किंतु यदि इस अप्रतिम सामर्थ्य की चर्चा में आप दीप्ति से जानना चाहें कि उस सामर्थ्य का कितना गर्व है उसे? तो वह अचकचा जायेगी, फिर धीरे से कहेगी--सामने अनंत पारावार है और मेरी अंजुलि में केवल कुछ बूंदें....इन बूंदों का गर्व मुझे क्या होगा!

'हव्वा' एवं **'विषपायी'** उसकी सेक्स-स्नात रचनाएं हैं, वह स्वीकार करती है. फिर सेक्स को ले कर पाठकों के प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न ही और कर देती है--**'हव्वा'** एवं **'विषपायी'** सेक्स-स्नात रचनाएं हैं ...किंतु, क्या इन रचनाओं में सुगंध एवं उजालों का वह संस्पर्श नहीं, जो इनमें वर्णित निर्मम, नग्न यथार्थ के सामयिक सत्य को सत्य की शाश्वतता से संपृक्त कर दे?

'विषपायी' के संदर्भ में उसने अपने एक जबरदस्त प्रशंसक को बधाइयों के उत्तर में लिखा था--रचना इसलिए बधाई के योग्य नहीं है कि इसमें एक लेखिका ने 'होमोसेक्सुएलिटी' पर कलम चलायी है, वरन् इसलिए कि विषपायी सुगंध और उजालों के लिए छटपटाती मानवीय चेतना की संघर्ष-कथा है! ये सुगंध और उजाले दीप्ति की समग्र लेखकीय चेतना एवं रचनाधर्मिता के लक्ष्य हैं.

चेतना के स्तर पर दीप्ति में गौतम की करुणा थरथराया करती है, कि वह बांहें पसार कर सारी पीड़ित मानवता को अपनी करुणा में समेट ले... सुकरात की तरह वह जहर का प्याला पी कर मरने को तत्पर रहती है, कि कुछ अमर दे सके! और ईसा की तरह वह त्रासदियों की सूली पर चढ़ा ही करती है ... वह बहुत आहत है, बहुत क्षत-विक्षत भी ... पता नहीं, उसका बुत बनाया जायेगा या समय अपनी निर्मम ठोकरें मार कर उसे किसी अतल गर्त्त में ढकेल देगा... किंतु क्या एक ईमानदार संघर्ष अपने आपमें एक उपलब्धि भी नहीं होता? तो, दीप्ति का संघर्ष ही उसकी एकमात्र उपलब्धि है.

हां, लेखकीय संदर्भ में एक बात बताना वह भूली जा रही है कि उसका मूल स्वर कवि का था... यह कवि वर्षों दीप्ति की चेतना को झंकृत करता रहा. उसके काव्य के विषय होते थे -- प्रेम और सौंदर्य एवं प्रकृति और दर्शन. एक समय था कि उसकी कविताएं प्रकाशित हुई थीं, सराही भी गयी थीं. किंतु फिर, जीवन की उठा-पटक ने उसकी लेखनी को कल्पना के कोमल आकाश से उतार कर यथार्थ की कांटों भरी धरती पर ला खड़ा किया. और फिर कहानी घावों के रिसते आंसू पोंछने लगी. अब, कविता दीप्ति को एक छद्म लगती है. प्रेम और सौंदर्य के अर्थ उसके निकट बदल गये हैं... प्रेम और सौंदर्य के स्थान पर जब यथार्थ का कटु और कुरूप उसके रूबरू खड़ा हो गया तो उसने घबरा कर आंखें नहीं बंद कीं, उस रूबरू खड़े यथार्थ को भी अपना लिया... फिर वह प्रेम और सौंदर्य के कैनवस पर कटु और कुरूप के चित्र खींचने लगी.

वह केवल दो सौ के लगभग कविताएं और साठ के लगभग कहानियां लिख सकी है. कविताएं दराज में बंद हैं. कहानियां लगभग सभी प्रकाशित हो चुकी हैं. और अब वह चाहे भी तो कविता नहीं लिख पाती, कहानियां न चाहने पर भी लिखती चली जाती हैं... शायद इसलिए कि जिंदगी कविता नहीं होती, कहानी होती है. अपने कथाकार-रूप से दीप्ति को बहुत मोह है... शायद इसलिए कि यह रूप उसकी जख्म खाती जिजीविषा का एकमात्र प्रमाण है.

लेखन उसके सिर पर एक जुनून की तरह सवार होता है... एक ज्वार की तरह सारे बांध तोड़ कर वह निकलता है... एक आग की तरह भड़क उठता है... उसकी हर कहानी केवल एक या दो सिटिंग का परिणाम है और जब वह लिखती होती है, तब उसे अपना भी होश नहीं होता... रचना-क्षण उसके लिए आत्म-विस्मृति के तन्मय क्षण होते हैं.

वह शून्य होती है कि कोई सामने आता है, कोई घटना घटती है, कोई स्थिति करवट लेती है. . . कोई चोट लगती है. . . कोई दर्द होता है. . . फिर यह 'कोई' उसके भीतर दफन मुरदों को जिंदा कर देता है. . . और कोई कहानी जन्म लेती है. उसके भीतर मुरदों का इतना विशाल अजायबघर है कि कभी-कभी जब वह अकेली उस अजायबघर में घूमती है तो चलते-चलते थक जाती है, लेकिन अजायबघर है कि खत्म नहीं होता. . . इस अजायबघर का दशमांश भी तो न वह देख पायी है, न दिखा पायी है. . . वह स्वयं भी तो इस अजायबघर में जाने कितने रूपों में दफन है.

* *

इस आत्मलेख में आपके सम्मुख दीप्ति बाहर से भीतर की ओर गयी थी, अब फिर बाहर आती है. . . नहीं, लीजिए, वह भीतर और बाहर की संधि-रेखा पर खड़ी हो गयी है.

जन्म और मृत्यु के जिस फासले को जिंदगी कहते हैं, दीप्ति का वह फासला गतिहीन रहा है. प्रकृति से कर्मवादिनी वह नियति से अकर्मण्य हो कर रह गयी है —— निर्दोष, किंतु अकर्मण्यता की अपराधिनी. और उम्र उस पर से नहीं गुजरी है, वह उम्र पर से गुजर गयी है —— अछूती, अतृप्त, अनजियी!

उसके पास न कोई उल्लेखनीय डिग्री है, न कोई स्पृहणीय पद. उसकी सारी भौतिक स्थितियां उसके साथी की ही दी हुई हैं. इन भौतिक स्थितियों को ले कर केवल एक तीव्र दंश है उसके मन में कि क्यों सारी मानसिक क्षमताओं के बावजूद वह देह की अक्षमता के कारण निरंतर लेने पर मजबूर हो गयी? . . . कुछ दे नहीं सकी. काश! अपनी भौतिक स्थितियों का निर्माण वह स्वयं कर पाती. . . काश! वह एक लेखिका होने के साथ एक सफल व्यक्ति भी होती! किंतु कहा न, उसकी अपनी ही देह उसका 'वाटरलू' बन गयी है. . . एक दुर्बल देह में बंदी एक प्रबल मन निरंतर हारता रहा है.

आज भी प्रतिदिन, जब एक थके, उदास दिन के कंधों पर ढहती और भी थकी, उदास शाम को झेलती वह घर की घुटन से हट कर कुछ देर मुक्ति की सांस लेने के लिए बाहर निकलती है, तो प्रायः सुनती है——व्हाट ए कपल एंड व्हाट ए लाइफ! श्लाघा से कहे गये ये शब्द उसे भीतर तक बेध जाते हैं. . . एक विद्रूप को झेलते उसके ओठ टेढ़े ही जाते हैं और वह अपने आपसे दुहरा कर कहती है—— येस, व्हाट ए कपल एंड व्हाट ए लाइफ इनडीड! उन क्षणों वह उस साथी के प्रति नत हो कर रह जाती है, जिसने अपनी सतत संभाल से उसके शरीर और प्राणों का संयोग बनाये रखा. . . यदि जीवन ही नहीं होता तो लेखन कहां होता! अतः उसका जीवन ही नहीं, उसका लेखन भी इस सतत संभाल के प्रति नत है.

उसकी आत्मा के दो अंश उसके निकट हैं. पहला अंश एक सुकुमार बेटी है, जिसने पथ्य बना कर, रस पिला कर, अपनी छोटी-छोटी कामनाओं का त्याग कर और किन्हीं अर्थों में अपने नन्हें-से जीवन की भी बाजी लगा कर अपनी मम्मी को जीवनदान दिया है. वह बेटी जब एक स्वीकार-सी सामने खड़ी होती है, तो उसकी मम्मी की मन की आंखें छलछलाती होती हैं—— क्या दे सकेगी वह अकिंचन मां इस बेटी को? इस बेटी को वह अपनी मां कहती है.

उसकी आत्मा का दूसरा अंश एक तेज, धूमधाम करने वाला बेटा है जो एक दिन कुछ छिपाये उसके सामने आ खड़ा हुआ था. —मम्मी, आप आंखें बंद कीजिए, एक चीज है. उसने आंखें बंद कीं, खोलीं, तो उसके हाथों में नन्हें हाथों से लिखी अंग्रेजी की एक कविता थी. शीर्षक था——'माई मदर'. कविता की कुछ पंक्तियां थीं——

ओह! लुक एट माई मदर सो प्रेटी एंड फेयर
लुक एट हर डार्क ब्यूटीफुल हेअर
लुक एट हर ब्राइट लवली आइज
एज वाइड एज द ओपन स्काइज. . .

. . . तो उसकी आंखों से आकाश के तादात्म्य को उसकी ही कोख से जन्मे उस नन्हें कवि ने पढ़ लिया था. . . एक तृप्ति-सा वह बेटा जब सामने खड़ा होता है, तो उस अकिंचन मम्मी की आंखें फिर छलछलाती हैं——क्या दे सकेगी वह अपने इस बेटे को भी? इस बेटे को वह अपना 'साक्षी' कहती है.

वह बार-बार सुनती है —— क्या कमी है आपको? ऐसा जीवन साथी, ऐसे बच्चे, और ऐसी आप स्वयं. . . ! और अब तो यह ढेर-सा यश भी! तब उसके भीतर कुछ सिर पटकने लगता है —— और देह की एक उमर-कैद नहीं. . . ?

उसे यदि कोई सहसा देखे तो एक संपूर्णता का आभास होना निश्चित है. प्रायः उसने भी सुना है —— ए परफेक्ट वूमन नोबली प्लांड. . . . लेकिन यह संपूर्णता कितनी खंडित, कितनी जर्जर है. . . यह कौन जानता है?

उसकी बाहरी सज्जा साधारण होती है. किंतु भीतर की कोई सज्जा उसके व्यक्तित्व में प्रतिभासित होती-सी उसे कुछ असाधारण बना जाती है. बाहरी सज्जाओं पर तो उसका वश नहीं रहा, किंतु भीतर की सज्जा को वह पल-पल संवारती-सहेजती रही है. . .

इस संपूर्णता को खंडित स्तरों पर झेलती, घुटन को मुक्ति देने, कुछ देर जीने, वह कभी-कभी ही लिखती है और फिर सुनती है —— आप इतना अधिक कैसे लिख लेती हैं? पता नहीं, यह सब कैसे. . . क्यों . . .? इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर उसके पास नहीं है. . .

. . . और उसने कमलेश्वर जी को एक पत्र में लिखा है —— नितांत व्यक्तिगत संदर्भों में मेरा व्यक्ति बहुत थका, बहुत लड़खड़ाया हुआ है. . . और मेरा लेखक थकी, निस्पंद होती उंगलियों में लेखनी थामे भीतर और बाहर के विरोधों से जूझ रहा है. . . ऐसे में किसी रचना का स्वीकार जैसे उस अस्तित्व का स्वीकार बन जाता है, जो मृत्यु के दमघोंट क्षणों में सांस के लिए संघर्ष कर रहा हो. . . मेरा लेखन मेरे लिए ऐसी ही सांसें हैं. . . लिखती हूं कि इन दमघोंट क्षणों में कुछ सांसें और ले सकूं. . . कुछ देर और जी सकूं. . . और बस. . .

मॅकॅनो

• गो. गं. लिमये

पिछले अंक में 'भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार' स्तंभ के अंतर्गत मराठी की जिन तीन प्रथम मौलिक कहानियों की विस्तृत चर्चा की गयी थी, उनमें से तीसरी 'मॅकेनो' स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नहीं की जा सकी थी; उसे हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं.

उस बात को बीते आज एक अरसा हो चुका है. पर आज बरबस उसकी याद आ ही गयी. . .लगता है जैसे कल ही की बात है! उस दिन 'वो' मुझे देखने आये थे. . .पर मुझे शादी-ब्याह में कोई दिलचस्पी नहीं थी. रह-रह कर कुछ अजीब-सा लग रहा था. ऐसी हालत मेरी शायद ही कभी हुई हो. . . हां, एक बार जब मेरी भाभी के पहले मंगलागौर के अवसर पर जब मैंने टोकरी भर-भर के फूल लूटे थे और एक बार और ऐसा हुआ था जब मैं मारे लाज के अपने में समा नहीं पा रही थी. मुझे अपनी सुध ही नहीं रहीं, बेमेल कप-बसी की जोड़ियों में चाय उंडेल डाली. दूध पर से मलाई हटाने लगी तो टोप में चम्मच ही गिरा दिया. नीचे देख कर चलते हुए दरी में पांव उलझा लिया. इतना ही नहीं, मैंने खूब जोर-जोर से बोलने की ठानी थी, परंतु मैं धीरे-धीरे बोलती रही. जो-जो सोचा था ठीक सब उसके विपरीत हुआ. उस 'प्रस्ताव' के बारे में पूरी आश्वस्त हो चुकी थी. मुझे विश्वास हो चुका था कि 'वह' मुझे जरूर पसंद आयेंगे. मन के किसी कोने में यही गांठ बंध गयी थी और ऐसा लगने लगा कि 'विवाह हो ही गया.'

लोग मुझे देख कर चले गये. मेरे आनंद और उत्सुकता की सीमा नहीं थी (लेकिन अब मुझे ऐसा लग रहा था कि प्रेम-रूपी प्रसाद जो मेरे अंतर्मन को प्राप्त हुआ, वह जाते समय अपने साथ ही लेते गये– वरना आज 'वह' और कहीं और उनके प्रति प्रेम भावना ही केवल मेरी थाती रह गयी– ऐसा क्यों कर हुआ) उस दिन मैं गर्व से फूली नहीं समा रही थी जिस दिन 'वे' मुझे देख कर गये. उस दिन मेरा मन बल्लियों उछल रहा था. भाई का रूमाल साबुन से झक धो डाला. आंगन में झाड़ू लगायी. और वो-वो काम किये जो कभी नहीं किये थे.

लेकिन अचानक फिर क्या हुआ, किसे मालूम! उस दिन के बाद उनके बारे में घर में फिर कभी चर्चा तक नहीं हुई. मेरा धीरज छूट रहा था. मैं बेचैन थी: जैसी तैसी चाय पी लेती थी––मीठी या फीकी चाय में मुझे कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता था. बुनाई का काम हाथ में लेती पर वह भी धरा का धरा रह जाता. . .

आज घर में सबेरे से ही हलचल थी पर मैं स्तब्ध पड़ी थी. इतने में ही किसी ने घर में आ कर कहा–– जल्दी करो लोग उसे देखने आ रहे हैं. मैं आपे में न रह सकी. बहुत क्रोध आया. . . दांत पीस कर रह गयी. मारे गुस्से के रोना आ गया. . . मेरे मन में शादी के लिए कोई ललक नहीं थी.

मैंने गुस्से में खूब पटक-झटक की. दूध से भरे टोप में चम्मच फेंक दिया और आज जानबूझ कर बेमेल कप बसी में चाय उंडेली और जबरन दरी में पांव उलझाया. आज जो-जो मैंने सोचा ठीक वैसे ही किया. आज मैं खूब जोर-जोर से बोल रही थी. धृष्टता पूर्वक गर्दन ऊंची कर के सबको आंकती जा रही थी. मुझे यह प्रस्ताव जो अस्वीकार करवाना था.

लेकिन विधि का विधान कौन कहे? मैंने जो सोचा था, ठीक उसके विपरीत हुआ और––और बात यहीं पक्की हो गयी! मैं मानो मर-सी गयी. न जाने क्या हो गया. मैं अनमनी हो चली. हाथ में लिया अनाज जहां का तहां फेंक देती. . . छाछ लेने के पहले ही मेरा भात खत्म हो जाता और न जाने ऐसे ही क्या-क्या होने लगा था. एक दिन सबेरे ही उठ कर सेवैयां तैयार करनी थीं लेकिन मैं जानबूझ कर बैठी रही. बैठे-बैठे जी ऊब गया और उठ पड़ी. मन में विचार हुआ बाहर खुली हवा में सांस लूं. बाहर जाने की तबीयत हुई. मैं ठकू के पास गयी लेकिन ठकू तो मेरे ही यहां सेवैयां तैयार कराने आयी थी. मैं वापस लौटी. मुझे लगा जैसे मैं पागल हो जाऊंगी!

मैं 'मॅकैनो' (एक विशेष प्रकार का खेल जिसमें भिन्न प्रकार के प्लास्टिक अथवा स्टील के टुकड़ों को जोड़ कर मनचाहा आकार बनाया जाता है) जोड़ने लगी. उससे भी जी ऊब गया. अपना ट्रंक सहेजने लगी. उसमें भी मन नहीं लगा. कुछ बुनने का विचार हुआ लेकिन सारी औरतें दरवाजा रोक कर ही बैठी थीं और सेवैयां बनवा रही थीं. किसीने आवाज दी. मैं अंदर गयी. मुझसे चाय बनाने के लिए कहा गया. मैं चाय बना रही थी. उधर मुझ पर ताने कसे जा रहे थे. आज पहली बार मेरे मन में मुझे ऐसे तानों के प्रति तिरस्कार की भावना जाग्रत हुई. मैं मन ही मन कुढ़ कर रह गयी. मैं क्रोधित हो उठी थी. पर धीरे-धीरे मेरा क्रोध शांत हुआ और मैं उस आनंद और उल्लासमय वातावरण में समरस हो चली. मुझे स्वयं भी कुछ अजीब-सा लगा. इतने में मेरा कोई गांव से आया और वह भी मुझे चिढाने लगा. मेरे मन में पड़ी विषाद की गांठ खुलती गयी और मन ही मन मैंने गुदगुदी महसूस की जिसकी शुरुआत मुसकान से हुई पर परिणीत हंसी में बदल गयी. धीरे-धीरे घर में जमघट बढ़ने लगा और मैं भी लोगों की हां में हां मिलाती उनमें घुल मिल गयी. चम्मच, कप-बसी तथा दरी में उलझने की बात तो मैं भूल ही गयी.

आज मैं उनके साथ एक सभा में गयी हुई थी. सामने की कुर्सियों की पीछे की पंक्ति में 'उन्हें' बैठना था और मैं औरतों में जा कर बैठ गयी. इतने में मेरी दाहिनी तरफ कुछ चमका. मैंने देखा वह एक अष्टकोण की घड़ी थी. उसे देखते ही झट कोई बात मेरे मन में कौंध गयी. मेरे मन में उथल-पुथल-सी होने लगी. मैं भूली-बिसरी

कड़ियां जोड़ रही थी. इतने में मुझे छूती हुई एक छतरी नीचे गिरी. मैंने छतरी उठायी और उसे झटक कर साफ कर के उसकी मालकिन को दे दिया. उस चमकती घड़ी और छतरी दोनों की मालकिन एक ही थीं.

पर मुझे ऐसा लग रहा था जैसे 'यह' छतरी कहीं देखी अवश्य है. मैं मन-ही-मन ताल-मेल बैठाने लगी. सामने की कुर्सी पर बैठा एक व्यक्ति उठ कर चला गया था और पीछे की पंक्ति में मेरे 'उनके' पास बैठा हुआ एक व्यक्ति मुझे दिखाई दिया. परंतु उसी बीच एक व्यक्ति आया और उस पहली पंक्ति की खाली कुर्सी पर बैठ गया जिससे वह व्यक्ति आड़ में पड़ गया. मैं उसकी सिर्फ एक ही झलक देख पायी थी. लेकिन अगर वह व्यक्ति आ कर न भी बैठता तो मैं 'उस' व्यक्ति को अधिक देर तक नहीं देख सकती थी. मुझे चक्कर आ रहा था. मेरी आंखों के समक्ष सब कुछ जैसे एकाएक स्पष्ट हो चुका था. उस घड़ी और छतरी की जो मालकिन थीं उसी का वह पति था. . . और वह कोई और नहीं 'वही' थे जो मुझे पहली बार देखने आये थे.

मुझे कुछ विचित्र-सी अनुभूति होने लगी. लगता था जैसे मेरा रक्ताशय ही जम गया हो. मुझे कोई अदृश्य चीज छूती हुई गुजर गयी. मुझे खटकने जैसी तो कोई बात नहीं थी पर कुछ था जो मुझे रह रह कर सालता था. मैं अच्छे भले सुखी परिवार में थी. उनको भी मुझसे प्रगाढ़ प्रेम है और मैं भी उनकी सेवा में कोई कमी नहीं होने देती. मैंने कभी उनकी इच्छा के विपरीत आचरण नहीं किया. उनके इशारे पर डोलती रही. तिलमात्र भी इधर से उधर नहीं. कभी भूले से भी उनको 'जवाब' नहीं दिया. कभी मिथ्याचरण नहीं किया. कभी जिद नहीं की. अगर कभी उन्हें सिर दर्द हुआ तो उनका सर दबाती और तब तक दबाती जब तक मेरे हाथ जवाब न दे देते. और ऐसे में कभी-कभी मुझे सर दर्द हो जाता. अगर उनके हाथ में चाकू लग जाता तो मैं पट्टी बांधती. कभी सिनेमा जाने का उनका विचार होता तो झट उनके कपड़े निकाल कर लाती—— और अचानक कहीं उनका विचार बदल भी गया तो मैं चुप रह जाती. कभी किसी बात पर जिद नहीं की. अगर उन्हें कभी लौटने में देरी की आशंका होती तो मुझसे खा-पी लेने के लिए कह जाते. मेरा मन इस बात को नहीं मानता पर उनका आदेश जो ठहरा कैसे अवज्ञा करती. कभी प्यार से मेरे जूड़े में गुलाब का फूल खोस देते तो मैं वह गुलाब उनके कॉलर में लगा देती. कभी ज्यादा थक जाते तो मैं उनके पांव भी दबाती.

और. . . अगर उनके पास बैठे हुए व्यक्ति से मेरी शादी हुई होती तो? मैं वही रिस्टवाच और छतरी ले कर अपनी बगल की कुर्सी पर बैठती. हम दोनों साथ साथ बैठतीं और 'वे' दोनों भी साथ बैठे होते. लेकिन भाग्य की विडंबना. मेरी हालत उसी बेमेल कप-बसी की सी हो गयी है. कहीं मेरी ससुराल 'उस' घर में होती तो मैं उस प्यार की आड़ में सब कुछ सह लेती. उनको मैं खूब चिढ़ाती, खूब तंग करती. अगर वे मुझसे रेशमी ब्लाउज पहनने को कहते तो मैं खादी का ब्लाउज पहनती—



टेढ़ी मांग निकालने को कहते तो मैं जानबूझ कर सीधी मांग निकालती. ज्यादा जगने से अगर हम दोनों को सिरदर्द हो जाता तो मैं उनकी तीमारदारी में अपना सिरदर्द भूल ही जाती. उन्हें कहीं जो सिर में चोट लग जाती तो मैं बर्फ की ठंडी पट्टी रखने के बजाय बेहोश ही हो जाती. उनके कहने पर 'चलो कहीं घूम आयें' तो मैं नहीं-नहीं की जिद करती. परंतु उनका मन जो बाहर वे बोलते, 'इस बरसात में कैसे घूमने चलें?' मैं बोलती, 'कुछ नहीं आज जरूर चलेंगे.' बरसात में घूमने का आनंद ही कुछ और है.' उनसे मेरी कमी नहीं पटती. अमुक बात अच्छी है, अगर उनकी ये मंशा होती तो मैं जी तोड़ उसका विरोध करती और अपनी बात मनवाने की जिद करती. इतना ही नहीं अगर उनकी कोई निंदा कर बैठता तो मैं उसी की हां में हां मिलाती. उनको कभी घर लौटने में देरी होती और अगर मुझसे खा-पी लेने को कह जाते तो मैं सिर्फ 'हूं' कह कर गर्दन हिलाती. लेकिन करती अपने मन का ही वे देरी से आते और खा कर उठ जाते.

मैं उनकी जूठन का आस्वादन करती. अगर वे कभी अपने कोट में लगाने के लिए गुलाब का फूल लाते तो मैं झट फूल खींच कर अपने जूड़े में लगा लेती. पांव दाबते-दाबते अगर वो कहते 'बस रहने दो' तो भी मैं दबाती ही रहती. और अगर यह कहते कि 'जरा और दबाओ' तो मैं मुंहफट-सी फट बोल बैठती, 'जरूर! पर मेरे थके हाथ भी दाबने पड़ेंगे.'

मुझे उस बेमेल कप-बसी, दूध में फेंके गये चम्मच और दरी में पांव उलझने की बात आज फिर याद आ गयी. इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? आज फिर वही भूल मुझसे हुई——सभा खत्म होने पर तालियों की गड़गड़ाहट से मैं कल्पना-लोक से जागी. हम घर आये. मेरी हालत कुछ विचित्र ही थी. मुझे कुछ होश नहीं था. आज फिर चाय बनायी. आज फिर दरी में पांव उलझे—— लेकिन आज आंखों के सामने वाकई अंधेरा छाया था. . . जो बेमेल जोड़ी मैंने बनायी, आज उसीका वास्तविक रूप मेरे सामने जो था.

☐☐☐

(अनुवादक : चंद्रमौलि शर्मा)

विषाक्त

•निरुपमा सेबती

घर से निकली थी तब सुबह के छह बजे थे और ताजा नीला उजाला अनायास ही मुझे उत्साह दे गया था.

और सोचा यही था कि आज लौटते समय बाजार की तरफ से ही आऊंगी. बहुत-सी चीजें खत्म थीं जिनकी लिस्ट बैग में रखी हुई अब मुंह चिढ़ा रही है—'तुम लोग बाज नहीं आते, भविष्य को यूं मुठ्ठी में ले लेना चाहते हो मानो तुम्हारे सोचे जैसा ही सब हो जाना है.

सचमुच ही कहां तो बाजार जाने की बात और कहां अब आक्रमणकारियों द्वारा ऐन सुनसान जगह खड़ी करवा दी गयी यह मनहूस बस!

हमें यह भी पता नहीं कि ये हैं कौन! दो आदमी जबरदस्ती ड्राइवर को उधर लिवा लाये और फिर धमाका मचाते ये कुछ युवक आ धमके.

यूं तो सुबह यूनिवर्सिटी पहुंचने के लिए बस-स्टाप पर खड़े हुए हमेशा की तरह आज भी यही लगा था कि यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण दिन की शुरुआत है.

हर सुबह यही होता है . वही अनुभूति कि आज का दिन सब समस्याओं को सुलझा देगा. इतने दिनों की दमतोड़ मेहनत आज जरूर रंग लायेगी. पर शाम होते ना होते फिर वही कहीं कुछ ना होने की हताशा घोर अंधेरों में धकेल देती है.

सुबह नहाने के बाद अक्सर ही पूजा का-सा भाव लिए अपने पति के उन कागजों को देख लेती हूं जो उनके सारे जीवन की अर्जित निधि हैं.

उनकी तसवीर टेबल के सामने ही टंगी है. जहां बैठ कर मैं चाय पीती हूं. उनकी सूक्ष्म निगाहें बड़ी सतर्कता से मुझे परखती रहती हैं और मैं ईमानदारी भरे अहं से लबरेज स्वयं को बहुत ऊंचा उठते महसूस करती हूं.

बेशक वे निगाहें परत-दर-परत मुझे उघाड़ती चलें पर कहीं कुछ ऐसा है ही नहीं., जिसे मैं छिपा जाना चाहूं.

एक मौन ब्यौरा उन सब बातों का मस्तिष्क में स्वयं ही दोहराया जाता है, जो जैसे अपनी मूक भाषा से उन तक पहुंचा हुआ ही समझती हूं.

उन सारी पीड़ाओं का विवेचन जिन्हें मैंने उनकी मृत्यु के बाद झेला है, उनकी इच्छा-पूर्ति के लिए झेला है. उनकी अदम्य महत्वाकांक्षा—मरते दम तक बनी उनकी वह तीव्रतम इच्छा—जिसके लिए वह स्वयं को फूंकते रहे, उसी को पाना अब मेरी जिंदगी की एकमात्र इच्छा रह गयी; सारे विचारों, कार्यों का बहाव ही उसी ओर बह रहा है—उसे पाने की ओर.

चाहे मेरे बाल समय से बहुत पहले ही सफेद हो गये, जिन्हें खूबसूरती से छिपा लेती हूं—और आंखों के नीचे कालिमा बन आयी—बन जाने दो. मैं अपने स्टूडेंट्स में सड़ियल प्रोफेसर का नाम पा गयी—उसकी भी परवाह नहीं.

हमउम्र पुरुष साथियों ने मेरी ओर से निराशा पा ली—बेशक पायें ! और मैं एक 'अकेली औरत' के रूप में प्रसिद्ध हो गयी—हो जाऊं!

लेकिन उनकी आकांक्षा पूरी करनी है, यही प्रेरणा मेरा जीवन चला रही है—और इस दृढ़ता पर मुझे गुमान ना हो, ऐसा भी नहीं है.

तभी तो इस समय भी इतनी आक्रांतकारी परिस्थिति बन आने पर भी स्वयं को साथ के कई लोगों से कहीं ऊंचा पा रही हूं.

मेरे वे साथी, जो मेरी तरह यूनिवर्सिटी से ही लौट रहे थे, जिन्हें बस के अंदर ही बैठाया हुआ था—वे सब मिमियाए-से दिखायी दे रहे थे. और बाकी के सहयोगी, जिन्हें नीचे उतार दिया गया, एकदम डरे हुए से लगे.

मैं औरत ना होती तो देख लेती इन सबको—और इतने सारे ये पुरुष ही चुप हैं तो मेरा कुछ कहना कितना फिजूल होगा—ये विचार बहुत तसल्ली दे गये मुझे.

इस आत्मविश्वास ने मुझे संयतता दे दी और मैं सारे परिदृश्य का विवेचन मस्तिष्क में उतारने लगी. बाहर जितने लोग थे, उन पर गुंडे किस्म के तीन आदमी तैनात थे.

अंधेरे की परछाइयां शाम की नीलाहट में घुल रही थीं. इस कारण किसी की शक्ल ठीक से पहचान लेना आसान नहीं—यह शायद अच्छा ही है.

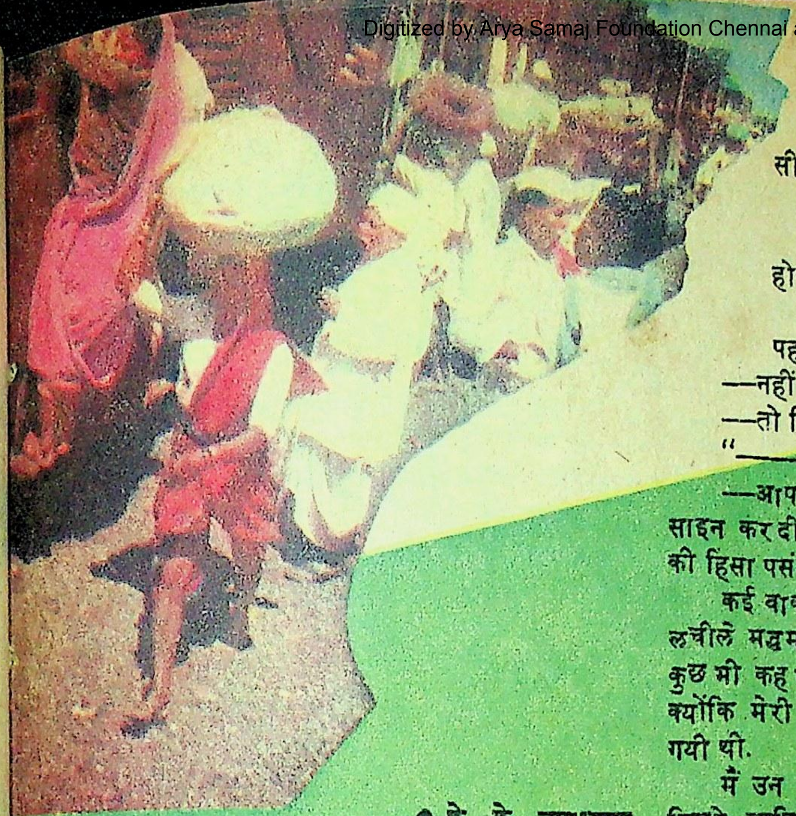
बस में हलकी रोशनी थी. फिर यहां के चेहरे बिन पहचाने हों, ऐसा भी नहीं. ठीक है, मैं उनसे परिचित नहीं. पर ऐसा भी नहीं लगा कि उनके परिचय से बिल्कुल ही नावाकिफ हूं. उन लोगों की चाल-ढाल और लहजा फिजा में विध्वंस फैलाने का आभास देता था.

—और ये वही लोग हैं, जिनसे मिलने की उत्सुक-प्रतीक्षा मेरे अवचेतन में कई दिन से पनप रही थी. यह बात मेरे मस्तिष्क की कोई खास प्रज्ञा सहज ही समझा गयी.

—बहनजी, आप भी बाहर ही आ जाइए, मैं बुरी तरह से चौंक गयी. पर यह तो खिड़की के नजदीक ही खड़ी एक औरत थी. जिसके चेहरे पर बिछी, लपकती सहानुभूति को साफ महसूस किया जा सकता था—'एक बेचारी अकेली औरत बस में बैठे दूसरे पुरुषों के बीच क्यों परेशान हो रही है !' ऐसा ही कुछ था उसके चेहरे पर.

तो इतनी खूंखार स्थिति में भी यह ऐसे औरताना अंदाज में पड़ोसिनों की खोज खबर लेने वाली कला इस्तेमाल कर सकती है!—मुझे उसकी उद्वेग रहित तटस्थता से जलन हो आयी.

और इतने में ही वह जंगली-सा आदमी, जिसके बाल सिर पर खड़े उठंग बने क्रूरता का भाव जगाते थे,



● के. के. उपाध्याय

झपाटे से नजदीक आ गया. शायद औरत की बात सुन कर ही.

—आप चुपचाप बस से दूर हटिए. हमें आपकी बहन जी से ही काम है, उसकी गोल-गोल आंखें कुछ अधिक लाल हो उठीं.

उस औरत का चेहरा सहमी-कालिमा से भर गया और वह सिर झुकाए दूर हट चली.

और एक प्रतीक्षा का तनाव मेरे मस्तिष्क को ऐंठन देने लगा—बस, अब कुछ घटित होने ही वाला है.

लेकिन प्रतीक्षा का यह तनाव क्या नया है? बहुत दिनों से थी एक अवचेतनीय प्रतीक्षा बाजार में चलो तो यहीं दुबकता भय आगे-पीछे रहता कि बस अभी ठांय करती पिस्तौल की गोली सिर फोड़ देगी.

या फिर यही कि किसी सुनसान नुक्कड़ से निकलता, लाठियां पकड़े कोई जलूस आयेगा और रौंदता हुआ चला जायेगा.

यूंही सोये-सोये खयाल आ जाता कि अचानक सारा घर धुंएं से भर गया है और हर दरवाजा आग की लपट से दहक रहा है, बच निकलने का कोई रास्ता ही नहीं.

* *

और अब हो यह गया है कि हमारी बस को वीरान इलाके की तरफ ये लोग जबरदस्ती ले आये हैं. इस क्षण की स्थिति के महत्व को ठीक से परखने के लिए अगली सीटों पर बैठे साथियों और युवकों के बीच चल रही तनातनी पर ध्यान से कान दिये.

लेकिन कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि कौन क्या चाहता है?

—तुम लोग बहुत गलत काम कर रहे हो. सीनियर साथी ने कहा था.

—तो आप लोग इसे सही कीजिए न.

—अंत में तुम्हारा अपना ही नुकसान होगा.

—क्योंकि आप हमारे फायदे को बहुत पहले ही खरीद चुके हैं.

—नहीं हमने नहीं खरीदा.

—तो फिर कौन है वे?

"————"

—आप लोग चुपचाप हमारे इस 'मैमोरेंडम' पर साइन कर दीजिए यही ठीक रहेगा. हमें खुद किसी तरह की हिंसा पसंद नहीं.

कई वाक्य-खंड सुनायी दिये थे. और अब वे लोग लचीले मद्धम-स्वरों में बातें करने लगे थे. धीमे-धीमे कुछ भी कह रहे हों. चाहने पर सुनायी दे नहीं सकता था, क्योंकि मेरी सारी चेतना एक हिंसा शब्द में उलझ गयी थी.

मैं उन युवकों और उनके साथ आये गुंडों से दिखते व्यक्तियों में सामंजस्य खोजने लगी.

पता नहीं क्यों, यह सच ही लगा कि मेरे माथे पर एक पिस्तौल सवार है. मौत की शक्ल आंखों के सामने आकारित हो रही है. एक सिहरन-सी सारे मस्तिष्क को कंपा गयी. क्या करूं?—क्या करूं कि ये लोग मेरा पीछा छोड़ दें.

इसके साथ ही एक तनाव मेरे मस्तिष्क में विस्फोट की सीमा तक खिचने लगा. क्योंकि अचानक ही मुझे हाथ में थामे बैग की याद आ गयी थी. जिसमें अपने पति की सारी योजनाओं के कागजात भरे थे.

—ओह नहीं.—इसे छीन लेंगे तो?—और फिर कितनी शून्य हो जाऊंगी. एकदम अस्तित्वहीन. जीवन-मरण-व्यर्थता-बोध. इतने सारे शब्दों के आकार मुझे बेहोश-सा करने लगे. इसीलिए उन लोगों को किसी भी तरह उलझा लेने की बात दिमाग में दौड़ती चली गयी.

लेकिन बात किससे करूं!—प्रत्येक आस्था को तोड़ना है—ऐसा नारा मानो हर माथ पर चिपका था और मेरे पति की यादगारों पर आस्थाएं चिमट कर रह गयी थीं. इसलिए यह बग के कागजों को तोड़-मरोड़ सकते हैं.

मैंने उन सबकी ओर सहमते हुए देखा. पर उनमें से कोई भी मेरी ओर ध्यान नहीं दे रहा था.

नजदीक खड़ा वह उठंग बालों वाला भी बस के दरवाजे पर जा पहुंचा था जिसकी शक्ल कम-से-कम दो हफ्ते तक सपने में डराती रहेगी. यह यकीन पक्का था—डरायेगी!—यह 'गी' भी क्या! अब किसी भविष्य नाम की चीज पर सोचा भी जा सकता है?

आने वाला सब कुछ किन्हीं दूसरे हाथों में है और मैंने उन सबके हाथों को घूरना शुरू कर दिया.

इनमें तो विध्वंस करने को उतारू छटपटाती उतावली है. आने वाला कुछ भी इनके हाथों में ठहर पायेगा? उसे सम्हालने की सक्षमता होगी इनमें?

पर फिर भी इनमें सब को कंपा देने जैसा सामर्थ्य तो है ही. इसे मेरा मस्तिष्क नहीं नकार सका और इसी कारण ये लोग महत्वपूर्ण भी हैं. मुझे इनसे बात करनी ही होगी.

मैंने उस लड़के को नजदीक बुलाया जो मित्रों का साथ देने वाली रस्म अदायगी भुगतने वाले ढंग से ऊपर-नीचे और इधर-उधर देख रहा था.

—मैंने तुम्हें कहीं देखा है. शायद प्रीवियस में हो?

—कहीं तो है ही. तभी तो उलझ रहे हैं! वह साथ की सीट पर बैठ गया था.

तो यह यूं ही चुपका-सा जान पड़ा. यूं तो यह भी भरा बैठा है.

—तुम इतने कालेज बंद क्यों करवाना चाहते हो?

—हम क्यों ना बंद करवायें? जब हमारी पोजीशन वहां धूल के बराबर भी नहीं है.

—पर इसका तरीका यह तो है नहीं, मैंने धैर्य गले में उतारा—परसों तुमने लाइब्रेरी जलाने का प्रयत्न किया था. और उससे पहले लैब...

—जिन चीजों का प्रयोग ठीक ना हो रहा हो उनका रहना क्या और ना रहना क्या?

—पर जानते हो अधजली चीजों से उठती गंध कितनी विषैली थी? हम सबको खत्म कर सकती थी ऐसी गंध.

—तो खत्म होने से डरता ही कौन है? आप बुड्ढे लोग डरते होंगे. हम तो नहीं, उसकी शक्ल ऐंठ गयी थी.

मेरी जुबान पर आने वाले शब्द जड़ होते जा रहे थे.

—उधर शांति-वार्ता चल रही है, आप क्यों परेशान होती हैं.

मुझे चुप देख उसने तीखी सहानुभूति से कहा. जिसमें छिपी अधिकारिता का आभास मुझे कौंच गया था.

और उधर वे लोग और मेरे साथी जो बातें कर रहे थे उनकी मुद्राओं में किसी समझौते का फैलाव महसूस किया जा सकता था.

इस चुप्पी को काटने के लिए मैंने कुछ कह लेना चाहा—तुम लोगों की निडरता पर हमें गर्व है लेकिन...

—ये कोरे नेतागीरी वाले वाक्य अपने पास ही रखिए.

—तुम हर बात पर अविश्वास की नजर फेंकते हो. यही तो मुसीबत है.

—यह अविश्वास आप लोगों ने ही दिया है.

मेरे दिल में एक गहरी सहम-सी उतरने लगी थी, पता नहीं क्यों?

बाहर अंधेरा पूरी तरह घिर आया था. और दूर खड़े सब लोग बुतों जैसे दिखायी दे रहे थे. कहीं कोई हलचल नहीं. वह लाल आंखों वाला भी दरवाजे पर खड़ा चुपचाप सिगरेट फूंके जा रहा था.

—जो भी हो, तुम लोग गुंडों को क्यों साथ लिये फिरते हो? भयावह नीरवता में डूबते-उतरते मैंने पूछ ही लिया.

—गुंडागर्दी की काट गुंडागर्दी से ही होती है.

अब मुझे लग रहा था कि किसी आरोप से जूझने की अंशमात्र भी शक्ति मुझ में नहीं बची है. हर सोच सुन्न-सी थी.

मेरी सहमी चुप्पी ने जैसे अनायास ही उसे बढ़ावा दे दिया हो. पर इस गलती का एहसास बाद में हुआ. तब तक वह अपने दम्भी साहस को बटोर चुका था.

—और एक आप हैं, जाने क्या-क्या बेतुकी योजनाएं लिये फिरती हैं. हमारी भलाई के लिए अपना जीवन दिये जाने की बात से बड़ी संतुष्ट हैं. मैं पूछता हूं—क्या जरूरत है कि आप हमारे बारे में सोचें जबकि हम खुद अपने बारे में ज्यादा ढंग से सोच सकते हैं.

—नहीं, यह बात नहीं. यूं, तो आप लोग स्वयं ही सब करेंगे पर एक रास्ता...

—क्या रास्ता?——हूं? उसने सिर को तेजी से झटका, मानते हैं आपके पति बहुत समझदार आदमी थे, वह इस यूनिवर्सिटी को दूसरा नालंदा बना देना चाहते थे.

"— — —"

—पर अब आप जो उनकी योजनाएं ओढ़े फिरती हैं, सुनी भी है आज तक किसीने आपकी बात.

मुझे लगा कि एक रोने की आवाज मेरे चारों ओर लिपट रही है, इस बित्ते भर के छोकरे ने इतने दिनों से संचित मेरे पुरुषोचित आत्मविश्वास को एक धचके में ही ढहा-सा दिया था. वरना क्यों मेरा दिल इतना ज्यादा औरतनुमा बन आया.

—हमारे भविष्य को एक सरीखे सांचे में नहीं ढाला जा सकता —अब बिल्कुल यह नहीं होगा.

और मैं हैरान थी कि मैंने इससे कहा ही क्या है.

—आप यह देवी बन जाने वाला रूप घर में ही रखिए. हमें आपका वैसा सुव्यवस्थित इंस्टीट्यूट नहीं चाहिए. जिसे सिर्फ सपने में ही बनाया और संवारा जा सकता है.

—और इक्कीस साल से ऊपर वालों की कद्र क्यों होती है. हमें सपने क्यों दिखाये जाते हैं! हम सब समझते हैं. उसकी मुठियां भिंच आयी थीं और आंखें ऐसे गाढ़े लाल रंग से भर चलीं कि बस, अभी इनमें से खून टपकने लगेगा.

मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही थी, कुछ भी नहीं—और वह एक बात से दूसरी बात पर कूदता चला जा रहा था.

उसने ये अंतिम बातें इस तरह चिल्ला कर कहीं थीं कि दूसरे लोग भी करीब आ गये. पर उन्होंने इस विषय में पूछा कुछ नहीं.

मेरे साथी उस 'मैमरेंडम' पर हस्ताक्षर करने की महत्ता समझाने लगे तो मैंने जान लिया कि वे स्वयं

इसका महत्व जरा ज्यादा ही अच्छी तरह समझ चुके हैं.

मैंने एक बार युवकों की ओर देखा, वहां उन चेहरों पर अगले ही पल सब कुछ समाप्त कर देने की उछल-उछल पड़ती धमकियां हाहाकार-सा मचा रही थीं—सीनियर कुछ और भी गंभीरता से हस्ताक्षर कर देने की बात कहने लगे.

मैं कई क्षण ज्ञापन-पत्र को घूरती रही. बैग को और भी पास सटा लिया.

और कुछ देर बाद हम सब उन युवकों के साथी बन चुके थे. सिवाय इसके कि हस्ताक्षर करने के बाद मेरे हाथ बिल्कुल बेजान हो आये थे. और कोई परिवर्तन मैंने स्वयं में नहीं पाया.

★ ★

ऐसे में भगदड़ मच गयी. बाहर भेजे गये लोगों को अंदर बैठाया जा रहा था. मेरे दूसरे साथी चुपचाप ऐसे बैठे रहे जैसे कोई दुर्घटना यहां कभी घटित ही ना हुई थी और वह दूसरे दिनों की तरह आज भी एक थकान भरा दिन पूरा करके घर लौट रहे हैं.

—इस बैग को दिखाइए, बड़ा खूबसूरत है, मुझे पता भी नहीं चला कि वह उठंग बालों वाला कब पास आया और कब उसने बैग बड़ी सहजता से अपने हाथ में ले लिया.

—अरे. . .यह तो . . .मैं कहती ही रही और वह बस से बाहर हो लिया था.

उसे रोक लेने की चीख मेरे माथे में जम कर रह गयी. आंखें अंधेरे के भंवर में डूब चलीं.

—देखो. . .देखो. . .सिर्फ इतना भर ही जमी हुई आवाज में कह पा रही थी. पर ना किसी ने देखा और ना ही किसीने आवाज सुनी. सब किसी भी तरह घर पहुंच जाने की मन्नत मानते अपनी सीटों पर जम जाने की व्यस्तता में तल्लीन थे.

उठंग बालों वाला इसी खिड़की के पास दिखने वाले मैदान के हिस्से में पहुंच चुका था और तेजी से बैग की चीजें उलट रहा था.

—बात क्या है? आपको क्या हुआ? लगता है आप बेहोश हो रही हैं, यह वही युवक था जो पहले मेरे पास आ बैठा था.

—वह. . .वह. . .मैंने बाहर की ओर संकेत भर किया.

—रास्कल. . .युवक उछल कर खड़ा हुआ और बाहर की तरफ झपटा.

बाहर 'वह' बैग की सीमित रेजगारी उछाल चुका था और बैग को ही भद्दी गाली देते हुए उसने ठोकर मार दी थी.

उसके दूसरे साथी भी वहीं पहुंच गये थे. पर कुछ भी ना मिलने की बात जान उनकी सारी तेजी सुस्ती में बदल गयी थी.

और मैं देख रही थी. देख रही थी, और पथराती जा रही थी. बिल्कुल उसने मेरी नजरों के सामने लाइटर खटकाया और झमक से वहां आग का बिंदु चमका और एक लपट बैग के सामान को निगल रही थी.

—अरे, रुक जाओ—रुक जाओ. क्या हम तुम्हें किसीका सामान छीन लेने के लिए थोड़े ही साथ लाये थे. . .युवक चीखता-चिल्लाता वहां आ पहुंचा था. उसीकी दौड़-भाग देख दूसरे युवक भी बस से उतर पीछे चले आ रहे थे. वही क्यों, अब तो बस के सारे लोग बाहर का दृश्य देखने को उतावली से खिड़कियों पर पहुंच चुके थे.

पर मैं वहीं बैठी थी. मेरी आंखें उस अग्नि के गोले पर स्थिर हो गयी थीं. जिसमें सारे कागज फड़फड़ा रहे थे जिसमें से उठता धुआं मेरे रोम-रोम में जहर-सा भर मुझे बेहोश करता जा रहा था.

मुझे लगा कि सब युवक निराशा भरे भाव लिये खड़े हैं और उनके चेहरों पर उस जहरीले धुएं की परछाइयों के वृत्त रेंग रहे हैं.

—कौन लोग हैं! वे कौन हैं जो ऐसा जहर सप्लाई करते हैं. यह प्रश्न मेरे धुंआते हुए मस्तिष्क में लगातार फैलता गया. मेरी आंखों के सामने काले-काले साये तिरते गये और . . .और फिर क्या हुआ, मैं नहीं जानती.

वह बाद में मुझे बताया गया कि मैं बेहोश हो गयी थी और मुझे अस्पताल भेज दिया गया था. जहां फिर कई दिन तक पड़ी रही.

मुझसे यह भी कहा गया कि अब मैं स्वस्थ हूं और यह सच भी है कि यूनिवर्सिटी में रुका हुआ काम शुरू होने के बाद मैं भी नियमित रूप से अपना काम सम्हालने लगी.

लेकिन मुझे यह यकीन नहीं होता कि मेरी बेहोशी दूर हो चुकी है.

मस्तिष्क पर जोर देती हूं याद कर लेना चाहती हूं कि वहां कौन-सी आकांक्षा थी. क्या करना चाहती थी मैं? पर कुछ याद नहीं आता. दिमाग पर किसी जहरीले धुएं की धुंध छा गयी है.

वे युवक भी कभी-कभार दिख जाते हैं तो उनके चेहरे पर भी एक पल के लिए स्याह बेहोशी दिखायी दे जाती. वैसे सब ठीक ही था

कहीं कोई अंतर नहीं. कुछ नहीं, यह मेरा वहम होगा. जीवन बिल्कुल सही ढर्रे पर बह रहा है.

बस, एक दिन चाय पीते समय सही ध्यान आया था कि मेज के सामने वाली दीवार पर टंगी पति की एकमात्र तसवीर गायब हो चुकी है. और फिर यही महसूस हुआ था कि अब दिमाग के चेतना-बिंदु को पकड़ लेने का हर प्रयत्न मेरे हाथ से फिसलता जा रहा है—और फिसलता जा रहा है.

लेकिन फिर भी मेरी सांस घुट नहीं गयी थी—बेहोश-दिमाग की घुटन लिये मैं जिंदा थी. □□□

१० ब्ल्यूनाइल, २४ वां रास्ता, बांद्रा, बंबई—५०

एक और शुरुआत

• मधुकर सिंह

बहुत जमाने से अगल-बगल मुहल्लों का कचरा लोग यहीं फेंक जाते हैं. रामन कलक्टर जब थे तब उन्होंने इस मैदान की सफाई करायी थी, फूल-पत्तियां लगवायी थीं, तालाब खुदवाये थे, तब कहीं जा कर इस मैदान का कायाकल्प हुआ है. मगर लोग-बाग अभी भी अपने-अपने घरों की गंदगी लिये दरवाजे से झांकते रहते हैं और मन मसोस-मसोस कर रामन साहब को गालियां देते रहते हैं. दो ही साल बाद, उनका तबादला होते ही यह काम फिर शुरू हो गया है. तब से हमारी उम्र भी पच्चीस-छब्बीस साल लंबी हो गयी है. मैदान को रमना मैदान कहा जाता है. बचपन से हम यहीं गेंद खेलते हैं. तब से यहां हर दशहरे में रामलीला होती है— सर्कस, भाषण सब कुछ यहीं होता है. मैंने पं. नेहरू को पहले पहल यहीं अपने घर के पास से देखा था, चुनाव-भाषण करने के सिलसिले में यहां आये थे. तब भी कूड़ा-करकट का अंबार यहां था. मगर सरकारी इंतजाम ऐसा था कि गंदगी को नेहरूजी की नजरों से ओझल रखा गया था. तत्कालीन कलक्टर ने अपनी मासिक प्रेस-कांफ्रेंस में अधीनस्थ पदाधिकारियों की अतिशय सराहना करते हुए संवाददाताओं को बताया कि इस समाचार को बड़े चोखे ढंग से भेजिएगा कि सरकारी इंतजाम इतना सुंदर था कि प्रधानमंत्री की नजर भी वहां तक नहीं गयी. वर्ना क्या यह भारी गंदगी छिपाना किसी जिला प्रशासन के लिए आसान था? सर्कस के अलावा इस मैदान में संगीत-सम्मेलन, दंगल, स्पोर्ट्स, भारी-भारी चीजें अब भी बाढ़ या अकाल के नाम पर होती रहती हैं और स्थानीय सरकारी अफसर दो दिनों के भीतर हजारों रुपए व्यापारियों, दूकानदारों आदि मध्यम श्रेणी के लोगों से जबरन वसूल कर लाते हैं और शहरी संभ्रांतों के साथ बैठ कर दो दिन बड़े मजे उठाते हैं. रमना का सौभाग्य है कि यहां सब कुछ टिकट पर होता है. शहर के नागरिकों के लाखों, करोड़ों पांव इसकी छाती पर अपने दुख-दर्द की कथाएं छोड़ जाते हैं. इसी मैदान में एक तरफ राज्य ट्रांसपोर्ट के दो कर्मचारी कुर्सी-टेबल लगा कर टिकट बुक करते हैं. बराबर ऊपर से खबर मिलती है कि उनकी सुरक्षा के लिए गुमटीनुमा काउंटर बनाया जा रहा है. मगर सालभर से भी ज्यादा हो रहा है, इनके लिए कहीं कोई गुमटी नहीं बनी है. बारिश आ गयी तो सब कुछ समेट कर नुक्कड़वाली चाय की दूकान के अंदर भागते हैं.चाय वाला इन्हें मामूली समझ कर इज्जत नहीं करता. उसे लगता है कि दोनों युवक कोई बाबू नहीं, खलासी होंगे. मगर इन्हींकी वजह से तो यहां बस-डिपो है यात्रियों की वजह से उसकी दूकान चलती है. यही वजह है कि वह कुछ बोलता नहीं है.

दोनों युवक आपस में बहुत खुश रहते हैं. मैं एक तीसरा आदमी हूं और इनकी मस्ती में शरीक रहता हूं. दोनों लगभग एक उम्र हैं और प्यारे-प्यारे. इनमें एक गोरा-चिट्टा और लंबा-चौड़ा युवक है,जो पहले पूना फिल्म इंस्टीट्यूट में नाम लिखा कर शत्रुघ्न सिनहा बनना चाहता था. कई साल तक चिठ्ठी -पत्री और कोशिश के बाद युवक निराश है. उस तरफ से निराश हो कर लेखक हो गया है. मुझे अपनी कहानियां पढ़ाता है. बहुत भोली बातें करता है. स्कूल से छुट्टी के बाद अकसरहा उसी के पास बैठ जाता हूं. पांच बजे तक प्रायः बुकिंग बंद हो जाती है और बसों का जाना रुक जाता है. मेरे पहुंचते ही वह पहले मुसकराता है और इसके बाद जोर से हंस देता है, जैसे बहुत हलका हो गया हो. इसे संभवतः इसकी बहुत कचोट है कि डिपो बुकिंग बहुत ही गलत जगह पर है. एक कमरानुमा दफ्तर होता, सीलिंग पंखा चलता रहता, तब कहानी सुनाने में भी मजा आता मगर इसके बाद फिर वही जोर से हंस कर कहता है—हम लोग भी कैसे बुर्जुआ हैं, एकदम पेटी बुर्जुआ. तब हम क्या खाक कहानियां लिख सकते हैं? असल बुर्जुआ तो गांवों से उठ कर राजनीति में घोंसला बना चुके हैं. अपने को अगर कहानी लिखनी है तब तो यह बुर्जुआ मनोवृत्ति बिल्कुल नहीं चल सकती क्रांति मजदूर ही करते हैं. क्या खयाल है आपका? फिर वह चुप हो जाता है और दुखी हो कर कहने लगता है—मुझे एक सौ बहत्तर रुपए मिलते हैं. मां को सीधे सौ रुपए भेज देने पड़ते हैं. खाली बहत्तर रुपए में गुजारा करता हूं. जाली लोग हजार, दो हजार रुपए तनख्वाह उठाते हैं. गांवों में उन्हें फाजिल जमीनें पड़ी हैं, जिन पर कहते हैं, उनका पुस्तैनी दखल है. बल्कि इनके पास जमीनें बढ़ती जा रही हैं. और सर्वहारा की बात करते हैं. मेरी लड़ाई तो ऐसे ही लोगों से होगी जो पूरे हिंदुस्तान को उल्लू बना रहे हैं.

बसें आ कर रुकती हैं और धुंए की तरह उठ कर धूल चारों तरफ फैल जाती है.हम लोग भी एक-एक कर उसके भीतर डूबते चले जा रहे हैं. उसे फिर गुस्सा आता है और बोलता है—देख रहे हैं? मेरे आप जैसे नौजवान क्या करेंगे! इन्हें तो बेकारी, भूख, जहालत की मार से ऐसा अधमरा कर दिया गया है कि शरीर में छंटाक भर भी रक्त नहीं जो गर्मी पैदा कर सके. देखिए, हमारा मैनेजर आया था. साला खूब कार पर घूमा. रात सर्किट बंगला जा कर रुका और मुझसे बोला—सोलन की एक बोतल ला दो.मैं तो अभी तक शराब नहीं जानता. काउंटर से पैसे उठा कर शराब की दूकान में गया और उसके स्वागत के लिए एक बोतल ले आया . अब आप ही बताइए, बहत्तर मेरे माह भर का खर्च है. चालीस रुपए जी. एम. में घुस गये. किस लिए? क्या कोई इस जी. एम. को ठिकाने नहीं लगा सकता?

सच-सच बताइएगा, आप भी किरानी होते तो घूस लेते या नहीं? कभी-कभार मुझसे पूछता है —वेतन से पेट नहीं चलता तो घूस जरूरी हो गयी है. अब तो हमें कोई पैसे भी नहीं देता. पचास पैसे ले कर पचास हजार तक लोग उसी टेबुल पर रख आते हैं. हमें कौन पूछता है! मैं तो एकाध घंटा शाम को आपके साथ बैठ जाता हूं तो

मन लगता है. हर तरह से मिजाज ऊबा हुआ है. यह तो ट्रांसपोर्ट की कृपा है कि हमें यहां भी थोड़ी जिंदगी मिल जाती है.

अचानक बारिश होने लगती है. हम सभी काउंटर के साथ चाय की दूकान में भागते हैं. चाय वाला कुढ़ने लगता है. जहां हम बैठना चाहते थे वहीं दूसरे हमसे पहले बैठ जाते हैं. हमें खड़ा देख कर चाय वाले को खुशी ही होती है. उसे विश्वास है कि हम से उसे कोई आमदनी नहीं.ऐसे घूरता है जैसे वे नकली कर्मचारी हों.चायवाला कभी विश्वास नहीं कर सकता कि ट्रांसपोर्ट सरकारी भी हो सकता है. यहां पर तो न कोई ऑफिस है, न सौ-पचास बाबू ही हैं. दोनों खलासियों की तरह खाकी पैंट की जेब में हाथ डाले चाय पी जाते हैं और आज के पैसे कल देते हैं.'तीन गिलास जल्दी से चाय?' वह बार-बार आवाज लगाता है और चाय वाला अनसुनी कर देता है.

वह काउंटर के छोटे बक्से पर बैठ जाता है और बहुत उदास लगता है —— चलिए, हम कहीं दूसरी जगह चाय पियेंगे, मैंने कहा.

——मां की चिट्ठी आयी है.

——क्या लिखा है मां ने?

——उसे तत्काल दो सौ रुपए चाहिए . मकान का कोना गिर गया है. अगर सरकारी सेल के उठा कर पैसे भेज दूं तो चुकता कौन करेगा. मैं तो घबड़ा गया हूं. घूस लेने की सुविधा नहीं है. कल राजधानी जा कर किसी से सिफारिश करूंगा. मैं ऐसी जगह सुविधा चाहता हूं, जहां ड्राइवर-कनडक्टर से दो-चार रुपए मिलें.

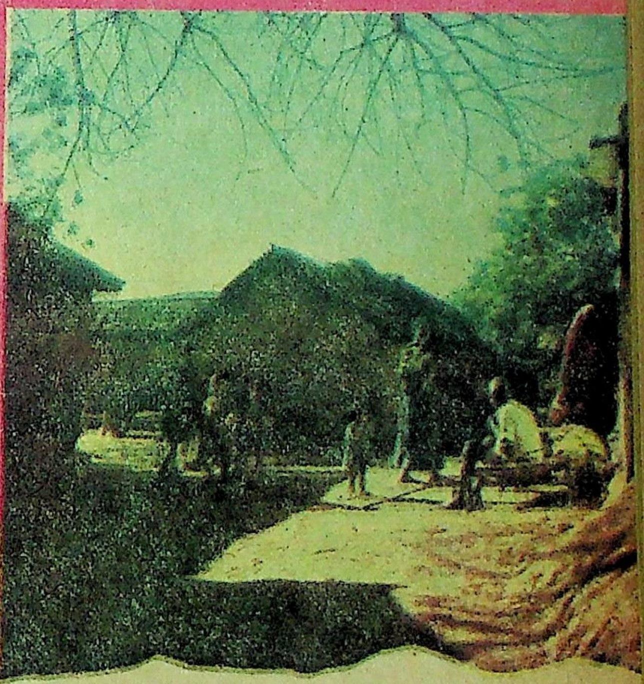
मुझे आश्चर्य होता है——ड्राइवर-कनडक्टर क्यों देंगे?

——आप जानते नहीं क्या? उसने कहा, इन्हें रोज कम-से -कम पंद्रह-बीस रुपए की आमदनी है. जब भी कोई गाड़ी बुक हुई तो ये टिकट बाबू को एक रुपए थमा देते हैं. राजधानी में तो लोग रोज दस-बारह रुपए कमा लेते हैं. मेरी तरह चिंतित नहीं रहते. उनकी मां जब भी पैसे मांगती है, भेज देते हैं. हमारे यहां तो अफसर रोज लखपति बन रहे हैं.अभाव पूरा करते हैं. मेरे बॉस का चले तो सबको भूखे मार दे. एक बंबर का कसाई है, कसाई. इस पर भी कोई बुर्जुआ रोब गालिब करे तो कितनी खराब बात है. पहले हम मिलजुल कर इनके खिलाफ क्यों नहीं लड़ते? मां और कहानी के बारे में बाद में सोचेंगे.

मैं भी मजाक में उसे शत्रुघ्न सिनहा कह देता हूं. उसे भी संभवतः सुनना अच्छा लगता है. मेरा शत्रु हंस देता है. उसने मेरी रुचि बदल दी है. और साहित्य के प्रति मेरी रुचि बढ़ने लगी है. हम घंटों बहस करते हैं और स्थितियों से ऊब कर भद्दी-भद्दी गालियां बकते हैं.

शिक्षक संघ में मेरा वक्त ज्यादा गुजरने लगा है. मेरे साथ अकसर वह संघ के दफ्तर में आता रहता है.मेरे कामों में वह भी हाथ बंटाता है. और चिट्ठियां लिखते समय शिक्षक की समस्याओं में शामिल हो जाता है. धीरे-धीरे संघ के तमाम लोग भी उसे अपने संघ का ही समझने लग गये हैं.

बारिश छूटते ही हम वहां से जल्दी भागे. उसने पच्चीस रुपए में कमरा ले रखा है. मगर बराबर कमरा बदलने की बात करता है. गली में उतरते ही सुबह अपना नया कमरा दिखलाता है—— देखिए, वहां. कल के ठीक सामने . जगह तो बहुत अच्छी है. सामने फूल हैं और दूसरे किराएदारों ने सब्जियां लगा रखी हैं. उसीमें ताक कर सौदर्य-बोध जगाता हूं. कमरा इतना सर्द है कि पता नहीं मच्छर और मक्खियां कहां से चली आती ह. अब तो खाना बनाने की भी इच्छा नहीं होती. होटल में भी कितने दिन तक खाऊंगा? परसाल शादी हुई है. पत्नी को यहां लाना ठीक नहीं है.कहां रखूंगा? मेरा स्वास्थ्य कितना गिर गया है. मां देख कर बहुत दुखी होती है. इसीलिए घर बहुत कम जाता हूं. मछली, गोश्त और अच्छी सब्जी खाये तो जमाना हो गया. कैसी मजबूरी है! मैं इस कमरे में बिल्कुल रहना नहीं चाहता. आपकी नजर में कोई कमरा हो तो बतायेंगे. तब आपको मछली खिलाऊंगा



एम. डी. शर्मा

नजर में कोई सस्ता कमरा है?

मगर सच्ची बात यह है कि वह अबतक चार-पांच कमरे बदल चुका है. पच्चीस रुपए में जैसा कमरा वह चाहता है, कहीं नहीं मिलता. उसने जैसे ही कमरा खोला, मच्छरों के अपार समूह ने हम पर हमला कर दिया. हम उन्हें ठेलते हुए अंदर घुस गये. भीतर गाढ़ा अंधेरा था. उसने टटोल कर लालटेन जलाई. किताबें चौकी पर इधर उधर बिखरी थीं. नीचे पत्रिकाएं और अखबार पड़े थे. एक ओर चमड़े का पुराना सूटकेस था और उसके ऊपर

उतारे हुए कपड़े थे. दूसरे कोने में अलम्युनियम के बर्तन, ठंडा कुकर और एक बाल्टी पानी पड़ा था. सिमटी हुई मच्छरदानी के अंदर भी मच्छर भनभना रहे थे, जिन्हें वह मार-मार कर उड़ा रहा था. मैं उससे कुछ पत्रिकाएं लेने के लिए उलटने लगा.

—सुना है बंबई में चालीस हजार लोग डिब्बे पहुंचाने का काम करते हैं? अचानक वह मुझसे पूछता है.

—बंबई तो मैं कभी गया नहीं. परंतु हिंदुस्तान में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो जितना काम करते हैं उस हिसाब से उन्हें मजदूरी नहीं मिलती. देश का सारा धन मुठ्ठी भर लोगों के हाथों सिमटता जा रहा है.

—एक बार बंबई देखना चाहता हूं.

—हम तो सोच कर भी वहां नहीं पहुंच सकते.

—इसलिए भी पूना फिल्म इन्स्टीट्यूट में दाखिला चाहता था. बंबई सोचते ही तबियत रूमानी हो उठती है.

—आप कहें तो कोई प्रयत्न करूं?

वह ठठा कर हंसता है—आप मेरा मजाक उड़ा रहे हैं.

—हम लोग हर महीने दस-दस रुपए इकठ्ठा करें और अगले साल घूमने चलेंगे. ऐसे मालूम भी नहीं पड़ेगा कि हम अपना पेट काट रहे हैं.'

मेरी बात शायद उसे अचानक पसंद आयी है. हम भूल गये हैं कि असंभव बात भी कर रहे हैं. वह भी बेहद खुशी में कहता है— यह तो आप बहुत अच्छी बात कर रहे हैं.

उसने सूट केस से दस का एक नोट निकाल कर मेरी तरफ बढ़ा दिया.

—खाना नहीं बनायेंगे ? मैंने पूछा.

—आज नहीं बनाऊंगा. फिर होटल में ही खाऊंगा. आपसे बहुत बात करने की इच्छा है.

—बात तो हम रोज करते हैं.

—करते हैं, मगर इस तरह से कहां करते हैं?

मुझे भी लग रहा है कि हम इतनी मधुर बातें कहां करते हैं—हम लोग अपनी बातों से अपने को बराबर गायब क्यों कर देते हैं? मैंने कहा.

—लगता है, घूमने-फिरने वाली बात टाल रहे हैं आप.

—तब हमें क्या करना चाहिए?

—आप भी निकालिए दस रुपये.

—मेरे पास तो अभी नहीं है . कल दे जाऊंगा.

—मिला दीजिएगा. पैसे तो आप ही के पास रहेंगे.

—नहीं, नहीं, मैंने घबड़ा कर कहा—मैं नहीं रख सकता. घर में कोई बीमार पड़ा कि सब डाक्टर के घर चला जायेगा. और हम लोग बंबई घूमते रह जायेंगे.

मैं जोर से हंसा. मगर वह मुसकरा कर रह गया. शायद वह सोचता रहा कि उपाय क्या है. उसने कहा—हम एक जगह पैसे इकट्ठा कर सकते हैं.

—कहां ? मैंने पूछा.

—बाजार में गुल्लक मिलती है. चल कर अभी खरीदते हैं.

* *

जब हम शिवगंजवाली गली निकल कर रूपम सिनेमा के सामने आ गये तब मैंने कहा—अब मैं घर चलूं ? पहला शो टूट गया है. नौ से ज्यादा रात हुई है. दूसरे शो वाले तेजी से अंदर घुस रहे हैं.

—अभी तो और आपसे बातें करनी हैं. आपकी साइकिल तो मेरे ही कमरे में है. घर कैसे जायेंगे?

—तब जल्दी चलिए, ले लूं.

—आज रह जाइए मेरे साथ, रात भर गप करेंगे.

—मां और पत्नी चिंतित होंगी. कह कर आता तो रुकता. कल हम रात भर जागने का कार्यक्रम रखें.

—रात भर किसलिए?

—गप करेंगे.

वह मुसकराया —पता नहीं कल कैसा रहेगा. अच्छा, थोड़ी देर बैठने के बाद चले जाइएगा.

—यह जरूर कर सकता हूं.

वह बुझ गया है और पैसे जमा करने की उस गुल्लक को नचा रहा है, जैसे नोटों से भरे डब्बे की तौल तज-बीज कर रहा हो. उसकी बड़ी-बड़ी आंखें चमक उठी हैं. उसे पूरा यकीन है कि अगले साल हम बंबई जायेंगे. वह आज ही से तैयारी में लगना चाहता है. हम जब भी कुछ कल्पना करने लगते हैं, दुख से भरा मन तत्काल हलका हो जाता है . हमें कल्पनाएं जिंदगी देती हैं. अभी लगता है कि कल्पनाएं बेहद जानमारू हैं.

—क्या सोच रहे हैं आप? उसने पूछा.

—सिनेमा के ऊपर बत्ती बहुत अच्छी लग रही है.

—जैसे लाल टेसू कचनार हो.

—एकदम सही आप कह रहे हैं.

उसके कमरे में दोबारा बैठे हैं. मच्छर फिर हमला कर रहे हैं. मगर हमें बिल्कुल उनकी परवाह नहीं है. हम कुछ देर तक और मच्छरदानी के अंदर बैठना तय कर चुके हैं.

—आप तब तक चावल-दाल कुकर में डाल क्यों नहीं देते?

—सचमुच यह आप ठीक कह रहे हैं. आप रहेंगे तो मन भी लगेगा.

वह जल्दी-जल्दी बर्तन धो-धा करने लगा. कमरे के अंदर ही पानी गिरा रहा था.आपके दरवाजे से हो कर नाली बहती है. आप उन्हें पानी गिराने से मना क्यों नहीं कर देते? मैंने कहा.

—मैं उन्हें मना नहीं कर सकता.वह बोला—बेचारे की हालत बहुत दयनीय है.यहां से थोड़ी दूर पर एक गांव में बेचारा शिक्षक था. स्कूल का सेक्रेटरी ब्राह्मण है और यह जात का बनिया. इसे स्कूल से निकाल दिया है.

—किसलिए?

—सेक्रेटरी ने बहाना लगाया कि तुम रोज बाहर मत जाओ. स्कूल और लड़कों का नुकसान होता है. मगर वह शिक्षक आप ही की तरह बहुत सरल है. दो-चार

ट्यूशन के लालच से ही शहर जाता है. स्कूल में जो डेढ़ सौ वेतन मिलता है उसमें क्या होगा. ट्यूशन न करे तो दोनों जून बच्चों को रोटी न मिले. बेचारा जात का छोटा है, यही उसका कसूर है.

—दूसरी तरफ वाले छात्र हैं, वह फिर कहता है, जो किसी तरह गुजारा कर लेते हैं. एक ही कमरे में चार रहते हैं. सोचता हूं ये लोग भी गरीब हैं, तभी तो इस तंग कमरे में चार रहते हैं. रात में कैसे पढ़ते-लिखते हैं मुझे आश्चर्य होता है. मगर यह भी सच है कि पढ़ते हैं. इन्हें तो खुद अकल होनी चाहिए था कि पानी उधर हट कर गिरावें मगर इन लौंडों में चेतना कहां है? आप मुझे कोई कमरा दिला दीजिए. मैं यहां से घबड़ा गया हूं. मकान-मालिक ने पूरे अहाते को कल-परसों बेच दिया है. कमरा एकाध रोज में खाली कर देना है. पता नहीं, नया मकान-मालिक कैसा होगा! रहने देता है या निकाल-बाहर करता है. हां, कभी आपको मां से मिलाऊंगा. मेरी मां बहुत अच्छी है.

मुझे शाम को अकसर भूख बहुत तेज लगती है. घर शहर से दूर है. साइकिल से नौ-साढ़े नौ बजे ही घर छोड़ देता हूं. मैंने हंसते हुए कहा —— आप बहुत कंजूस आदमी हैं. कभी कुछ खिलाते नहीं हैं.

वह हंस देता है. बेहद दयनीयता और मजबूरी से—— क्या कहूं? देखिए न, बड़ी बहन का रांची से खत आया है. जीजा जी के बाबूजी बीमार हैं. बचेंगे नहीं, अब एक दिन के लिए भी तो जाना चाहिए. दिन को नौ बजे और रात को नौ बजे खाता हूं. नाश्ता बिल्कुल नहीं करता. पढ़ने-लिखने की तबीयत एकदम नहीं होती. बिछावन पर गिरते ही नींद आने लगती है. कई कहानियां अधूरी पड़ी हैं. कुछ समझ में नहीं आता क्या करूं.

हमारी योजनाओं में कोई दम नहीं है. मगर बातों से अह्लाद जरूर होता है. बाद में उस बात को जीने के लिए खींचतान भी नहीं किया जा सकता. उसका मैनेजर फिर आया था. उसने शराब नहीं पिलायी.मैनेजर उसे डांट कर चला गया. उस दिन वह बेतरह उदास था. कैसा नरम आदमी है. इसे बिल्कुल गुस्सा नहीं आता, उदास हो जाता है. उसने आई. टी. ओ. को कस कर डांट दिया था—— सुनिए, मि. बी. एन. सिंह, आप मैनेजर से चुगली कर मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते. मेरे भी लोग विभाग में भरे पड़े हैं. बी. एन. सिंह को डांट कर उसे सुख अनुभव हुआ था. मुझसे वह बोला, आप सिनेमा चलेंगे? आज तबीयत बहुत खुश है. मगर आज नहीं तो कल यह नौकरी मुझे छोड़नी है. इनकी धौंस मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता. आप क्या समझते हैं मैं बर्दाश्त करूंगा? मैं आज ही डिपो कर्मचारियों को इकठ्ठा करूंगा और बी. एन. सिंह की हालत खराब कर दूंगा. बी. एन. की ऐंठ और मैनेजर की घूसखोरी न छुड़ा दी तो मेरा नाम बिशनलाल नहीं.

मैं भी बिशनलाल से कम खुश नहीं हो रहा था. मगर वह इस नौकरी से ऊब जाता है. उसकी तरह के लाखों लोग हैं जो भूखे और आधा पेट खा कर जी रहे हैं. जब कोई जिंदगी नहीं तो स्वाभिमान की बात क्या है? वह शौक के लिए कहानीकार बनना नहीं चाह रहा था. उसका खयाल है कि डिपो के तमाम लोग उसके पाठक बनेंगे और व्यवस्था के खिलाफ खड़े हो जायेंगे. हम लोग उसके कमरे में बैठ कर गप कर रहे थे कि वह अचानक मुसकराते हुए बोला— मुझे लोग डिपो-सेक्रेटरी बना रहे हैं. हो जाऊं?

——उनका काम कर सकें तो जरूर हो जाइए.

——वे बी. एन. सिंह को हटा रहे हैं. बी. एन. मामूली आदमी नहीं है. सौ एकड़ के लगभग उसे जोत है. खानदान में आवारा था और पढ़ा-लिखा नहीं तो छोटी नौकरी में चला आया. उनकी शिकायत है कि अफसरों से मिला रहता है और यूनियन का पैसा खा जाता है. सेक्रेटरी बनते ही ऐसे गंदे आदमी को डिपो में नहीं रहने दूंगा. देखिए, एक गलत आदमी से लड़ाई की शुरुआत यहीं से होगी.

——यूनियन का काम और कहानी लिखना, दोनों एक साथ नहीं चल सकता. मैं बोला.

——जिम्मेदारी तो बढ़ जायेगी. मगर जब सेक्रेटरी हो कर काम करने का संतोष मिलेगा तो कहानी लिखने की जरूरत क्या है?

हमारी मजबूरी है कि हम फुर्सत मिलते ही एक-दूसरे के लिए छटपटाने लगते हैं. उसके सेक्रेटरी बनते ही मैं भी शिक्षक संघ को ज्यादा समय देता हूं. दोनों बेतरह थके हुए थे और रात को लगभग दस बजे तक यों ही पड़े हुए थे. तभी डिपो का खलासी उसके पास आया.

——मैनेजर साहब आये हैं, खलासी ने कहा.

——कौन मैनेजर?

——अरे! खलासी हंसता है. अपना मैनेजर भई? आपको याद कर रहे हैं.

——कल सुबह नहीं आ सकता? अभी तो बहुत रात है. कहना, सात बजे तक हाजिर हो जाऊंगा.

——बी. एन. सिंह यहां नहीं हैं. उन्होंने फौरन आप ही को बुलाया है.

——रात को क्या जरूरी है, कहो न?

——अरे, उसे तो एक बोतल चाहिए, बस.

——उसने पैसे दिये हैं? उसने जानते हुए भी पूछा.

खलासी फिर हंसा——बिशन बाबू की बात, आज तक पैसे उसने दिये किसीको? बड़े लोगों का सारा काम मुफ्त होता है.

——रुका कहां है?

——सर्किट बंगला.

——बिशनलाल थोड़ी देर तक चुप रहता है, जैसे अपने को तौल रहा है. ऐसे वक्त तमाम यूनियनों और महासंघ के होते हुए भी उसे स्थितियां निस्तेज और बहुत उदास लगती हैं. अपने लोगों से अपनेपन का कोई एहसास नहीं होता. बिशन को यही लगता है, मजदूरों के सामने एक ही तरह के काज हैं मगर सभी अलग-अलग हैं. मैनेजर के नाजायज और एय्याश आदेश को इंकार करने की चेतना जब अपने भीतर नहीं है तो यूनियन में रहने का क्या मतलब है? वह डिपो-सेक्रेटरी जरूर है. बी. एन. से लड़ सकता है, मैनेजर से उसकी लड़ाई क्यों नहीं हो सकती? क्या बिशनलाल बिल्कुल अकेला है? हां,

अभी तो एकदम अकेला हूं, तभी तो मैनेजर के आदेश पर इस रात को भी बिना ड्यूटी के उसके पास जा रहा हूं.

मेरे साथ वह भी कमरे से बाहर निकल आया.

—कुछ महसूस कर रहे हैं? वह गुस्से में बोला.

—नौकरी करनी है तो बर्दाश्त करना पड़ेगा.

—मैनेजर हमारी तरह बर्दाश्त क्यों नहीं करता? वह भी तो नौकर है.

—आप जल्दी जाइए. खामख्वाह कुछ बक दे तो क्या फायदा. मैं भी साइकिल की पैडल पर पैर रखता हूं और वह जल्दी से ताला बंद करने लगता है.

* *

तभी अहाते में किराएदार का लड़का एक महिला के साथ पहुंच कर उसे चौंका देता है—आपकी मां आयी हैं.

—कहां ? वह इस झटके से पीछे की ओर मुड़ता है कि उसका दाहिना हाथ सीधे मां के चरणों पर जा गिरता है—तुम अचानक कहां से चली आयी मां. सब कुछ ठीक तो है?

मां अंधेरे में जरूर मुसकरायी होगी. परंतु उनकी आंखें डबडबायी हुई थीं.

—अरे सुनिए यादव जी? उसने मुझे जोर से बुलाया, अब आप नहीं जा सकते. मेरी मां आयी हैं इससे मिलेंगे नहीं?

मैं भी लौट गया और उन्हें नमस्कार किया. देखा कि वे मुझे ही नहीं, उसे भी अजनबी की तरह घूर रही हैं. उन्हें शायद अपने बिशन को ऐसी स्थिति में पाने की कल्पना न हो.

वे समझ रही होंगी, कमरा इतना तंग और बेशर्म नहीं होगा. बेटे की सारी गृहस्थी इसी कमरे में सिकुड़ती देख कर मां की माया फटती जा रही है. बोलीं —तूने तो ऐसा कभी नहीं लिखा बिशन, कि इस नरक में रहता है मैं तो बहू को भी यहीं भेजना चाह रही थी. बिशन अब तो बिजली गांवों में भी आ गयी है. कैसा मनहूस मालिक है? कल सुबह ठीक से देखूंगी. अभी तो इस लालटेन में तुम्हें पहचान भी नहीं पा रही हूं. मां अपनी आंखें पोंछ रही हैं.

बिशनलाल ने भी देखा है. मगर वह भी करे क्या, यहां अकेली यही मां नहीं है. इनकी तरह लाखों मां हैं जो इसी तरह रोज अपने बेटों को देखती हैं. यहां तक कि भूखे बेटों को ठोंक-ठोक कर सुला देती हैं.

बिशनलाल चुपचाप गालों पर उंगलियां दे कर चौकी पर बैठा था. एक तरफ मां थीं और मैं था.

मैं भी जल्दी घर जाने के लिए उकता रहा था. अब तो तत्काल जाना मुश्किल था.

उसने खलासी को कहा—अब तुम जाओ, सरन भाई. देख रहे हो न, मां को? अभी तो बिल्कुल नहीं जा सकता.

—आप तो मैनेजर को जानते हैं, कैसा आदमी है. देखिए, वहां पहुंचने पर मेरी हालत क्या होती है. अभी तक तो चूल्हे में लकड़ी तक नहीं डाली है, बीवी बीमार है. अभी मैनेजर कहां-कहां भेजेगा, कुछ पता नहीं. खलासी बहुत झुंझला कर बोलता है.

—क्या हो गया है, तुम्हारी पत्नी को?

—पीठ में कई महीने से घाव है. लोग बताते हैं कि कारबंकल है.

—कहीं दिखलाया है?

—दिखलाता क्या, ठेंगा? अस्पताल में डाक्टर से ले कर नर्स तक, सभी कसाई हैं. असल में काउंटर बाबू, अस्पताल गरीब के लिए नहीं है. अमीर हर तरफ छा गये हैं.

—मैं तो सरन, यमराज के आने पर भी नहीं चल सकता. तुम जाओ?

—मैनेजर भी यमराज से कम है क्या?

हम उसकी बातों पर हंसते हैं—असल में, इस वर्ग के पास दिल ही नहीं होता. बिशन लाल बोला.

खलासी लौट जाता है.

* *

उसके कमरे में एक ही दो मिनट पर चुप्पी गहराने लगती है. मुझे ही हो रहा था कि जल्दी यहां से भाग चलूं परंतु, बोला—मां के लिए कुछ बनायेंगे नहीं?

—अब तो बनाना ही पड़ेगा. उसके कहा, आप भी घर मत जाइए. सुबह चले जाइएगा. तीन आदमियों के लिए चावल डाल रहा हूं. मां चौकी पर सो रहेंगी. हम-दोनों बाहर उस चबूतरे पर सो रहेंगे. ठीक है न?

—ठीक है, लेकिन. . .

—आपकी घर पर कोई खोज तो नहीं करेगा?

—खोज कौन करेगा. यही पत्नी झुंझलाती है कि कहीं रह ही जाना है तो बता कर क्यों नहीं जाते. एक आदमी का खाना नुकसान हो जाता है.

* *

दोनों मिल कर खाना बनाते रहे. वह बीच-बीच में गांव-घर का हाल - चाल पूछता रहा.

परंतु मां की उदासी मिट नहीं रही है, बिशन को इतनी देर तक करीब पा कर भी नहीं. वह जानते हुए भी मां को भुला रहा है.

—बी. एन. सिंह यहां डिपो-इंचार्ज हो रहा है. मैनेजर उसे मानता है न. कह रहा था, तुम्हें डिपो-बुकिंग में स्थायी रखूंगा और तुमसे तेज यहां कोई नहीं है कह कर बिशनलाल जोर से हंसता है.

—आपने क्या कहा ?

—कहता क्या? उसने कहा, मैं तो बी. एन. सिंह को ठीक से समझता हूं न. एक ही बात है. अगर मैं यहां बुकिंग में बराबर रह गया तो पढ़ने-लिखने के

लिए काफी समय मिलेगा. और यूनियन का काम भी ठीक से चलेगा.

—आमदनी तो होगी?

—होगी क्यों नहीं? बी. एन. अपने लाभ के लिए मुझे दिलवायेगा. कनडक्टर को चार-छह यात्रियों की यहीं से छूट मिल जाती . सबका काम चल जाता है. समझिए, ड्राइवर और हम लोग बारह घंटे में ग्यारह घंटे काम करते हैं—कठिन श्रम . तब भी भर पेट रोटी नहीं मिलती. उस पर हमारे साहब लोग रोब गालिब करते हैं और रोज लखपति बनते जा रहे हैं,'

मां सब कुछ सुन रही हैं. मगर हिस्सा नहीं ले रही हैं. क्या उनकी उदासी ज्यादा गहराती जा रही है? मैं भी उनकी माया में कहीं से भी शरीक नहीं हो पा रहा हूं !

उस वक्त मुझे भी अपनी मां का खयाल आता है. उसको भी ऐसा ही रोग है. किसी बात पर वह भी लगातार मुझे देखती रह जाती है. मैं तो उसकी ऐसी आदतों का अभ्यस्त हो गया हूं.

सुबह खलासी बिशनलाल को बुला कर सर्किट बंगला ले गया.

आधी रात को खलासी सरन प्रसाद बी. एन॰ सिंह को गांव से बुला लाया था. बी. एन. ने कहीं से मैनेजर के लिए बोतल ला दी थी.

मैनेजर का नशा अभी तक पुरा नहीं था. रात से ही उसकी आंखें लाल थीं.

उसने डाँट कर पूछा—बिशनलाल, तेरे को ड्यूटी करनी है या नहीं?

—करनी क्यों नहीं है, सर. खाने-पीने की फुरसत भी तो चाहिए.

—ठेंगा खायेगा? नौकरी ले लूंगा, समझे?

बिशनलाल को गुस्सा चढ़ता है. परंतु कहता है—ड्यूटी में कोई चूक हो तो माफ कर दें. आगे से अपने को सुधार लूंगा?

—बाप का माल समझ रखा है सरकार को क्या? मैनेजर तमतमाया हुआ है.

बिशनलाल इससे ज्यादा बर्दाश्त भी नहीं कर सकता है. उसने पैर से चप्पल निकाल ली और तड़ातड़ मैनेजर के सिर और पीठ पर चलाने लगता है.

मैनेजर चीखता है और बिशन का हाथ चलता ही जा रहा है,

—साले जब तक तुम्हें खींच कर सड़क पर लोग मारेंगे नहीं तब तक कुछ नहीं बदलेगा. हरामी कहीं का. . .?

तभी से बिशनलाल सस्पेंड है और पुलिस उसके पीछे है. □□□

धरहरा, आरा (बिहार)

सड़कें, एक-दूसरे को काटती हुई बहुत आगे तक भागती-सी चली गयी थीं. सड़कें, सर्पीली, गोलाकार, चौरस, त्रिकोण बनाती हुई, समानांतर ...सड़कें ही सड़कें.... चौराहे के मध्य ट्रैफिक पुलिस का छतरीनुमा स्टैंड, जैसे काला-सा घेरा बनाता हुआ मेरी आंखों के समक्ष नाच रहा था ... मैं प्रयत्न कर रहा था कि घेरा काला न दिखायी दे कर सफेद-सा नजर आये. अचानक मैं पुनः भटक गया ... केंद्रित होने के संदर्भ में मिलने वाली सफलताएं मेरे लिए अभी तक बहुत मामूली थीं ... जैसे मैं उस गोलाकार स्टैंड पर खड़ा हो कर सोच रहा था कि मेरी आंखों में अद्भुत शक्ति आ रही है, मैं सबसे शक्तिशाली व्यक्ति हूं, मैं सभी को अपने वश में कर सकता हूं ... तभी सचमुच की भीड़ उन्हीं सड़कों पर उमड़ती हुई दिखायी दी. मैंने अपनी आंखों पर जोर डाला, शक्ति का आह्वान किया ... तभी सारी भीड़ अपने स्थानों पर जड़वत-सी हो कर खड़ी हो गयी. फिर धीरे-धीरे

एडजस्ट होने की कोशिश में

• विनोद शाही

मेरी ओर खिसक कर आगे बढ़ने लगी ... मैं अपनी सफलता पर जैसे गर्व से पुलकित हो उठा ... मुझे ऐसा एहसास हो रहा था जैसे मैं अपने बैठने वाले स्थान से थोड़ा ऊपर उठ गया हूं, जैसे मैं अपने आप से थोड़ा भिन्न हो गया हूं—दर्पण में दीखने वाले प्रतिबिंब की भांति, मात्र प्रतिबिंब ... फिर मुझे अनुभव हुआ जैसे मैं पुनः अपने उसी काले घेरे से बहुत दूर भटक गया हूं. मैंने लौटने का प्रयत्न किया ... काला गोलाकार स्टैंड, धूमिल-सा होता हुआ ... भीड़, धुंधली-सी पड़ती हुई ...सड़कें किसी शून्य में मिलती हुई ... मात्र घेरा, वही काला घेरा, सामने की दीवार पर लगे कागज पर बना, अठन्नी के आकार का काला घेरा... मुझे लगा, मेरी आंखें दुख-सी रही हैं, मुझे पलकें झपका लेनी चाहिए ... काफी कठिनाई हुई पलकें बंद करने में ...लगा जैसे कुछ समय के लिए आंखें जड़-सी हो गयी थीं. मैंने पलकें बंद कर लीं. एक सुखद-सा एहसास हुआ ... लगा जैसे आंखों में विशेष प्रकार की ~~ऊष्मा~~ दौड़ रही है ... काफी समय तक पलकें खोलने की इच्छा ही नहीं हुई. उसी प्रकार आंखें बंद किये जमीन पर बैठा रहा ... अचानक ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पलकें नीचे की ओर ढुलक रही हैं. मैंने आंखों के अनुभव के साथ-साथ आंखें बंद करके बैठे-बैठे ही अपने शरीर का अनुमान लगाना चाहा ...लगा कि मेरे बैठने वाले स्थान के नीचे से गर्मी-सी पैदा हो रही है—एक ही स्थान पर काफी समय तक लगातार बैठे रहने के कारण अब बैठक बदलने की आवश्यकता हो गयी थी ...शेष सारा जिस्म ... जैसे किसी स्वप्न से अचानक जागने की अनुभूति मुझे हुई ... मैं कहां था इतने समय तक? .....आज पहली बार मैं इतना अधिक आत्म-विस्मृत हुआ था ... अब उठना चाहिए....

अचानक इस अनुभूति को अधिक तीव्र पा कर मैंने अपनी आंखें खोल दीं ...उसी काले घेरे को देखता हुआ उठ खड़ा हुआ. पास की मेज पर पड़ी किताबों पर धूल-सी चढ़ गयी थी. कई दिनों से कुछ पढ़ा नहीं था..... हूं, तो नौकर भी ठीक से काम नहीं करता आजकल ... परंतु फिर दोबारा उस बात को सोचते हुए मुझे यह सब बड़ा हास्यास्पद लगा. मुझे अपने भीतर उत्साह का-सा भाव उमड़ता हुआ प्रतीत हुआ. मेरा यह उत्साह शायद मेरी लंबी निष्क्रियता का परिणाम था... जो हो, मेज पर एक मक्खी आ कर बैठ गयी थी. मैंने बिना कुछ सोचे-समझे उसे उड़ा दिया. फिर अपने कमरे से बाहर निकलने की बात सोचने लगा.

* *

मैं अपने पढ़ने वाले कमरे से अभी-अभी हिप्नॉटिज्म का अभ्यास करके बाहर आंगन में आया था. कमरे में अंधेरा-सा होने के कारण मेरी आंखें कुछ चुंधिया रही थीं. पिछले एक महीने से मैं लगातार हिप्नॉटिज्म का अभ्यास करने का प्रयत्न कर रहा था. कॉलेज की लाइब्रेरी से लायी पुस्तक के आधार पर मैंने सफेद कागज पर काला निशान लगा कर अपने स्टडीरूम की सामने वाली दीवार पर चिपका लिया था. अब प्रतिदिन उस पर दृष्टि केंद्रित करने के प्रयास में लगा था. वैसे अभी तक इसमें किसी प्रकार की सफलता का आभास मुझे नहीं मिला था, फिर भी इसके कारण कुछ परिवर्तन अवश्य दिखायी दिये, जैसे मेरी आंखों का कुछ लाल रहना तथा दुखना, थोड़ा एकांतप्रिय तथा आत्मकेंद्रित-सा हो जाना, मित्रों के हास-परिहास में रुचि का थोड़ा कम हो जाना आदि. मैं कुछ चिड़चिड़ा भी होता जा रहा था. इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रवृत्ति भी मेरे व्यवहार में काफी अधिक स्पष्ट होने लगी थी. वह यह कि अब मैं प्रायः यह प्रयत्न करने लगता कि लोग मुझसे केवल प्रभावित ही न हों, मेरी बात भी मानें. मैं प्रायः बातें करते समय लोगों की आंखों में आंखें डाल कर मन ही मन में उन्हें आज्ञा देता रहता कि ऐसा नहीं, ऐसा करो. जब वे लगातार मेरे आदेशों के विरुद्ध चलते तो मैं खीज उठता...

अपने चेहरे को प्रयत्नपूर्वक गंभीर बना कर मैं चिंतक की-सी मुद्रा में आंगन में खेलते अपने छोटे भाई को देखने लगा. वह पड़ोस में रहने वाले अपने हम-उम्र साथी शामू के साथ आंगन का पलस्तर उखाड़ रहा था. वे दोनों अधिक-से-अधिक सीमेंट के टुकड़े

एकत्र करने का प्रयत्न कर रहे थे. एक-दूसरे के ढेरों की ओर देखते हुए वे कहने लगते—मेरा ढेर तुम से बड़ा है. इसी वाद-प्रतिवाद की स्थिति में अचानक सीमेंट का टुकड़ा उखाड़ते हुए विक्की की उंगली में कुछ चुभ गया. वह तुरंत हाथ खींच कर रोने लगा. फिर उंगली की ओर देख कर चुप हो गया.

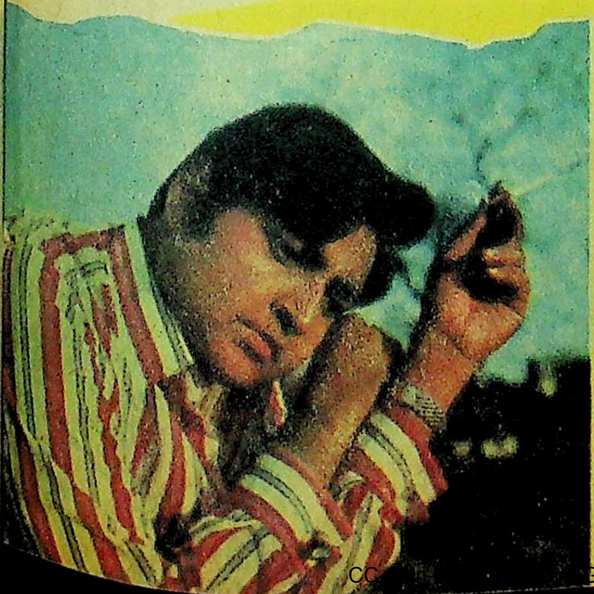
आंगन के दूसरी तरफ रसोई थी. मम्मी शाम के भोजन की तैयारियों में व्यस्त लगती थीं. अंगीठी पर रखे प्याज के तड़के की खुशबू मेरी भूख को जगाने में सहायक हो रही थी. विक्को और शामू को उनके खेल से रोकना मैंने उचित न समझा. अचानक मन में विचार आया, कितनी पुरानी हो गयी होगी यह बिल्डिंग! अब तो अनेक स्थानों पर टूट-फूट भी गयी है. कई दीवारें तड़क गयी हैं. रात को पास ही बने रेलवे स्टेशन पर कोई भी गाड़ी आते ही घर के सारे दरवाजे बजने लगते हैं. अचानक मुझे अपने घर के पुराने नौकर की बात याद आयी, जो कह रहा था कि आजादी से पहले यहां कचहरियां होती थीं...

* *

ठक्...ठक्...ठक्.... मेरी विचार-शृंखला भंग हो गयी. दोनों छोटे बच्चे दरवाजे की ओर देख रहे थे. तभी विक्की ने भाग कर दरवाजा खोल दिया. कोई बाहर से खटखटा रहा था. मैं भी यह देखने के लिए बढ़ा कि कौन आया है.

दरवाजा खुलने पर वहां काले-से रंग का एक लड़का खड़ा दिखायी दिया. नीले रंग का कोट पहने वह दोनों हाथ जोड़ कर मुझे नमस्ते कर रहा था. वह मुझे खस्ता हाल ही दिखायी दिया. कोट के भीतर से झलकता हुआ उसका कुर्त्ता काफी मेहनत से धोया होने के बावजूद घटिया-सा लग रहा था. पांवों में वह पुराने टाइप के जूते पहने था, जिनकी नोक ऊपर को उठी हुई थी. पैंट खाकी रंग की थी—सलवटों से युक्त होने पर भी उसमें क्रीज की झलक-सी उभरती थी ... मैंने सिर हिला कर उसके अभिवादन का उत्तर दे दिया. तभी

● आर. एन. प्रसाद



अचानक वह बोला—क्यों मुकेश! मुझे पहचान लिया न?

मैं उसके संबोधन पर आश्चर्यचकित-सा हो पलकें झपकाने लगा. फिर ध्यान से उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ा कर उसे पहचानने का प्रयत्न करने लगा. बोलते समय उसके काले-काले होठों के मध्य सफेद दांत बहुत अजीब लगे. वैसे भी अब उसके काले होठ चमक रहे थे. कालिमा में भी इतनी चमक आ सकती है, मैंने पहली बार अनुभव किया था. मैं अपनी स्मृति पर जोर डालने लगा. मुझे पहचानता हुआ न पा कर वह स्वयं ही बोल उठा—मैं, मंगल... कालका से. तुम्हारे घर आया करता था, पहचान लिया ना? मैंने तो तुम्हें देखते ही पहचान लिया था!

उसकी इन बातों से मुझे उसकी याद आ गयी. मैं जैसे उसके अभिवादन पर पुनः मुसकरा दिया. मुझे अब समझ में आया कि इतना खस्ताहाल-सा लड़का मुझे मेरे नाम से कैसे पुकार रहा है. फिर भी अभी मुझे वह सब अटपटा ही लग रहा था. बोला—अच्छा-अच्छा, तुम मंगल हो! आओ-आओ, भीतर आ जाओ.

मैं दरवाजे से एक ओर हट गया. वह अपने साथ अपना बिस्तर भी लाया था. क्या वह यहां रहने के लिए आया है? मुझे पुनः आश्चर्य हुआ. मैंने फिर पूछा—कब आये? काफी समय हो गया है न उस बात को, इसीलिए पहचान नहीं पा रहा था.

—सच, मैं भी आता हुआ इसी बात से डर रहा था कि कोई मुझे यहां पहचानेगा भी या नहीं!

वह भीतर आ गया था. वैसे एक बात उसके व्यक्तित्व से स्पष्ट परिलक्षित होती थी कि वह हर बात कहता हुआ मुसकराने का प्रयत्न करने लगता था और अपनी बात कह कर शालीनता से हंस-सा देता था. उसके सफेद दांत उस अवस्था में कुछ भले ही लगते थे. उसके बोलने का ढंग कुछ ऐसा था कि उसके कथन में शिष्टता, नम्रता और आत्मीयता की झलक मिलती थी.

मैंने उसे आंगन के एक ओर सामान रखने का निर्देश दिया और स्वयं रसोई के सामने पहुंच कर मम्मी को सूचना देने लगा—मंगल आया है, कालका वाला ...

—अच्छा!

वह काम छोड़ कर रसोई के दरवाजे तक ही पहुंची थीं कि मंगल ने आगे बढ़ कर उनके पांव छू लिये. मुझे अजीब-सा लगा. मम्मी भी कुछ पीछे हट गयीं.

—अरे-अरे, क्या करता है? ऐसे नहीं, भई ... वह अपने पांवों को मुक्त कराने का प्रयास करती हुई बोलीं. पांव छू कर मंगल सीधा खड़ा हो गया.

—अरे! कब आया तू?

—बस, अभी आ ही रहा हूं.

—घर ढूंढ़ने में तो मुश्किल नहीं हुई न तुझे?

—नहीं-नहीं, मदन ने मुझे पहले ही समझा दिया था, सो पूछता-पुछाता इधर ही निकल आया.

—अच्छा, तो फिर बैठ जा इधर.

मम्मी के निर्देश पर वह बाहर ही जमीन पर बैठ

गया. मम्मी उसके लिए चाय चढ़ाने में रत हो गयीं. विक्की और शामू अजनबी को देख कर उसके पास ही आ खड़े हुए थे. विक्की का जन्म कालका में ही हुआ था. इस बात का अचानक विचार आते ही मंगल ने अनुमान लगाया कि यह वहीं मुन्ना भी तो हो सकता है! उसने विक्की से कुछ पूछने से पहले जैसे थोड़ा सकुचाते हुए पूछा—क्या नाम है तेरा?

विक्की ने पहले तो उसकी ओर देखा. फिर अपनी फैली पुतलियां संकुचित करता हुआ-सा, धीरे से बोला—मिक्की. वह अभी अपने नाम का सही उच्चारण भी सीख न पाया था. उसके उत्तर से उत्साहित-सा हो कर मंगल उसे छेड़ने लगा—अरे, इतना बड़ा हो गया है तू!

—साथ में शरारती भी. सचमुच बड़ा तंग करता है, कभी-कभी . . .

मम्मी उसके सामने भी विक्की की प्रशंसा करने लगी थीं. विक्की थोड़ा हंस कर शरमा गया और शामू के साथ भाग गया. तभी मंगल ने पुनः मेरी ओर देखा और मम्मी को संबोधित करते हुए कहने लगा—ये भी बहुत छोटे थे तब. कभी हमारी भी याद आती थी आप लोगों को?

मम्मी प्रत्युत्तर में हंस दीं.

★ ★

मंगल और मम्मी की उसके पश्चात् भी काफी समय तक बातचीत होती रही. मैं लगभग खामोश रहा. पास खड़ा उसके चेहरे की ओर देखता रहा. वह काफी अटपटा लग रहा था, विशेष तौर पर सजाने-संवारने के प्रयत्न में लगभग बिगाड़े गये उसके बाल. बात करते-करते जब अचानक नम्रता प्रदर्शित करने के प्रयत्न में वह थोड़ा झुक जाता, तो मुझे लगता जैसे अंधेरे में कहीं उजाड़ जगह पर उगा कोई छोटा-सा पौधा तेज हवा में झुक-झुक कर पुनः सीधा खड़ा होने का प्रयत्न कर रहा हो. . . अचानक फिर कितनी ही सड़कें मेरे मस्तिष्क में घूमती हुई दिखायी दीं और साथ-साथ काले घेरे-सा पुलिस-स्टैंड. . . . मुझे बात-बात में अपनी हिप्नोटिज्म वाली प्रैक्टिस सूझने लगती. . . अनेक विचारों के प्रवाह-सी भागती हुई उन्हीं सड़कों पर उमड़ती भीड़ में, मंगल भी शायद खड़ा हो गया था. मुझे पुलिसमैन की भूमिका पुनः निभानी होगी. वही उन्माद फिर जाग आया था. किस बात का प्रयोग किया जाये इस पर? . . . हां, इसके मुंह से यह कहलवाना चाहिए कि यह किस प्रयोजन से आया है. . . . काफी समय हो गया, मगर वह और मम्मी और ही किस्म की बातें करते चले जा रहे थे. . .

कुछ समय पश्चात मेरा हृदय कुछ खिन्न हो गया और मैं वहां से उठ आया.

राजी और कुक्कू बाजार से सामान वगैरा ले कर लौट आये थे. राजी ने नमक की प्लास्टिक की थैली में, उंगली से छेद कर दिया था, जिससे आंगन में नमक गिरता जा रहा था. मैंने उसे हाथ से इशारा करके कहा—आंखें नहीं हैं क्या? देख तो, कितना नमक गिराती चली आ रही है!

राजी ने चौंक कर थैली की ओर देखा और उस छिद्र पर पुनः हाथ धर कर रसोई की ओर चली गयी. मंगल रसोई के बाहर ही बैठा था. मम्मी उसके सामने सहृदय बनने का प्रयत्न करती हुई बोलीं—चल, फिर क्या हो गया? थोड़ा-सा ही तो गिरा है!

मैं जानता था कि यह मम्मी की पुरानी आदत है कि जब भी कोई अतिथि आया होता है, वह अपने शिष्ट गुणों का अत्यधिक प्रदर्शन करने लगती हैं. मैंने मम्मी की बात का कोई उत्तर न दिया और पुनः अपने पढ़ने वाले कमरे की ओर चल दिया. मैंने अनुमान लगाया कि इसके पश्चात वह पूर्ववत् मेरे बारे में कहने लगेंगी कि यह बाजार से सौदा आदि लाने के लिए कभी नहीं जाता या फिर यह कि इसे किसी भी व्यावहारिक कोटि के कार्य में रुचि नहीं है. परंतु ऐसा कहने के तुरंत पश्चात वह कभी भी यह जोड़ना न भूलती थीं कि वैसे यह पढ़ाई आदि में बहुत होशियार है और फिर मेरी मामूली सफलताओं का हृदयग्राही चित्रण प्रारंभ हो जाता.

मैं अपने कमरे में आ कर बैठ गया. सामने लगा हुआ हिप्नोटिज्म वाला काला घेरा जैसे मुझे घर की मामूली बोरियत भरी घटनाओं के समक्ष एक अत्यंत महत्व वाली बात लग रहा था.

अचानक उस काले घेरे को देखते हुए मैंने काले मंगल की कल्पना करनी प्रारंभ कर दी. मुझे उसके कालका वाले स्वरूप का स्मरण हो आया. वह और उसका बाप, दोनों रेलवे कर्मचारियों के कंडम कोट तथा पैंटों को ठीक-ठाक करके पहना करते थे. यह बात और थी कि वे लंबे-लंबे नीले कोट उनके शरीर पर पूरी तरह फिट कभी नहीं आ पाते थे. मंगल का बाप हमारे मोहल्ले में भंगी का काम करता था. परंतु उसके बहुत अधिक झगड़ालू होने के कारण मोहल्ले वाले उससे काम लेना ज्यादा पसंद नहीं करते थे. इस कारण कभी उसकी बहू और कभी मंगल वहां काम करने आते थे. वैसे दोपहर के खाली समय में गली के नुक्कड़ पर बैठ कर बीड़ी फूंकते हुए मैंने उसे प्रायः देखा था. उन दिनों मैं चौथी या पांचवीं क्लास में था.

चूंकि अब उन्होंने भंगी का पेशा अख्तियार कर लिया था, अतः सभी उन्हें वैसा ही कहते थे. मगर मंगल का बाप कुछ और ही बताता था. उसके अनुसार वे लोग जात के भंगी नहीं थे, बल्कि उन लोगों की जाति में से थे, जो गावों में कुओं से पानी भर कर लोगों के घर पहुंचाया करते थे. उनके ऐसा पेशा अपनाने का एक खास कारण था. मंगल का बाप बताया करता कि उसके परदादा ने एक बार अपने घर किसी भंगी को पनाह दे दी थी. वह उन दिनों बीमार था. उसके घर उसकी देखभाल करने को कोई न था. गांव के लोगों ने इस बात पर एतराज करके उनसे पानी भरवाना बंद कर दिया. कोई दूसरा नेक काम करने की भी उनको इजाजत न मिली. मजबूरन उन्हें वह धंधा अपनाना पड़ा. वैसे यह बात और थी कि उसकी कहानी पर कोई भी विश्वास नहीं करता था. फिर भी उसके परिवार के प्रति हमारे घर की कुछ अधिक सहानुभूति होने का कारण था

था कि वह जो गांव अपना बताता था, वह हमारे डैडी के पुराने गांव से अधिक दूर न था.

मंगल के बाप का नाम तो मुझे अब याद नहीं रहा; पर इतना अवश्य याद है कि हम लोग उसे 'उल्लू का पट्ठा' कह कर चिढ़ाया करते थे. इस शब्द को प्रयुक्त करने की उसकी बहुत आदत थी. अतः हमने भी उसे उसी नाम से पुकारना प्रारंभ कर दिया था. उसे छेड़ने का काम सदा मेरे ही जिम्मे लगाया जाता, क्योंकि अगर मैं उसे कुछ कह भी देता, तो वह भी मुसकरा कर मुझे 'उल्लू का पट्ठा' कहने लगता.

मुझे याद है जब मुझे पहली बार इस बात का पता लगा था कि मंगल का बाप शराब भी पीता है. बात यूं हुई कि उस दिन गली के उसी नुक्कड़ पर उसने मंगल को अचानक पकड़ लिया और हरामी-सूअर आदि की ही नहीं, मां-बहन आदि की गालियां देते हुए उसे पीटने लगा. वह बीच-बीच में यह भी कहे जाता था—बोल साले, फिर उठायेगा बिना पूछे? वहां बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये थे. बड़ी कठनाई से उन्होंने मंगल को उसके चंगुल से छुड़ाया था. मैं इसके बाद भी वहां काफी देर तक खड़ा रहा. बाद में मैंने सुना, कुछ लोग कह रहे थे—साला, पी कर चला आता है यहां गुंडागर्दी करने. . . ! मैं यह सुन कर भागा-भागा घर आया था और रसोई में पहुंचने से पहले ही जैसे जोश में बोलने लगा था —मम्मी, आज मंगल की खूब पिटाई हुई. . .

परंतु फिर रसोई तक पहुंचते-पहुंचते ठिठक गया. दहलीज पर मंगल बैठा सिसक रहा था. मम्मी उसे ढाढ़स बंधा रही थीं. मैं झेंप-सा गया. मुझे लगा था, जैसे इस प्रकार जोश में आ कर बोलते हुए मैंने कोई गलती कर दी है. और सचमुच कई दिनों तक मुझे इस बात का अफसोस भी रहा था. मुझे मंगल के बाप पर बेतहाशा गुस्सा आया था. उस दिन के बाद मैं मंगल के बाप से बहुत डरने लगा था. उसके पास फटकता भी नहीं था. कभी-कभी वह घर आ कर भी कहता—क्या बात है, काका जी, अब कभी खेलने नहीं आते?. . . . लेकिन मैं उसकी बात का कोई जवाब तक न देता. कई दिनों बाद मुझे मंगल की पिटाई का कारण भी पता लग गया था. मंगल को नवीं की फीस देनी थी, इसलिए उसने बिना पूछे बाप के पैसे उठा कर स्कूल में दे दिये थे.

मम्मी के अनुसार मंगल बहुत भला लड़का था. वह यथासमय उसकी सहायता करती रहती थीं. कभी स्कूल की फीस के लिए पैसे एडवांस दे देतीं, कभी खाना न खा कर आने पर घर से दो रोटियों पर अचार धर कर उसे दे देतीं. बदले में मंगल भी कभी-कभी आंगन के अलावा कमरों की सफाई कर जाता, या कपड़ों पर प्रेस करने के लिए जिद करता. उसके कपड़े प्रेस करते समय, मुझे याद है, मम्मी उसी कमरे में जा कर बैठ जातीं और कभी बड़े-से थाल में दाल के कंकर वगैरा चुनती रहतीं, कभी आधा काढ़ा गया मेजपोश काढ़ती रहतीं.

मम्मी प्रायः उनके घर की दयनीय स्थिति पर करुणार्द्र हो उठती थीं. वैसे मंगल की मां मुझे कभी अच्छी नहीं लगी, क्योंकि वह प्रायः गंदे कपड़े पहने रहती और मम्मी के पास बैठ कर अकसर रोने लग जाती. वैसे उस समय उन लोगों की अवस्था का वास्तविक मूल्यांकन न कर पाने पर भी मुझे यह एहसास तो हो ही जाता था कि वे काफी दुखी हैं. उनके दुख का कारण दो जवान लड़कियां थीं. एक की शादी हो चुकी थी, पर वह ससुराल में पड़ने वाली रोजाना की मार से दुखी हो कर घर बैठी थी. दूसरी लड़की की अभी तक शादी ही नहीं हो पायी थी. ऊपर से मंगल का बाप सारी कमाई शराब और बीड़ियों में फूंक देता था. वैसे मुझे उस समय यह कभी समझ न आता था कि अगर लड़की ससुराल से घर आ गयी है तो इन्हें दुख क्यों होता है. मम्मी से पूछता तो वह जवाब देतीं—तुझे क्या पता? ब्याही लड़की के घर बैठने से बड़ा दुख मां-बाप के लिए और क्या हो सकता है?

★ ★

मेरे पिताजी उन दिनों किसी बैंक में हेडक्लर्क थे. उनके परिवार की ऐसी स्थिति देख कर उन्होंने मंगल के बड़े भाई बाली को अपनी सिफारिश से चपरासी लगवा दिया था. मुझे याद है कि पिताजी द्वारा यह काम करने पर मंगल की मां हमेशा उनके निकट आते ही उन्हें आशीषें देने लग जाती थी—राम भला करे! बड़े यजमान बनो! सारे सहर में आपजी का नाम होवे. दूधों-पूतों फलो. . . . आदि-आदि

वैसे मंगल के घर में सबसे अधिक अच्छा लगने वाला प्राणी मेरे लिए मंगल ही था. मंगल से संबंधित अनेक घटनाएं मुझे आज भी याद हैं. कभी-कभी वह हमें पड़ोस में किसी घर के पिछवाड़े लगे अंजीर के पेड़ के पास ले जाता और पेड़ पर चढ़ कर पकी अंजीरें तोड़ कर हमारी तरफ फेंकता रहता. चाहे ऐसा करने से उसे भी और हमें भी पड़ोसियों से खूब झिड़कियां सुननी पड़ती थीं, फिर भी इस बात में जो आनंद था, वह हमें प्रतिदिन वैसा करने को प्रेरित करता रहता था. इसके अतिरिक्त मंगल दूसरी गली के बाहर स्थित 'टॉकी' में भी काम करता था. अतः वहां पड़ी कटी-फटी रीलों की छोटी-छोटी तस्वीरें बटोर लाता और हमें दे देता. सचमुच वह बड़ी प्रसन्नता की घड़ी होती थी, जब हम एक-दूसरे की तस्वीरें देख कर घोषणा करते कि यह दिलीपकुमार है, जब कि कोई दूसरा उसके प्राण होने का दावा करता. कभी-कभी हम शर्त आदि लगाने की स्थिति पर पहुंच जाते. ऐसे समय पर मंगल ही हमारे झगड़े में सरपंच का कार्य किया करता. इन छोटी-छोटी बातों के अतिरिक्त खाली समय में उसका हमारे खेलों में रैफरी बनना, कुश्ती के दाव-पेंच सिखाते हुए लंगड़ी मारने के महत्व को स्पष्ट करना आदि उसके और हमारे प्रिय खेल हुआ करते थे. . .

मैं मंगल के बारे में सोचते-सोचते उसी शहर के कालीमाई के मेले में (अचानक न जाने कैसे) पहुंच गया. वैसे इस मेले का मंगल से कोई संबंध नहीं है, फिर भी मैं अपने विस्मृत विचारों के उसी प्रवाह को दोबारा पा लेना चाह रहा था. आखिर कुछ समय

पश्चात थोड़ी सफलता हुई, जब काली माई के काले मुंह में मंगल का चेहरा उभरना प्रारंभ हो गया. मैंने अपने अतीत की ओर पुनः मुड़ना चाहा, परंतु जैसे रस में व्याघात-सा पड़ गया था. कुर्सी पर बैठे-बैठे अचानक मुझे थकान का अनुभव हुआ. मैं थोड़ा हिला, तभी मुझे प्रतीत हुआ जैसे मेरा पैर सुन्न हो गया है. मैं पैर को हिलाने का प्रयत्न-सा करता हुआ पुनः हिप्नोटिज्म के काले घेरे की ओर देखने लगा.

* *

मैं अभी खाना खाने के लिए रसोई की ओर जाने की बात सोच ही रहा था कि मंगल आ गया.

––क्यों मुकेश, रोटी नहीं खानी आज? मांजी बुला रही हैं.

उसका मुझे पुनः मुकेश कह कर बुलाना इस बार इतना, तो नहीं अखरा, पर मम्मी को मांजी कहना. . पता नहीं क्यों, उसके संबोधनों पर मुझे इतनी आपत्ति क्यों हो रही थी. खैर, इतना मैं अवश्य समझ गया कि वह यह सब कुछ उसी पुरानी आत्मीयता के संबंध को बनाये रखने के लिए ही कह रहा है. मैंने उत्तर देने के पूर्व उस की ओर देखा. वह मुसकरा रहा था. मैंने उत्तर दे दिया––बस, अभी सोच ही रहा था कि उठा जाये. भाई वगैरा खा चुके हैं क्या?

––हां, उन्होंने तो खा ली है. बस मांजी और बाऊ जी ही रह गये हैं.

––यहां आ कर कुछ अजीब-सा तो नहीं लग रहा तुम्हें? मैंने वैसे ही उसे कुरेदते हुए पूछा.

––नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं लगा. सच, याद है तुम्हें, जब हम उधर अंजीरें तोड़-तोड़ कर खाया करते थे?. . .

वह बाल्यकाल की यादों में जाने के लिए बहुत उत्सुक प्रतीत हो रहा था. मैंने भी उसे निराश नहीं किया. हम दोनों कालका की बातें करते हुए रसोई की ओर चल दिये.

डैडी रसोई में बैठे थे. शायद मम्मी के साथ मंगल की ही बातें चल रही थीं. मैं भीतर चला गया. मम्मी ने मंगल को, जो रसोई के बाहर ही खड़ा रह गया था, भीतर आ जाने के लिए कहा.

डैडी ने भी उनकी बात का समर्थन किया. मंगल सकुचाता-सा रसोई के अंदर आ गया और एक कोने में दुबक कर बैठ गया. डैडी उससे कह रहे थे––मैंने फैक्ट्री वालों को फोन कर दिया है. वे कह रहे हैं कि कल से ही काम शुरू कर दो तुम. मैं चपरासी को भेज दूंगा. फैक्ट्री दिखा लायेगा तुम्हें. . .

मैं समझ गया. मंगल के लिए नौकरी का प्रबंध किया जा रहा है. डैडी अब बैंक में अकाउंटेंट हो गये थे. इस कारण फैक्ट्री वालों ने उनकी बात तुरंत मान ली थी. वैसे उस समय मैं यह भी सोच रहा था कि मंगल को कितना आदर दे रहे हैं ये लोग! आते ही रसोई के भीतर भी बुला लिया. क्या यह सब करने पर मंगल इस परिवार में एडजस्ट हो जायेगा?

खाना खाते हुए मम्मी ने मुझे उसके बारे में सभी बातें बता दीं, कि कैसे मंगल का अपने बाप से पैसों के लिए झगड़ा हो गया था और कैसे वह उससे झगड़ कर यहां आया है. वह कह रही थीं––सचमुच, किस्मत खराब है इस छोकरे की! मेहनती तो है, पर ग्रह ही उलटे पड़ते जा रहे हैं. मैंने तेरे डैडी से कह कर इसकी नौकरी की बात पक्की करवा दी है. मजदूरी करके पेट पालता रहेगा यह भी. . .वह जरा रुकीं. रोटी आग पर सेंकते हुए थोड़ी-सी भाप उनके हाथ को लग गयी थी. हाथ को झटक कर उन्होंने फिर कहना शुरू किया––फैक्ट्री वाले एक सौ पच्चीस माहवार के लिए मान गये हैं. औरों को तो एक सौ दस ही मिलता है. तेरे डैडी के कारण ही. . .

बात भटकते देख कर मैंने बीच में ही पूछ लिया–अब यहीं रहेगा क्या यह?

––बेसहारा है बेचारा. अभी कुछ दिन वह पास वाले गुसलखाने के पीछे टूटे-फूटे में छोटे कमरे में रहेगा. कुछ देर बाद अपना कमरा किराये पर ले लेगा.

हमारी यह बिल्डिंग पुरानी होते हुए भी काफी बड़ी थी. पहले गुसलखाने के साथ वहां छोटा-सा स्टोर बनवा दिया गया था. पर अब वह काफी टूट-फूट चुका था. अतः वहां एक टूटी हुई चारपाई के सिवा कुछ भी नहीं था.

तो मंगल अब यहीं रहेगा. मैं सोच रहा था कि क्या उस पर इतना प्रेम प्रदर्शित करना उचित है? मैं भी मम्मी-डैडी की तरह जाति आदि की बात तो स्वीकार नहीं करता था, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे मेरे और मंगल के बीच कोई पतली-सी दीवार तन चुकी है. जैसे अब वह मेरा मित्र नहीं हो सकता. शायद इस प्रकार की अनुभूति का कारण उसके-मेरे मानसिक स्तरों में उत्पन्न परिवर्तन ही था. मेरे स्तर का निर्माण पिछले कई वर्षों में बहुत तीव्र गति से हुआ था. तो फिर मम्मी-डैडी. . .मेरी बात का यह अर्थ भी हो सकता है कि उनका स्तर मेरे स्तर से निम्न है! तो फिर क्या यह मान लिया जाये कि उनके अंतःकरण कोमल हैं? यह बात मम्मी पर तो कुछ लागू हो भी सकती थी, पर डैडी पर. . .शायद उन्होंने इस प्रकार का व्यवहार इस कारण से किया हो कि उनका बचपन भी इसी प्रकार गरीबी में गुजरा था. अथवा इसका कारण यह भी हो सकता था कि आजादी मिलने से पहले उन्होंने हरिजनों के साथ मिल कर किसी आंदोलन में भाग लिया था.

खाना खा कर पानी का पूरा भरा हुआ गिलास मैं बिना किसी आवश्यकता के पी गया और उठ कर बाहर निकल आया. आंगन में कुछ राहत-सी महसूस हुई. . .यह आजकल मुझे क्या हो रहा है? मैं इतना आत्मकेंद्रित क्यों होता जा रहा हूं? मुझे अपने आपको इस स्थिति से बचाना होगा. . .कमरों के भीतर बच्चे शोर मचा रहे थे. . .भीतर जाने के लिए मेरा दिल न माना. अतः कुछ समय के लिए घूम आने का निर्णय ले कर मैं दरवाजे से बाहर निकल गया. . .वैसी ही सड़क. . .वैसी ही अनगिनत सड़कें. . .मैं हंस दिया

भीतर-ही-भीतर. . .ठंडक की कल्पना मुझे सुखद प्रतीत हो रही थी. मुझे आनंद-सा आने लगा था. . .सामने से एक ट्रक आ रहा था. मैं किनारे हो लिया. ट्रक तेजी से मेरे पास से गुजर गया. धूल उड़ी और ट्यूब-लाइटों की रोशनी में रेखाओं के समान चमकने लगी. अचानक धूल की रेखाओं को देखते हुए मुझे 'ऐसींपटोट्स' की याद आ गयी. मैथमेटिक्स के प्रोफेसर ने मुझे तीसरी बार उसे एक्सप्लेन करके दिखाया था—एसींपटोट इज दैट पैरेलल लाइन, विच कट्स द कर्व एट इनफिनिटी. . . इनफिनिटी यानी अनंत. . .यानी कहीं भी न मिल पाने वाली रेखा. मिल भी कैसे सकेगी?. . .समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलतीं. अचानक मुझे याद आया जैसे मंगल भी तो एक ऐसी ही पैरेलल रेखा है—हमारे फैमिली कर्व के लिए. . .कैसे एडजस्टमेंट करेगा वह? कैसे? कैसे?. . .

★ ★

मंगल ने फैक्ट्री जाना प्रारंभ कर दिया था. इसके साथ उसकी दिनचर्या में भी काफी परिवर्तन हुआ था. अब वह सुबह पांच बजे उठता था, और मम्मी के जागने से पहले ही अंगीठी सुलगा देता था.

वैसे मंगल एहसान मानने वाला लड़का सिद्ध हुआ था. उसके लिए यह एक बहुत बड़ी बात थी कि हम लोगों ने उसकी कठिनाई के समय मदद की थी. वह इसे बहुत बड़ी बात मान कर हर प्रकार से यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा था कि वह सचमुच उस एहसान के योग्य था. सहायता का पात्र बन कर अब वह भी हर प्रकार से हमारे परिवार की सहायता करने का प्रयत्न करने लगा. हमारे सोने के कमरे के अतिरिक्त वह साढ़े छह बजे तक सभी कमरों तथा आंगन में झाड़ू लगा देता. इसके पश्चात वह नहाने आदि के कार्यों में लग जाता और अपना पुराना-सा स्टोव जला कर अपनी चाय का पानी उबलने के लिए धर देता. अब तक उसने अपने खाने-पीने का इंतजाम अपने कमरे में ही कर लिया था. अपने लिए आटा और दालें वह बाजार से खुद ले आया था. यह बात और थी कि मम्मी उसके अपने बाप से दूर बैठे होने के कारण करुणार्द्र हो उठती थीं और उसे शाम को सब्जी, अचार तथा छाछ आदि प्रायः भिजवा देती थीं.

साढ़े आठ बजे वह फैक्ट्री चला जाता तथा शाम को चार या साढ़े चार बजे लौट आता. एक बात और भी थी. फैक्ट्री घर से लगभग तीन मील की दूरी पर शहर से बिल्कुल बाहर स्थित थी. मंगल प्रतिदिन वहां पैदल ही जाता, पैदल ही आता था. यही कारण था कि जब वह शाम को वापस लौटता तो बहुत थका होता था. इसके बावजूद उसने सदा अपनी थकान को छिपाने का ही यत्न किया था.

फैक्ट्री से आते ही वह मम्मी के पास रसोई के बाहर जा बैठता. मम्मी उसे प्रायः चाय बना कर वहीं दे दिया करती थीं.

चाय के पश्चात वह प्रतिदिन मम्मी से पूछने लगता कि अगर बाजार से कुछ चीज ले कर आनी हो तो उसे बता दिया जाये. उसके रोज-रोज पूछने के कारण अब मम्मी भी दिन भर कभी बाजार न जातीं और न ही राजी या कुक्कू को भेजतीं.

मंगल रात के खाने की तैयारियां प्रायः छह या साढ़े छह बजे से ही प्रारंभ करता था. अगर उसे बीच में कुछ समय मिलता, तो वह बच्चों के साथ खेलता रहता.

पिछले कुछ महीनों से मुझे यह आदत-सी पड़ गयी थी कि मैं रात के समय उधर आंगन में काफी समय तक घूमता रहता था और कुछ-न-कुछ सोचता रहता था. अब भी उसी आदत के कारण मैं उधर चला जाता तो गुसलखाने के पास मंगल के 'कमरे' में बत्ती जलती दिखायी दे जाती. मुझे बड़ी कोफ्त होती. परंतु फिर मैं उस भावना को दूर करके मंगल के 'कमरे' के दरवाजे पर जा खड़ा होता और उसके साथ कोई बात छेड़ लेता.

मंगल मुझसे सदा हंस कर मिलता और बड़ी ही आत्मीयता से मेरे साथ बातें करता. हमारे वार्त्तालाप के विषय प्रायः या तो बचपन की घटनाओं से संबंधित होते या मंगल के बाप के व्यवहार से. कई बार मैं मंगल से उसकी पढ़ाई के बारे में पूछने लगता, जो उसने नवीं में फेल होने के कारण छोड़ दी थी. मंगल अगर कभी मुझसे कुछ पूछता तो हिप्नोटिज्म के बारे में या किताबी ज्ञान के बारे में. उसे अध्ययन के विषय में इतनी बात जान कर ही संतुष्टि हो जाया करती थी कि बड़ी क्लासों की पढ़ाई किताबें मोटी होने के कारण काफी कठिन होती है.

★ ★

अचानक घनिष्ठता के इन आयामों में आकस्मिक-से परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए. इसका कारण शायद यही था कि मंगल अपने आपको इतने प्रयत्नों के बावजूद इस परिवार में एडजस्ट नहीं कर पाया था. उसके अपने प्रयत्न उसे घर का नौकर अधिक बना रहे थे और घर का सदस्य कुछ कम. और फिर आत्मीयता के संबंधों के लिए जिन एकताओं और समानताओं की आवश्यकता होती है, वे उसके स्तर पर अनुपलब्ध थीं. वह अपने प्रयत्नों के कारण उस स्तर तक एडजस्ट अवश्य हो गया था, जहां उसका स्तर परिवार से कुछ नीचा था, परंतु परिवार के सभी सदस्यों से आत्मीयता का व्यवहार प्राप्त करते हुए वह उस स्तर पर रहना नहीं चाहता था. अतः उसकी मनोवृत्ति अधिकार-प्राप्ति की ओर उन्मुख होती चली गयी. उसे घर में टिके लगभग दस दिन हो चुके थे. अतः उसने उचित अवसर पा कर उस प्रकार की चेष्टाएं आरंभ कर दीं. परंतु सारा परिवार उसे स्वीकार कर पाने की स्थिति में नहीं था.

मैं पहले की तरह उस दिन भी उसके कमरे की दहलीज पर जा खड़ा हुआ. पूर्ववत् वार्तालाप प्रारंभ हो गया. मैं उस दिन की भांति पिछले दिनों में भी जब उसके साथ बात करता था तो जानबूझ उसे किसी दार्शनिक विषय पर घसीट कर ले जाता था, जहां उसका स्तर उसे कुछ भी समझने में असमर्थ बना देता था. ऐसे अवसरों पर वह प्रायः रटी-रटायी कुछ उक्तियां बोल दिया करता था, जैसे सुबह का भूला

अगर शाम को घर लौट आये तो भूला नहीं कहाता, या जिस तन लागे सोई तन जाने. . . आदि. जब वह इस प्रकार की बातें चिंतकों की-सी मुद्रा में सिर हिला-हिला कर कहता तो मैं उसका आनंद लेने के साथ-साथ इन उक्तियों का कुछ उदाहरण दे कर प्रतिवाद कर देता, जिसे स्वीकार करने के लिए वह तैयार न होता.

तो उस दिन भी जब हमारी बातचीत इस चरम सीमा पर आ कर खड़ी हो गयी, अचानक वह मेरी आशा के विपरीत खिसिया कर पहले दिनों वाला वाक्य नहीं बोला. उसे इस बात का तो पूरी तरह एहसास था ही कि मैं मन-ही-मन उसका उपहास उड़ा रहा हूं, अतः उसने इसका प्रतिवाद करने की सोच ली. इतने दिनों के इस वार्त्तालाप का अर्थ उसने आत्मीयता के शब्द में करने की भूल कर ली थी, अतः वह मेरी बात का उत्तर देने की बात को अपने अधिकारों में शामिल करने का प्रयत्न कर रहा था. उसने कुछ देर सोचा, फिर अचानक बोल दिया—बस मुकेश, आगे से मेरा मखौल मत उड़ाया कर. मुझे पता है तू बहुत गियानी हो गया है. मुझे भी पता है इन सारी बातों का और यह भी पता है कि तू कितना जानता है. उसके बोलने के ढंग में दुख की ध्वनि अधिक थी और व्यंग्य की कम. परंतु मुझे उसकी बात में व्यंग्य ही अधिक लगा. उसको इस प्रकार बोलते हुए पा कर अचानक मुझे लगा जैसे उसने अपनी सीमा का अतिक्रमण करके यह बात कही है. आखिर वह हम लोगों पर ही तो आश्रित है!

उस दिन के बाद से मैंने उससे बातें करना काफी कम कर दिया था. केवल काम की बात ही उससे कहता. वह सचमुच में ही 'एसींपटोट' बनता जा रहा था. या तो वह ही समानांतर रेखा हो गया था या फिर मैं कर्व की तरह बहुत पहले मुड़ गया था. . . तभी मुझे याद आया कि उसकी नियति अपने परिवार के साथ भी एसींपटोट वाली ही थी. वैसे खाना खाने के लिए बुलाने वह अब भी आता था. परंतु उसका आना जैसे मुझे खलने लगा था. . . कुछ दिनों पश्चात अचानक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि वह मेरे मन की बात को भांप गया हो, परंतु उसने कभी मेरे सामने उस दिन की बात के लिए अफसोस जाहिर नहीं किया.

जिस दिन मेरे और उसके बीच यह घटना घटी थी, उससे अगले दिन ही जब मैं मम्मी और डैडी के दोपहर के भोजन के समय बैठा हुआ था, मुझे पता लगा कि ठीक मेरे जैसी प्रतिक्रियाएं उन पर भी हुई थीं.

मम्मी बतला रही थीं कि अब मंगल जैसे यह समझने लगा है कि वह किसी बहुत ऊंची जाति से संबंधित है. आज सुबह ही अचानक उसने मम्मी से कहा कि उसने हमारे नौकर और बैंक के चपरासी के बीच होने वाली बातें सुनी हैं. मंगल के अनुसार हमारा नौकर चपरासी से कह रहा था कि साहब ने घर में एक चमार जैसी शक्ल वाला नौकर और रख लिया है! इसके अतिरिक्त एक बात और भी उसने कही थी कि नया नौकर उसकी रोजी पर भी लात मारना चाहता है. मंगल ने यह बात सुना कर मम्मी के आगे यह टिप्पणी भी जोड़ दी थी कि नौकर ने इस तरह की बात आज तो उसके लिए ही कही थी, कल हमारे किसी रिश्तेदार के लिए भी कह सकता है.

मम्मी की बात का डैडी ने (पूर्ववत्) समर्थन किया और प्रश्न उठाया कि आखिर मंगल और कितने दिन तक वहीं रहेगा. आखिर तय हुआ कि अब उसे कह दिया जाये कि वह अपना कमरा कहीं और ले ले.

सो, शाम को ज्यों ही आ कर वह मम्मी के पास रसोई के बाहर बैठा तो मम्मी ने बातों-ही-बातों में उसे अपना मकान लेने के लिए कह दिया. पहले तो वह मम्मी की बात सुन कर उनके चेहरे की ओर देखता रह गया. फिर उसने धीरे से बताया, फैक्ट्री वाले कह रहे थे, अगर मैं चाहूं तो फैक्ट्री के गोदामों के सामने खाली पड़े चौकीदार के कमरे में रह सकता हूं, क्योंकि इससे उनके गोदामों की रखवाली भी होती रहेगी.

—तो फिर चला. . . क्यों नहीं जाता वहां? मम्मी ने कह ही दिया.

—पर, इससे वे मेरे ऊपर एक और जिम्मेदारी डाल रहे हैं. अगर गोदाम से कुछ गायब हो गया, तो मेरा नाम लगा दिया करेंगे. . . वह कह रहा था.

—खैर, चाहे जो भी हो, अब अपना कमरा ढूंढ़ना शुरू कर दे.

खैर, उस दिन तो वह बात इस तरह आयी-गयी हो गयी, पर अगले दिन जैसे ही वह फिर फैक्ट्री से लौटा, मम्मी ने फिर टोक दिया—आज ढूंढ़ा था कहीं कमरा फिर?

—भला आप खुद ही सोचें, मेरे पास कमरे ढूंढ़ने को टैम बचता ही कहां है! फैक्ट्री से थक-हार कर वापस आता हूं, सो घूमने को जी नहीं करता. . .

मंगल अपनी तरफ से तो पूरी आत्मीयता के साथ मजबूरी जताने की कोशिश कर रहा था, पर मम्मी कुछ और भी चिढ़ गयीं. बोलीं—फैक्ट्री से थका-हारा आता है तो अपने लिए! हम पर क्या एहसान जताता है? मंगल ने उस बात को सुना, सोचा, परखा और फिर बिना चाय की प्रतीक्षा किये ही वहां से उठ कर अपने कमरे में चला गया.

★ ★

इस प्रकार की घटने वाली इन कुछ घटनाओं के संकेत पा कर मंगल भी समझने लगा कि अब उसे यहां नहीं रहना चाहिए. उसने उस दिन के पश्चात शहर में कमरा ढूंढ़ने का कार्य प्रारंभ कर दिया. परंतु इस बात के आड़े अनेक बातें आ जाती थीं, जैसे कि वह अभी तक कुंआरा था, या फिर कमरे की कीमत इतनी होती कि किराया देना उसके वश की बात न होती थी. फिर शहर में उसके चाल-चलन की गारंटी देने वाला कोई न था. और फिर ऊपर से उसकी नीची जाति. . . .

मम्मी के साथ होने वाली उस दिन की झड़प के पश्चात अगले ही दिन एक और घटना भी हो गयी, जिसने मंगल को इस घर की आत्मीयता से और भी परे हटा दिया. उस दिन मेरे बड़े भाई साहब, जिन्होंने पिछले

सालही सर्विस जॉयन की थी, दो-तीन दिन की लगातार सरकारी छुट्टियां होने के कारण घर मिलने के लिए आ गये. राजो और कुक्कू को उनके आने का ऐसा चाव पढ़ा कि वे दोनों उन्हीं के आसपास मंडराते फिरते रहे. उस दिन उन्होंने मंगल के साथ बाजार जाने से भी न कर दी.

खैर, उस दिन की बात तो आकस्मिक भी हो सकती थी. परंतु राजी, कुक्कू और विक्की का यह व्यवहार अगले दिन भी जारी रहा और उसके अगले दिन भी. मंगल, एडजस्ट होने का शायद अंतिम प्रयत्न करना चाह रहा था. उसने मेरे सामने अचानक मम्मी से कह दिया--क्या बात है, मांजी, अब तो बच्चे भी मेरे साथ खेलने नहीं आते?

सचमुच उस दिन अचानक मुझे न जाने क्यों लगा जैसे कि उसके इन शब्दों में अपार व्यथा भरी है. यदि करुणा उपजाने में इन शब्दों के अतिरिक्त उसमें कोई अन्य कमी रह गयी थी तो वह यह कि बात कहते-कहते उसकी आंखें भर नहीं आयी थीं.

परंतु मम्मी पर न जाने क्यों, इन शब्दों का प्रभाव मेरे विचारों के पूर्णतया विपरीत पड़ा. इस प्रभाव को उन्होंने उसके समक्ष तो प्रकट नहीं किया, परंतु उसके जाते ही वह मुझसे कहने लगीं--- देख लिया न मुकेश, अब यह तेरे भाई साहब से भी जलने लगा है.

कुछ क्षणों के लिए मैंने मम्मी के शब्दों को तौला, तभी लगा, जैसे मम्मी भी इस विषय में काफी सीमा तक ठीक ही थीं. सचमुच सुबह की बुझी अंगीठी में प्रत्यक्ष तौर तर तो राख ही बची हुई दिखायी देती थी, परंतु भीतर एक छोटी-सी चिंगारी अभी शेष थी--आश्चर्य होता है, मंगल की स्थिति. वैसी ही तो हो गयी थी. उस छोटे-से स्फुलिंग की उष्णता को छिपाये हुए उसकी आत्मीयता ने जैसे गिड़गिड़ा कर अपने तेजस रूप के आह्वान का निश्चय किया, परंतु वह जा गिरा किसी और के शरीर पर. जलन हुई, मम्मी और मंगल के मध्य उदासीन युद्ध का नाटक खेला जाने लगा. एक छोर पर मम्मी खड़ी थीं, दूसरे छोर पर मंगल. दोनों एक-दूसरे की प्रतिक्रियाओं को अपने-अपने स्तर पर समझने का प्रयत्न कर रहे थे और मैं दोनों के मध्य अनिश्चित मनस लिये खड़ा था.

घर में घटने वाली इन सभी घटनाओं का मंगल पर क्या प्रभाव पड़ रहा था, मैं पूर्णतया जान न पाया. इस पर भी मंगल इन प्रभावों को अपने व्यवहार से पूर्णतया छिपा न पा रहा था. अब वह प्राय: खोया-खोया-सा रहता. फैक्ट्री से लौट कर मम्मी के पास चाय के लिए न बैठता. बस, उनसे बाजार से कुछ लाने के लिए पूछ कर शीघ्रता से अपने कमरे में चला जाता. कई वार उसका जी रात का खाना पकाने के लिए भी न करता. बस चाय बना लेता और सो रहता.

मम्मी के व्यवहार में भी इन घटनाओं के कारण कुछ परिवर्तन परिलक्षित हुए. अब वह बिना बात कई वार हम पर खीझने लगती थीं. कई बार हमारे कामों में वैसे ही गलतियां निकालने लगतीं.

इसके अतिरिक्त एक बात जो सबके व्यवहार में दृष्टिगोचर हो रही थी, वह यह थी कि अगर हमारे आपस में बातें करते हुए मंगल अचानक सामने दिखायी दे जाता, तो सभी एक-दूसरे से खिंचने लगते.

* *

बड़े भाई साहब के छुट्टियां काट कर पुन: सर्विस पर जाने के ठीक तीन दिन पश्चात अचानक मंगल ने आ कर मम्मी को बताया कि उसे कहीं शहर में ही कमरा मिल गया है.

उसकी बात सुन कर न केवल मम्मी को, बल्कि हम सब को राहत-सी महसूस हुई. मम्मी के मुंह से केवल इतना निकला--कहां?

--उधर ही, फैक्ट्री एरिया में.

मम्मी ने और कुछ पूछना ठीक न समझा. वह कुछ देर और वहीं खड़ा रहा, फिर बोला--आज ही सामान ले जाऊं अपना?

--जैसे तेरी मर्जी में आये! मम्मी ने गोलमोल-सा उत्तर दे दिया.

शीघ्र ही इस बात की खबर न केवल हम सब बल्कि नौकर को भी हो गयी. यह बात सुनते ही वह पहले थोड़ा चौंका, फिर धीरे से मुसकराया, फिर आधे मांजे हुए हाथ के बरतन को जोर-जोर से रगड़ने लगा.

थोड़ी देर में ही मंगल सामान बांध कर घर से बाहर निकल गया.

* *

मंगल के जाने के दो या तीन दिन बाद तक सभी कुछ सामान्य रहा. हम लोग प्राय: उसके बारे में ही बातें करते रहते. उसके स्टोर में टूटी हुई चारपाई पुन: डाल दी गयी थी. स्टोर में उसके रहने के शेष बचे चिह्नों के रूप में केवल एक गंदा-सा, घिसा हुआ, रूमाल के साइज का, छोटा-सा कपड़ा रह गया था, जिसे वह स्टोव साफ करने के लिए प्रयोग में लाता था. तीन दिन बीतने पर मम्मी फिर से यह आशा करने लगी थीं कि अगर मंगल यहीं है तो वह उनसे मिलने एक-आध बार जरूर आयेगा.

आखिर सारी बात ने एक बार फिर पलटा खाया, जब शाम को बैंक का चपरासी कुछ फाइलें वगैरा ले कर घर आया. आते ही उसने मम्मी से पूछा-मंगल कहीं चला गया क्या?

--नहीं तो, अभी तो यही है.

--मैं आज बैंक के काम से फैक्ट्री गया था. साहब पूछ रहे थे कि मंगल कहीं चला गया है क्या? उनके यहां से तो सारा हिसाब चुकता कर गया है.

--क्या! हिसाब चुकता कर गया है!

मम्मी उसकी बात पर बेहद चौंकी थीं और मैं अपने स्टडीरूप में हिप्नोटिज्म के काले घेरे की तरफ देखता हुआ अनुमान लगा रहा था कि मंगल फिर लौट कर आयेगा या नहीं . . . □□□

२९७, लाहौरी गेट, पटियाला (पंजाब)

उन्हें अपने पैरों की आवाजें पीछे से लौटती हुई सुनाई पड़ रही थीं. पार्क से निकल वे फिर सड़क पर थे.

—आगे फिर चौरंगी की भीड़ होगी, लड़के ने कहा. लड़की जैसे अचानक चलते-चलते रुकी हो और उत्तर में उसके कदम बहुत छोटे और धीरे हो आये. लड़के को इससे और भी तेजी से महसूस हुआ, उन्हें अब जल्दी ही बिछुड़ जाना है.

अगला मोड़ आ गया. बहुत सी कारें अचानक गुजर गयीं. लड़के को पूरी तरह लगने लगा कि कुछ ही देर में वे शायद कभी न मिलने के लिए बिछुड़ जायेंगे.

—तुम कल किस समय जा रही हो. तुम्हें कल फोन करूं?

लड़की चुप रही.

उन्होंने चौरंगी से कार निकाल फिर एक और चक्कर उसी सड़क पर लगाया. इस बीच भी वे कुछ बातें नहीं कर सके. लड़के ने कार छोटे रास्ते से वाई. डब्लु. सी. ए. की ओर बढ़ा दी. हॉस्टल से पहले रोक वह लड़की के टैक्सी लेने तक रुका रहा. टैक्सी का इंतजार करते समय लड़की ने कहा—नहीं हॉस्टल में नहीं. लड़का काफी देर बाद अपनी बात का उत्तर समझा.

* *

अगली सुबह सर भारी था. लड़का नींद खुलते ही कौंधा, वह सारा दिन क्या करेगा. लोगों की लंबी लिस्ट से उसे कोई भी नाम ठीक नहीं लगा. फिर इतवार में कौन मिलता है. लड़का लेटा रहा.

दस बजे वह फिर तैयार था. कमरे के अंदर वह फिर घूमने लगा. ऐसे ही एक बार फिर चौरंगी घूम कर आयेगा, उसने सोचा. साढ़े ग्यारह वह फिर तीसरी बार वाई. डब्यू. सी. ए. पर था.

रिसेप्शन रूम में वह देर तक इंतजार करता रहा. उसे अपने आप पर रह रह कर गुस्सा आया. अच्छा होता सर्वेंट बिना ढूंढ़े ही कह देती कि वह जा चुकी है या कहीं बाहर गयी है.

लड़का उठा और फिर उसे लगा उसके इस तरह से जाने से न जाने ये क्या सोचें. और फिर सोफे में धंस गया.

लड़की के ठंडे हाथों ने उसे जगाया. —इंतजार करते थक गये थे न?

—नहीं तो.

लड़की के हाथों में लटका पर्स बता रहा था कि वह बाहर जाने के लिए तैयार हो कर आयी है. वह उठ खड़ा हुआ.

दोनों फिर चुपचाप बाहर निकल आये. चौरंगी के पास रोक आज भीड़ वाले मार्केट में काफी देर घूमे. फिर एअर कंडीशंड रेस्त्रां के अंदर लंच के लिए घुस गये. रेस्त्रां से बाहर निकलते ही लड़के ने पूछा—अब?

लड़की चुप रही.

—अब फिर वापस चलें. तुम्हें तुम्हारे हॉस्टल—

लड़की चुप थी. कार फिर चौरंगी वापस थी. पार्किंग के बाद कोई नहीं उतरा.

—लौटूंगा. थोड़ा सोना चाहता हूं. पूरी शुक्र
शनि की दो शाम तुम्हारे साथ. . .उसके बाद दोनों
में बिल्कुल नहीं सो पाया.

—तुम्हारे फ्लैट पर. . .

—तुम भी आराम कर लेना.

—इतने में कुछ किताबें या मैगजीन पढ़ लूंगी.

* *

कार के पार्क करने तक वह बहुत धीरे-धीरे
बिल्डिंग की ओर बढ़ती रही. लड़का जब तक लौटा,
लिफ्ट के काफी करीब पहुंच चुकी थी.

लिफ्ट खाली थी. लड़के ने लिफ्ट बंद की और
का बटन दबा दिया. लिफ्ट रुकी. और फिर एक द
में लड़के ने चाभी घुमा दी. वह अंदर गयी और
लड़का. लेकिन दरवाजा लड़की ने ही वापस बंद कि

लड़का मैगजीन और कुशन दे एक दरवाजे से
हो गया. मैगजीनों के बीच वह सोचती रही शाम की
से वापस जाने के लिए उसे अब वापस लौट जाना चा

उसे लगा वह थक रही है. उसने आंखें मींच
सैंडिल उतार टेबल पर पैर फैला दिये. सोने से
लड़की ने देखा लड़के वाला दरवाजा अभी भी उसी
आधा खुला और आधा बंद है.

लड़की की आंख लग गयी.

लड़का धीरे से आया. नहा कर एकदम ताजा
लड़की सोफे पर ढीली हो आयी थी.

लड़का खड़ा रहा. सोचता रहा, सोने दे या ज

प्रतिशोध

• सुधींद्र कुमार

—मिस शैल — शैल. लड़के ने दोनों बार धी
पुकारा.

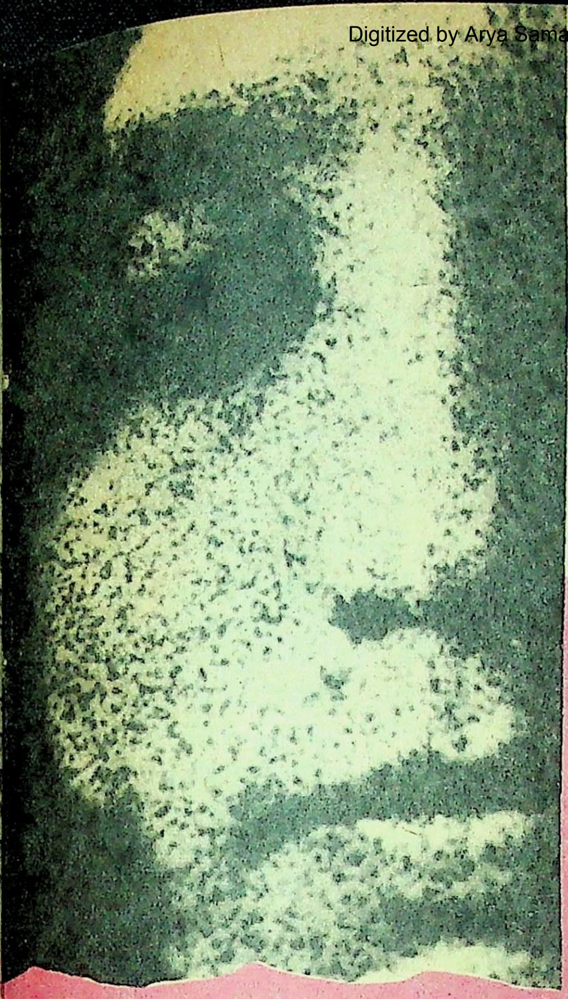
सोफे पर फैले हाथ को उसने छुआ. लड़की का
गरम लगा. उसे तुरंत ही अपनी उंगलियों के ठंडे हाथ
आभास हो आया.

—हां

उसे लड़की की आवाज सुनाई दी. उसने चौं
अपना हाथ उठा लिया.

—अंदर आराम कर लो. मैं काफी बना
इसके साथ ही लड़का मुड़ गया. लड़की की आंखें
खुल आयीं. लड़की उठी और उसी दरवाजे की ओर
गयी जिसमें उसने लड़के को जाते देखा था.

बिस्तरा ठीक था. वह लेट गयी. कोई एक
उसके शरीर में लहर की तरह गुजर गया. वह
के किनारे पर सिमट आयी. उसका शरीर इस



• किरण थोकुल

जैसे जम गया.

—काफी.

लड़का पास तक आया टिपाय पर गिलास रख कर दूसरा गिलास ले बेड की दूसरी तरफ से दूसरे किनारे पर सिमटा-सा बैठ गया.

—शायद मैंने दो बार सोने नहीं दिया.

—काफी बहुत अच्छी है.

—हूं. लड़का बस मुसकराया.

एक लंबा मौन रहा. लड़का कुछ आगे सरका. उसके पास तक उसका हाथ आया. लड़की ने महसूस किया. वह काफी के घूंट भरती सीधा देखती रही. लड़के ने थोड़ी देर हाथ को उसी तरह रख फिर अपनी ओर खींच लिया.

गिलास खाली हो गये. लड़का फिर उठा और दोनों गिलास ले फिर गायब हो गया. अब लड़की पूरी तरह से बिस्तरे पर फैल गयी. शायद काफी के साथ ही वह रिलेक्स हो आयी थी.

एक बार फिर उसे लगा कि वह शुन्य में खोती जा रही है. पहली बार भी किनारे से लेट अपने शरीर को खो निर्जीव हो गयी थी और अब पूरी तरह फैल कर.

लड़का अंदर आया. लड़की ने आंखें नहीं खोलीं, उसकी सांसें तेज हो आयीं. वह उसी किनारे से लग कर बैठा. लड़की ने मैट्रस के दबने से महसूस किया. लड़की ने आंखें खोलीं और फिर सर के ऊपर चलते पंखे को ताक बंद कर लीं.

शायद उन दोनों के सांस रुके. सिर्फ पंखे की हवा का शोर उनके बीच ठहर गया. लड़की को कमर के नीचे बेड की चादर उससे चिपकती लगी. लड़की ने चाहा वह थोड़ा सरके और चादर को छुड़ा ले. लेकिन वह लेटी रही. उसे लगा सरकते ही वह उसे छू गयी होगी.

लड़का सोने की जगह हेड-रेस्ट का सहारा ले कोई किताब या मैगजीन पढ़ता रहा और लड़की पन्नों के पलटने की आवाजें सुनती रही.

लड़के का पैर उसके पैर से छुआ और फिर दोनों के छूते पैर उसी जगह ठहर गये. उसे लगा उसके पैर का खून जमता जा रहा है.

लड़की को शरीर का बाकी हिस्सा गरम होता लगा. सर से लेकर पैरों तक उसे पसीना तेजी से उतर आया. उसे लगा पंखे की हवा पसीने में कुछ नहीं कर पा रही है और चादर उसके ब्लाउज और साड़ी के पार भी चिपकने लगी है.

लड़की हिली. शायद लड़के ने उसकी उंगलियां पकड़ लीं और उसकी उंगलियां लड़के के हाथों में निर्जीव हो गयीं. उसे लगा उसके शरीर में छुड़ाने की कोई भी शक्ति नहीं है.

लड़के ने उंगलियों को अपनी उंगलियों के बीच फंसा कर दबाया. लड़की को लगा उसमें सिहरन हुई है—मुंह से मुंह चिपका कृत्रिम सांसों के द्वारा सांसो के वापस लाने सी. और वह जैसे सिहरन को रोक नहीं पा रही है. और फिर लड़की ने उंगलियों से दौड़ती सिहरनों को बढ़ता ही महसूस किया. उसे लगा उसके न चाहने के बावजूद वह खुद इसमें उलझती जा रही है. गुलगुली-सा उसे कुछ गुदगुदाता गया. और वह फिर उसमें स्वयं पूरी तरह से डूबती गयी.

लड़की की आंखें खुलीं तो कमरे में पूरा अंधेरा भर चुका था. उसे सबसे पहले यही कौंधा कि उसकी गाड़ी जा चुकी होगी. उसने फिर भी समय देखना चाहा. घड़ी वाला हाथ लड़के की गरदन के नीचे दबा था. लड़के की सांसें उसके शरीर से टकरा रही थीं. कंधे से अटका कपड़ा उसे चुभता महसूस हुआ उसने कपड़ा निकाल देना चाहा लेकिन उसे लगा लड़का उठ जायेगा और उसे छूने वाला लड़के के चेहरे और सांसों का स्पर्श खतम हो जायेगा.

लड़का जब उठा तब लड़की सो रही थी लेकिन उसे भूख बड़े जोरों से लग आयी थी. वह लड़की की बिना परवाह किये उठ गया लेकिन जब लड़की उसी तरह सोती रही तो वह लिफ्ट से दो खानों के लिए नीचे उतर गया. □□□

सुधी इंडस्ट्रीज, फ्री गंज रोड, हापुड़

कृतियां

एक उपन्यास

'कंधे से टंगी बगावत'

लेखक : अजित पुष्कल;
प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन,
६१, महाजनी टोला, इलाहाबाद;
३५४ पृष्ठ; ११ रुपये.

किसी कृति में सामाजिक संदर्भ से आरंभ हुई बात व्यक्ति-संदर्भ में उलझ कर टूट जाये तो उस कृति का प्रभावहीन हो जाना निश्चित है. यही अजित पुष्कल के इस उपन्यास के साथ हुआ है. बुंदेलखंड के ग्रामांचल पर आधारित इस उपन्यास की शुरुआत हुई है जमींदार श्रीनाथ और कुलपुरोहित रामपत के संघर्ष से, जो अपने आपमें जमींदार बनाम सामान्य जन के संघर्ष का प्रतीक है. श्रीनाथ जब रामपत को जमीन से बेदखल कर देते हैं तो मानो यह संघर्ष एक स्पष्ट वर्ग-संघर्ष का मार्ग प्रशस्त कर देता है. इस संघर्ष में रामपत की मृत्यु भी हो जाती है, और फिर आगे जा कर यह संघर्ष रामपत के पुत्र दिल्लीपत और श्रीनाथ के पुत्र बड़े भइया की पीढ़ी में खिसक आता है. रामपत उपन्यास के आरंभ में ही अपनी पत्नी से कहता है: 'उनके गुंडे आयेंगे, खेतों से हमारी फसल काट ले जायेंगे. ज्यादा कुछ करोगी तो हाथ-पांव तोड़ देंगे. पंडिताइन, हत्या कई तरह से होती है. गंडासे से, कर्ज से, धोखे-धड़ी से और सामने परोसी थाली छीन लेने से!' और रामपत का यह संवाद उपन्यास के आरंभ से काफी दूर तक प्रतीक वाक्य-सा प्रतीत होता है, लगता है कि यह एक सही वर्ग-संघर्ष को जन्म देगा. दिल्लीपत का व्यवहार और तेवर बहुत दूर तक प्रतीक वाक्य के विचार की पुष्टि करता है, लेकिन धीरे-धीरे उपन्यास मानो अपने मूल मार्ग से भटक जाता है और व्यक्ति-संदर्भ व व्यक्ति-संघर्ष की सीमाओं में उलझ जाता है. दिल्लीपत एकाध बार जरूर बड़े भइया से बदला लेता है, लेकिन धीरे-धीरे वह महज एक बागी और अपने गिरोह के साथ जंगल-जंगल भटकने वाला डकैत बन कर रह जाता है. वह चंदा नामक वेश्या को भगा लाया है, इसलिए उसकी प्रेमिका श्यामली उससे क्रुद्ध हो जाती है. शिरोमन के साथ मिल कर वह दिल्लीपत के खिलाफ षड्यंत्र कर डालती है. धीरे-धीरे घटनाएं नाटकीय मोड़ लेती हैं. दिल्लीपत श्यामली के षड्यंत्र के कारण बड़े भइया से लड़ाई होने के फलस्वरूप फरार होता है, लेकिन अंत में जमींदारों—अत्याचार करने वालों के प्रतीक—को तो मानो भुला ही देता है. यही नहीं, वह चंदा को भी भूल जाता है और बड़े नाटकीय ढंग से एक रोज बीमार श्यामली को अपने कंधे पर उठा कर जंगल में ले जाता है. उसके सहयोगी पलटू, बोंगा, पहलवान आदि उसे इस कार्य में सहयोग देते हैं. उपन्यास खत्म हो जाता है.

लेखक की ओर से दिये गये 'और अंत में' अध्याय में नायक दिल्लीपत के अलावा श्यामली, चंदा, शिरोमन व अन्य सहायक पात्रों का जिक्र है, लेकिन बड़े भइया की कहीं कोई चर्चा नहीं है. क्यों?

कहीं ऐसा तो नहीं कि लेखक का मूल उद्देश्य दिल्लीपत की कहानी को महज एक प्रेमकथा के रूप में प्रस्तुत करना रहा हो और थोड़ा-सा वर्ग-संघर्ष उसमें संयोगवश आ गया हो, या कथावस्तु की मांग के कारण विवशतावश लाना पड़ा हो? यदि हां, तो फिर [उप]न्यास का नाम 'कंधे से टंगी बगा[वत]' क्यों?

☐ प्रदीप

अजित पुष्कल



कहानी-संग्रह

'एक टुकड़ा आकाश'

संपादक : प्रफुल्ल प्रभाकर;
प्रकाशक : प्रभाकर प्रकाशन,
५०-२४ तेला सदन, अजमेर.

संकलन में राजस्थान के प्रति[ष्ठित] कथाकारों की कहानियों के [संक]लन का दावा किया गया है, [पर] कहानियों की संवेदना इस सी[मा से] परे है. अधिकांश कहानियां [प्रति]क्रिया जगाने में कामयाब है. [स्व]यंप्रकाश, रमेश उपाध्याय, [...] मधुकर, मन्नू भंडारी, ईश्वर[...] अशोक आत्रेय एवं यादवेंद्र [...] चंद्र आदि की कहानियों का [वैशि]ष्ट्य अप्रत्याशित नहीं है. [...] अलावा अन्य कहानियों में [...] जिंदगी का कोई-न-कोई [...] चिलाता टुकड़ा है.

स्वयंप्रकाश की [कहानी] 'मात्रा और भार' 'सारिका' [में] प्रकाशित हुई थी. यह संकलन[की] पहली कहानी है, और अपने [...] पन को प्रमाणित भी करती [...] पारिवारिक परिवेश में उ[...] मन:स्थितियों का सादा और [...] प्रस्तुतीकरण जहां मन को [...] स्पर्श देता है, वहीं अंत में ठूंसी [...] बलात् आदर्शवादिता से खि[...] जाता है. यहीं लेखक का पू[...] पैबंद-सा उभर आता है.

अशोक सक्सेना की '[...]' एवं कमर मेवाड़ी की 'ला[...] जंगल' में ऊब है. कुंठा की [...] व्यक्ति कितना तिलमिला [...] है! उसे हर क्षण बासा और [...] खाया हुआ लगने लगता है. [...] सही मनोदशा की सही अभि[व्यक्ति] है, लेकिन इन कहानियों में [...] कलात्मकता नहीं कि इस [...] स्रोत तथा उसकी सरसता [...] जायका भी पाठक को मिल [...] कहानी में किसी भी तरह की [...] स्थिति हो, कितनी ही दुरूह [...] कितनी ही बीमत्स, पर उसमें [...]

सौंदर्यनुमा संप्रेषणीयता भी हो सकती है, जो पाठक की चेतना को आकर्षित किये रहती है—ये गुण मन्नू भंडारी की **'क्षय'**, हबीब कैफी की **'वे तीन'**, मनमोहिनी की **'कवच'**, मनोहर वर्मा की 'डिफल्ट' और 'चंद्र' की कहानी में मौजूद हैं.

किशन शर्मा, सुभाष दीपक, सुरेश शर्मा, भास्कर, प्रफुल्ल प्रभाकर, विनोद सोमानी 'हंस' कदाचित नये नाम हैं. इनकी कहानियां भी परिचित सतह से हट कर हैं. प्रत्येक कहानी में आधुनिकता को छूने का प्रयास स्पष्टतः मालूम होता है. सब विभिन्न स्तरों पर अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं.

राम जैसवाल की 'गंध' में शालीन मौन का स्वर प्रखर है. रमेश सत्यार्थी की कहानी **'अपने ही घर में'** चिर परिचित स्थिति को लेकर लिखी गयी है. आर्थिक विषमता के सूत्र आदमी को न केवल अपने आपसे अपितु घर से भी बेगाना बना देते हैं. कहानी में स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं की रक्षा संपूर्ण सहजता से हुई है.

मणि मधुकर ने अपनी कहानी **'उजाड़ और अबमरे'** के माध्यम से नये आयामों को दस्तक दी है. मणि मधुकर ठीक नाजुक वक्त पर उन मानवीय पहलुओं को समेट गये जो अब तक हिंदी कहानी के लिए परायी चीजें थीं. कहानी की पृष्ठभूमि में रेगिस्तान की रेत और दो देशों की सीमाएं हैं. ऐसे रेत के छोर पर ले जा कर कहानी जगाना. . .अछूते श्मशान में जा कर सिद्धि करने जैसा ही है.

□ राजेशकुमार जैन

कहानी-संग्रह

'गुजराती की पुरस्कृत कहानियां'

संपादक : आबिद सुरती; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली-११००३२; १५२-८ पृष्ठ; २० रुपये.

चयनकर्ता और संपादक आबिद सुरती के अनुसार



आबिद सुरती

आधुनिक गुजराती कहानी १९५५ के आसपास से शुरू होती है, और इस संग्रह में उस काल की कहानी है विट्ठल पंड्या की **'अमृत का जहर'**, जोकि किसी भी स्तर पर उल्लेखनीय नहीं मानी जा सकती. इसके अलावा पंद्रह और पुरस्कृत कहानियां हैं — **'भेड़िया और श्री पापी'** (पवनकुमार जैन), **'तप'** (मोहम्मद मांकड़), **'बुरी छाया'** (मूलराज रूपारेल), **' "क्ष" पर से कोई गीत आता है?'** (अश्विन देसाई), **'तीसरी आंख'** (आबिद सुरती), **'कांच के पीछे'** (वेणीभाई पुरोहित), **'छोटी-सी घटा'** (अभेसिंह परमार), **'शिखा एक, शिखा दो'** (रमेश कोटक), **'मैं-दो'** (विभूति शाह), **'झिलमिलाते हुए चेहरे'** (दिनकर जोषी), **'स्त्री'** (शशि शाह), **'खुले आकाश का एक टुकड़ा'** (सुहास ओझा), **'गृह-प्रवेश'** (ईवा डेव), **'पानी बिच मीन पियासी'** (हरिसिंह क. दोड़िया) और **'खून की सगाई'** (ईश्वर पेटलीकर).

पठनीयता और शिल्प-शैली के हिसाब से ये सारी कहानियां अच्छी-खासी हैं. शायद इसीलिए पुरस्कृत हैं. मगर ये श्रेष्ठ भी होंगी, इसमें पूरा-पूरा शक है; क्योंकि इनमें से अधिकांश कहानियां समकालीन संदर्भों से च्युत हैं—इनमें से किसी भी कहानी का पात्र किसी भी 'वाइटल' सामाजिक, आर्थिक या व्यवस्थागत असंगति से जूझता नहीं मिलता; ज्यादातर को कोई न-कोई 'संगीतमय' तकलीफ है.

ताज्जुब है कि इन तमाम कहानियों की पृष्ठभूमि नगर है और पात्र मालदार किस्म के अनोखे-अलबेले लोग. एक तरह से यही इन कहानियों के दोषों की जड़ भी है; क्योंकि औसत गुजराती शहरी प्रायः संपन्न प्राणी होता है, और कोई कारण नहीं कि उसके संघर्ष और व्यथाएं उस आम आदमी जैसी ही हों, जो पिछले कुछ वर्षों से हिंदी और शेष भारतीय कहानी में तेजी से उभरने लगा है. यानी १९४७ के बाद का हिंदुस्तान और आम हिंदुस्तानी इन कहानियों में नहीं मिलेगा.

* *

प्रतीक शैली में कही गयी पवन कुमार जैन की **'भेड़िया और श्री पापी'** जरूर इस दृष्टि से अपवाद है, मगर प्रतीकात्मकता के फेर में पड़ कर यह कहानी पैनी के बजाय सुहानी हो कर रह गयी है. इसी प्रकार **'बुरी छाया'**, **' "क्ष" पर से कोई गीत आता है?'** और **'स्त्री'** अपेक्षाकृत बेहतर यथार्थ दृष्टि वाली रचनाएं मानी जा सकती हैं. यदि इनके लेखक संस्कारगत रूमानियत के फेर में पड़ कर इनमें अवांछित नाटकीयता और सुंदरपन न घुसेड़ते तो काम फतेह था. शशि शाह ने **'स्त्री'** का अंत करते हुए वेश्या का हृदय-परिवर्तन-सा करके एक खूब बढ़िया कहानी का बंटाढार कर दिया है. इसके विपरीत दिनकर जोषी की **'झिलमिलाते हुए चेहरे'** एक सीधी-सादी व्यथा को अतिरंजित करके पेश करती है.

'तीसरी आंख', **'छोटी-सी घटा'** और **'शिखा एक, शिखा दो'** इस संग्रह की बढ़िया कहानियां हैं.

संग्रह की कहानियां शायद गुजराती की प्रतिनिधि कहानियां नहीं हैं, मगर गुजराती कथा-साहित्य का एक प्रतिनिधि चित्र अवश्य प्रस्तुत करती हैं.

□ राम अरोड़ा

राहु और केतु

• मंदाकिनी गोगटे

उसे शॉपिंग के लिए जाना था इसलिए इधर-उधर भागदौड़ चल रही थी. दरअसल उसकी यह आदत ही थी.

भागते-दौड़ते काम करने से आदमी बड़ा व्यस्त दिखाई देता है और व्यस्त दिखाई देने से आदमी का बड़प्पन बढ़ता है. यह सब एक मेजर की पत्नी के योग्य ही था.

—मां, इतनी भागदौड़ क्यों हो रही है? पहले मेरी तरफ देखो, चारपाई पर पड़े-पड़े संजू ने हुक्म दिया.

—चुप रहो, शब्द होंठों तक आते-आते रुक गये. तरसती आंखों को देखकर मन पसीज गया, शॉपिंग का क्या? होती रहेगी धीरे-धीरे...

कैसा आनंद से लोट रहा है मेरा मुन्ना! अधखुली पलकें, नीली आंखें और उनमें से झांकती नटखट हंसी—मेजर साहब का ही प्रतिबिंब.

वह रुक गयी.

—हट शैतान कहीं के! कहता है मेरी ओर देखो. क्यों देखूं भला? पर ऐसा कहते हुए भी आंखों से प्यार उमड़ा जा रहा था.

उसे लगा वह बिल्कुल मेजर साहब का डुप्लीकेट है—फूले हुए गालों समेत.

—मेरा लाड़ला राजा बेटा! गाल कितने सुंदर हैं! मेजर की याद में विह्वल होकर उसने मुन्ने के फूले हुए गाल दोनों हाथों की चुटकियों से पकड़े.

—बस करो मां, बस करो, मेरे गाल दुखने लगे, बच्चे ने अपनी बात साफ-साफ कह दी. बच्चा भला विरह के आवेग को क्या समझे?

—दुखने दो, दुखते हैं तो. कितने दिन हो गये उनसे मुलाकात हुए... मन ही मन वह बुदबुदाने लगी.

—कह दिया न, बस करो. मेरे गाल क्यों मींचती हो, संजू का वही सीधा सट्ट रवैया.

वह होश में आयी पर ममता एकदम उफन पड़ी.

फिर वही हमेशा का धीरे-धीरे आगे बढ़ने वाला भालू और गुदगुदी. हलुआ, खीर आदि नामी-नामी मिठाइयां गिनाते-गिनाते कढ़ी में होनेवाला उसका अंत.

—मां..ऽ..ऽ..ऽ हम भी यहां हैं...

अचानक दूसरी चारपाई पर ईर्ष्या जागृत हुई अच्छा, हमें तो पता ही नहीं था.

—कैसे होता पता? मुझ पर प्यार हो तब न?

—ऐसे तो चलता ही है. किसी पर प्यार ज्यादा तो किसी पर कम?

वह भी मेजर साहब का ही पुत्र, उन्हीं के ढंग से बोलने वाला.

—अच्छा यह बात है? मुझ पर तुम्हारा प्यार कम है न? तो लो मैं भी सेना में भर्ती हो जाता हूं. हमें गोली लग भी जाय तो क्या? मैं कौन हूं किसी का?

—अरे, अरे! इतने तुनक गये. जरा-सी बात पर, आखिर मेजर की पत्नी को ही झुकना पड़ा. दूसरी चारपाई पर जाकर अपने दूसरे लाड़ले को उसन गोद में उठा लिया.

—क्यों मां, वह तो तुम्हारा लाड़ला आर म?

—तुम भी मेरे लाड़ले बेटे हो, पुरानी यादें उभ[र] आयीं, साथ ही बच्चे का सहलाना भी बढ़ गया.

—रहने दो, रहने दो, नहीं चाहिये तुम्हारा प्या[र] चोट खाया हुआ स्वर.

—क्यों? क्या हुआ?

—संजू को पहले प्यार किया और मुझको बाद में.

—अरे तुम दोनों ही मेरे हो, कहते हुए उसने रा[...] को चूम लिया. रगड़ कर गालों छूते हुए दूसरा सवा[ल] मुझे ऐसा जूठा प्यार नहीं चाहिए. बताओ मुझे पह[ले] प्यार क्यों नहीं किया?

गुस्सा तो जैसे बिल्कुल उसकी नाक पर धरा था.

हताश-सी होकर वह बोली—सच है बाबा! कि[सी] से मिलजुल कर रहना तो तुम्हारे खून में ही नहीं है. उन्हें भी तो तालमेल कहां जचता है.

—क्या कहा मां?

वह चौंक पड़ी.

—मां क्या तुम्हें डैडी की याद आयी?

—नहीं, नहीं, चौंके हुए ही उसने बात बनाने का असफल प्रयत्न किया. फिर तुमने कैसे जाना? पल[ट] कर उसने पूछा.

जवाब में वह हल्के-से मुसकरा दिया, बिल्कुल मेजर साहब की तरह.

—इसमें कौन बड़ी बात है? जैसे मुझे याद आते हैं, वैसे ही तुम्हें भी. क्यों ठीक है न?

बालसुलभ उत्तर सुन कर वह पस्त हो गयी. जमीन पर से पांव अब फिसलते-से लगने लगे

—मां..ऽ..ऽ...संजू को पीट डालूं?

—क्यों बेटे उस पर इतना गुस्सा क्यों?

—क्यों नहीं! जब देखो तब हमारे प्यार के बीच न जाने कहां से आ टपकता है. बोलते समय उसके गाल और भी ज्यादा फूल गये.

शादी से पहले उनकी भी यही जिद थी जो कोई भी रास्ते में आड़े आयगा, उसे तोड़ कर रख दूंगा. ऐसी हिम्मत रखता हूं, इन हाथों में. एक बार पसंद आ गयी सो आ गयी...

उसे लगा मानो मेजर साहब की ही अदा से फूले हुए गाल सवाल पूछ रहे थे.

पुचकारते हुए समझाने के स्वर में उसने कहा—

अरे, वह तुम्हारी पीठ का छोटा भाई है. तुम उससे बड़े हो. तुम्हें तो उसका पूरा खयाल रखना चाहिए.

राजू कुछ बोला नहीं. धीरे-से हंस दिया. स्वस्थ एवं सुडौल शरीर के उभरे हुए तगड़ेपन पर स्मित की रेखा बड़ी लुभावनी लग रही थी.

—बिल्कुल पठान हो, पीठ पर स्नेह से हाथ फिराते-फिराते उसने कहा.

'हम इन पठानों को फौज में भर्ती करायेंगे. सीधे कमांडर इन-चीफ बनायेंगे, उसके डैडी ने एक बार कहा था.

ना बाबा ना. फौज में तो बिल्कुल नहीं. बाद में सिर्फ यादों पर ही जीना पड़ता है. वह बुदबुदाने लगी.

मन पर असह्य तनाव और विरह की चुभन बढ़ने लगी.

. . .कितने दिनों से मुलाकात तक नहीं हुई. छुट्टी लेना तो दूर रहा, एक मामूली-सा खत भी नहीं लिखा. क्या मुझे भूल गये ? या कोई दूसरी. . .?

यहां पर आये भी तो सदा बहार ही बाहर रहे. एक मेजर की पत्नी हो ना, कभी महसूस न कर पायी! अनजाने में उसकी आंखें भीग गयीं !

—मां. . .ऽ तुम रो रही हो? प्रश्न पूछते वक्त उसकी आंखों में इस बात की आश्चर्य की मुद्रा थी कि बड़े लोग भी कभी रोते हैं.

—नहीं-नहीं मुन्ने! रो कहां रही हूं यह तो आंखों में कुछ गिर गया है. अपना हमेशा का नाटक आज भी खेला.

—हमेशा मम्मी की आंखों में कुछ कैसे गिर जाता है?

● महेंद्र बंसल



—हां! समझ में नहीं आता. पहले तो हमें प्यार करती है. फिर तुरंत इसकी आंखों में कुछ गिर जाता है.

—अच्छी बात है, मम्मी! जाओ, मत करो हमें प्यार, बोलते वक्त हमेशा की तरह गाल फूल कर कुप्पा हो गये.

पर उसकी आंखों में जो कुछ गिरा था, वह निकल ही नहीं रहा था.

टेलीफोन की घंटी अचानक बज उठी.

भाग कर उसने रिसीवर उठाया.

—इज इट फोर फाइव सिक्स थ्री नॉट वन ?

—यस प्लीज.

—मिसेज सुलोचना रेगे?

—स्पीकिंग.

—प्लीज स्पीक टू मिस्टर रेगे

उनका अनपेक्षित ट्रंक काल.

वही चिरपरिचित आवाज.

—कहो कैसी हो? हमारी याद आती है ?

अपनत्व से सराबोर आवाज में प्रश्न. मन की हजारों पंखुड़ियां एक साथ खिल उठीं.

—बहुत ज्यादा याद करती हूं तुम्हें. . .आपको. . . बच्चों को सामने देख कर उसने झिझक कर जवाब दिया.

—सचमुच? तभी तो फोन किया.

खुशी के मारे मन सातवें आसमान पर पहुंच जाना चाहता था, फिर भी उसे लगा कि मन में उठी आशंका उन्हें बतला कर बोझ हलका कर लिया जाय.

—मां, किसका फोन है?

कौतूहल भरी चार आंखों में प्रश्नचिह्न दिखायी दिया.

वह सहम गयी. इन दोनों के सामने खुल कर कैसे बात की जाय?

—अच्छी तरह हो न ? फिर से प्रश्न.

—अं. . .हां उसने जैसे-तैसे जवाब दिया.

—क्यों क्या हुआ? उधर से प्रश्न.

—नहीं नहीं, मजे में हैं. किसी भी तरह उसने जवाब तो दे दिया पर उस तरफ संतोष नहीं हो रहा था.

इसी बीच ठीक उसके सामने हथेली पर ठुड्डी टिकाये चौकन्नी आंखें टकटकी लगाये देख रही थीं.

बेचारी क्या करे? क्या न करे?

—अरे ! तुम दोनों यहां खड़े क्या कर रहे हो जरा भीतर चले जाओ, चिढ़ती आवाज में उसने कहा.

—क्या कहा तुमने ? उधर से प्रश्न.

वह बिलकुल गड़बड़ा गयी.

—मां ऽ डैडी आने वाले हैं?

—मां डैडी से कहो ना जल्दी चले आयें, कमर पर हाथ धरे शरारतभरी आंखें ऊपर की ओर ताक रही थीं.

—हां-हां कह दूंगी, तुम दोनों भीतर तो जाओ, मनाने की मुद्रा में वह बोली.

—नहीं, पहले हमारी बात डैडी से कहो, चारों आंखें फिर भी उसी पर टिकी हुई थीं.

—क्यों? हो क्या गया है तुम्हें? बोलती क्यों नहीं? उधर से प्रश्न!

—जरा रुकिए जी. देखो तुम दोनों भीतर जा कर



दस्युराज सुल्ताना



कुख्यात भांतू कबीले के सुल्ताना को अंग्रेजों ने शांति व व्यवस्था की स्थापना के नाम पर अन्य कबीले वालों के साथ कैद कर लिया था. पर किसी तरह वह जेल से भाग निकला और डाकुओं के एक दल में शामिल हो गया. और फिर एक दिन वह भी आया जब सुल्ताना गंगा-सिंधु के मैदान का सबसे बड़ा डाकू बन गया. वह अमीरों को लूटता था और लूट कर गरीबों में बांट देता था. उसकी आकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं थी— लूटना, लड़ना, हत्या करना, कानून को चुनौती देना-बस यही उसका काम रह गया था. भारत के इतिहास में सुल्ताना जैसा खूंख्वार डाकू कोई और नहीं हुआ.

भारत के रॉबिनहुड के नाम से प्रसिद्ध सुल्ताना की सनसनीखेज व रोमांचक कथा.

१ फरवरी १९७६ **अपनी प्रति आज ही खरीदें.**

इंद्रजाल कॉमिक्स

कैरम खेलो. जो जीतेगा, उसे पांच रुपये इनाम दूंगी.

—रुकी क्यों? बात करने में क्या परेशानी है तुम्हें? जानती नहीं ट्रंक काल का समय नपा-तुला होता है, उधर की आवाज में नाराजगी झलकने लगी.

—अं. . अं. . .हां. . .हां करती हूं बात अभी, कहते-कहते गुस्से से भरी निगाहों से उन चार आंखों को घूरा.

—हमारे इम्तहान नजदीक आ रहे हैं. हम कैरम कैसे खेलें? गर्दन हिला कर ना कहते हुए गुस्से से जवाब.

—तो फिर हटो यहां से. जा कर पढ़ो. जाओ. मैं कहती हूं जाओ! चिढ़न और क्रोध के पीछे निस्सहायता झांक रही थी.

—क्या कहा तुमने? गुस्से में उधर से प्रश्न.

—कुछ नहीं . यों ही बच्चों से कह रही थी. बोलते-बोलते क्रोधभरी निगाहों से उसने बच्चों को देखा. दोनों थोड़ा-सा हिले-डुले पर डटे रहे.

बेताबी से उसने उन्हें पूछा—अब कब आओगे?

—मेरे हाथ में थोड़े ही है आना? जब ऑर्डर मिलेंगे, तब आना होगा.

—मां, डैडी से कहो हमारे लिए एयर गन जरूर लायें. तुम्हारे पांच रुपये नहीं चाहिए हमें.

उसने चिढ़ कर दोनों को फिर आंखें दिखायीं. दोनों ने मुंह दूसरी ओर कर लिया पर कमर पर हाथ धरे फौजी निडरता के प्रतीक बने खड़े रहे.

—मैंने तुमसे बात करने ट्रंक काल मिलाया और तुम जो हो सो कुछ बोल ही नहीं रही हो! उधर से उलाहने का पुट लिये नाराजगी साकार हो उठी.

—नहीं जी. ऐसा कोई बात नहीं है. अरे तुम लोग अभी तक यहीं खड़े हो! भीतर जा कर क्यों नहीं मरते?

उसका प्यार उमड़ रहा था. और उसने बहुत चाहा कि वह उनसे खूब बातें करे. मन की सारी बात कह डाले. आजकल चिट्ठियां बहुत कम लिखते हो. याद ही नहीं करते. कहीं मुझे भूल तो नहीं गये!

पर वह सिर्फ इतना ही कह पायी— आये दिन कम से कम चिट्ठी तो डाल दिया करो.

—संभव होता है, वहां तक भेजता तो हूं.

—पहले संभव था पर आजकल क्यों नहीं ?

—काम ज्यादा है. बिलकुल ठंडा जवाब.

—क्या यह सच है कि . . . ? या. . .या मैं अब अच्छी नहीं लगती. मन में हिम्मत तो गांठी पर सामने चार आंखें अब तक टकटकी बांधे देख रही थीं.

—मां, तुमने हमारा संदेशा डैडी को अब तक क्यों नहीं दिया? रूठने की मुद्रा में गाल फूल गये.

—मां मेरे लिए फाइटर जैट लाने को कहना.

—तुम बोलती क्यों नहीं ? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है? उधर से प्रश्न.

—मां, मेरा संदेशा डैडी को जल्दी से दो, कान पर गुस्सा ला कर संजू चीख उठा.

—नहीं मां, पहले मेरी बात कहो, कहते हुए राजू ने संजू की पीठ पर घूंसा जमा दिया.

—अरे तुम लोग भीतर जाते हो या नहीं, अत्यधिक चिढ़े हुए स्वर में वह बोली.

—मां, डैडी से कहना एयर से आयें, ट्रेन से नहीं.

—वहां बच्चे हैं क्या? तो फिर टेलीफोन उन्हीं को दे दो, उस ओर से फरमाइश हुई.

—नहीं, नहीं. ऐसी कोई बात नहीं है वे भीतर जा रहे हैं, बात को सम्हालने का प्रयास करते हुए उसने कहा.

इधर एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखे दोनों ध्यान से बातें सुनते खड़े रहे.

—सब ठीक है ना? उधर से बातचीत का सिलसिला नये सिरे से आरंभ.

—मां, तुम हमारी बात जल्दी से डैडी को बता क्यों नहीं देती?

—नहीं मां, पहले मेरी बात कहो फिर इसकी.

वह चुप! क्या बोले! क्या न बोले!

—मुझे लगता है आजकल तुम्हारा मूड ठीक नहीं है, उधर से फिर क्रोध भरा आवेश.

—अब मैं कैसे बतलाऊं आपको? मूड तो ठीक है लेकिन. . .फिर परेशानी के कारण वह कुछ कह न पायी.

फोन एक ओर करके उसने बच्चों को फिर से डांट दिया. मैं इतनी देर से तुम्हें सवाल पूछ रहा हूं और तुम हो कि एक का भी जवाब ढंग से नहीं दे रही. बेकार ही मैंने फोन किया. कुछ गुस्सा, कुछ नाराजगी, कुछ रूठने की अदा से सामने से आवाज आयी.

वह बेचैन हो उठी. दिल की बात को शब्दों में संजोना चाहती थी. बच्चों के सामने भी कह डालने की हिम्मत की पर इतने हीं में सामने से. . .

—ठीक है तो अब टाइम इज अप, उधर से नाराजगी के साथ टेलीफोन का रिसीवर रख देने की आवाज .

—टाइम इज अप, मैडम, टेलीफोन एक्सचेंज की कर्मचारी की नपी तुली आवाज के साथ लाइन कट गयी.

टेलीफोन हाथ से नीचे रखते वक्त उसकी आंखों से सामने वालों पर बेहद गुस्सा बरस रहा था.

—खड़े रहो तुम लोग यहीं पर. पहली बार स्नेह की जगह क्रोध व आक्रोश ने ले ली.

—तुमने हमारी बात क्यों नहीं सुनी, गर्दन हिलाते हुए दबी आवाज में फिर से प्रश्न.

—मां, डैडी कब आने वाले हैं? दूसरे का प्रश्न.

—मुझे नहीं मालूम, चिढ़े हुए स्वर में वह बोली. अनजाने में मन का दुःख आंखों से बह निकला था.

वह सोचने लगी. . . तुम्हारा मूड ठीक नहीं, कह रहे थे—पर अपने मन को चीर कर कैसे दिखाती! मन की सारी व्यथा व्यक्त करने का कितना अच्छा अवसर मिला था पर बच्चों के सामने मैं कैसे बोलती! अपार दुःख और क्रोध की मिली-जुली मुद्रा में उसने दोनों को फिर से देखा.

कमर पर हाथ धरे उत्सुक एवं मासूम नजरों से अब तक दोनों सामने खड़े ही थे.

उसे लगा जैसे प्रत्यक्ष में राहु और केतु दोनों ही सामने खड़े हैं. □□□

बेला, प्लाट नं. ११४, शींव (पश्चिम) बंबई—२२

(अनुवाद : डा. सविता जाजोदिया)

मोतीहारी में समांतर साहित्य पर बातचीत

● जगदीश विकल

ऐतिहासिक जिला चंपारण के प्रधान नगर मोतीहारी में समांतर लेखन पर एक अनौपचारिक गोष्ठी 'समांतर साहित्य मंच' के तत्वावधान में श्री रविनारायण राय के निवास-स्थान पर गत २० नवंबर को संध्या ७ बजे संपादित हुई. गोष्ठी की अध्यक्षता कथाकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने की.

विषय का प्रवर्तन श्री अवधेश अलिद के निबंध से हुआ. अलिद ने समांतर लेखन को जनवादी लेखन की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हुए यह बतलाया कि ऐसे लेखक भी समांतर से जुड़े हैं, जो सही लेखन की मानसिकता को गुमराह करना चाह रहे हैं. रामसकल सिंह प्रकाश ने इस पर आपत्ति प्रकट की. उन्होंने यह जानना चाहा कि वे कौन-से लेखक हैं, जो ऐसा कर रहे हैं. पर अलिदजी मौन रहे.

जगदीश विकल ने समांतर लेखन के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए बतलाया कि यह अत्यंत हितकर है कि लेखक एकजुट हो कर आम आदमी की तरह लेखन का उत्तरदायित्व निभा रहे हैं. उन्होंने कहा कि '७२ से अब तक समांतर लेखन ने जन-जीवन के अछूते आयामों को अभिव्यक्ति दी है.

श्री रविनारायण ने कहा कि तमाम समांतर लेखक एकजुट हो कर सामंती साहित्य का रचनात्मक विरोध कर आम आदमी को साहित्य में साझीदार बना रहे हैं.

श्री नारायण सिंह ने स्वीकारा कि समांतर लेखन सार्थक प्रयास है. वीरेंद्रकुमार ने स्पष्टतः स्वीकारा कि आज लेखन मात्र मन-बहलाव का साधन नहीं, वरन् एक माध्यम है, जिसका उपयोग नूतन समाज की संरचना के लिए हो रहा है.

प्रकाश ने इस तथ्य पर बल दिया कि समांतर लेखन एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण है.

सतीश भास्कर ने साहित्य मंच के उपस्थित लोगों से यह जानना चाहा कि क्या समांतर लेखन इतर साहित्यिक आंदोलनों की तरह एक और आंदोलन नहीं है?

धूमकेतु जी ने कहा कि समांतर लेखन मूलतः आंदोलन नहीं है. यह जन-जीवन से संबद्ध रचनात्मकता की सही अभिव्यक्ति है. समांतर लेखक कहीं से भी अलग नहीं हैं—वे एकदम से सामान्य जन हैं. ऐसी स्थिति में जबकि लेखक प्रत्येक बिंदु पर आम आदमी की हैसियत से उपस्थित है, आंदोलनात्मक दृष्टि का कोई प्रश्न ही नहीं उठता. अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में धूमकेतु ने समांतर लेखन के स्वरूप और प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आम आदमी को भावनात्मक एकता तो मिली, लेकिन मानव कुंठा, संत्रास और घुटन से नहीं उबर सका. रूमानी सपनों के फैलाव में हमने अपने को पहचानने की कोशिश की, लेकिन वहां सिवा महज वंचनाओं के और क्या मिला? आज आम आदमी की स्थिति यह है कि वह अपने ही परिवेश की सीमा में जैसे कैदी है. समांतर लेखन आम आदमी की विद्रूप समस्याओं से सीधे टकरा रहा है.

समांतर कहानियों ने नाटकीयता के चकाचौंध करने वाले वस्त्रों को उतार फेंका है और अपनी समग्रता में वह आम आदमी की सपाटबयानी है. इसीलिए कृत्रिमता के लिए उसमें कोई जगह नहीं है. समांतर कहानियां आम हिंदुस्तानी जीवन के अलग-अलग शेड्स हैं और आस्था की धरती पर मार्ग ढूंढने की इनमें छटपटाहट है.

अंत में रामसकल सिंह प्रकाश ने सबको धन्यवाद दिया और धूमकेतु जी को विशेष धन्यवाद देते हुए उन्होंने कहा कि 'समांतर साहित्य मंच' की स्थापना कर उन्होंने नगर को सार्थकता प्रदान की है. □

'मुर्गीखाना' पर विचार-गोष्ठी

केवल सूद के नये उपन्यास 'मुर्गीखाना' पर नयी दिल्ली के केरल क्लब में ९ अक्तूबर को एक विचारगोष्ठी का आयोजन 'सबरंग' की ओर से किया गया. गोष्ठी की अध्यक्षता श्री प्रभाकर माचवे ने की. गोष्ठी में लगभग ४० साहित्यकार उपस्थित थे.

डॉ. वीरेंद्र सक्सेना ने कहा कि लेस्बियन प्रवृत्ति एक समस्या बन गयी है. यह प्रवृत्ति भारत में भी मौजूद है, लेकिन हमारे यहां का लेखक ऐसे विषयों पर लिखने से कतराता रहा है. रमेश बक्षी के अनुसार उपन्यास की प्रमुख पात्र एक मनोरोग से पीड़ित है. समलैंगिक संभोग-प्रवृत्ति के कारण उसमें एक मनोग्रंथि बन गयी है कि वह नॉर्मल सेक्स लाइफ का उपभोग नहीं कर सकती. उनके अनुसार यदि लेखक ने प्रतीकों का सहारा न भी लिया होता, तो भी उपन्यास उतना ही सफल रहा होता और भाषा यदि अधिक स्पष्ट और गैर-छायावादी होती तो कथानक अधिक असरदार हो गया होता. जगदीश चतुर्वेदी ने आरोप लगाया कि उपन्यास में जानबूझ कर एक ऐसे वर्जित विषय को उठाया गया है, जिससे लोग चौंक उठें. बलदेव वंशी ने कहा कि लेस्बियनिज्म एक पाश्चात्य प्रवृत्ति है, हमारी वास्तविकता नहीं. डॉ. हरदयाल ने लेखक के दृष्टिकोण को स्वस्थ बताया और कहा कि यह एक सफल उपन्यास है, यद्यपि इसकी समस्या का संबंध मनुष्य की नियति के साथ व्यापक रूप से जुड़ा हुआ नहीं है.

डॉ. माचवे ने समापन करते हुए कहा कि उपन्यास की विषयवस्तु चौंकाने वाली अवश्य है, लेकिन शायद इससे इतनी सनसनी नहीं फैलेगी, जैसी 'चाकलेट', 'लिहाफ' आदि को ले कर फैली थी. उन्होंने सुझाव दिया कि इस पुस्तक पर महिलाओं की प्रतिक्रिया जाननी चाहिए. □□□

प्रसंग

मलयालम-कथाकार कारूर : एक याद

● जीवन मलाबारी

मलयालम के महान कथाकार कारूर नीलकंठ पिल्लै हमारे बीच नहीं रहे. दलितों, पीड़ितों और गरीबों के इस सशक्त कहानीकार के निधन से भारतीय कथा-साहित्य को अवश्य ही भारी क्षति पहुंची है. थोड़े शब्दों में बड़ी बातें कहने वाले थे कारूरजी. उनका शब्द-शास्त्र ही ऐसा था. 'हजारों खंबे हों तो वे बड़े मजबूत भी न हों, तो कोई हर्ज नहीं है, पर खंबों की संख्या घटे तो और बात है. तब वे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत हों.'

उनका जन्म २८ फरवरी, १८९८ को केरल के कोट्टयम जिले में एट्टुमानूर नामक गांव में कारूर घराने में हुआ. सातवें दर्जे तक ही उनकी पढ़ाई हुई. जब वह पंद्रह साल के थे तो एक सरकारी प्राइमरी स्कूल में सात रुपये मासिक वेतन पर अध्यापक बने. अध्यापक बनने के बाद उन्होंने हायर परीक्षा पास की. हिंदी का भी उन्हें थोड़ा-बहुत ज्ञान था. ४४वर्ष तक अध्यापकी करने के बाद ही वह रिटायर हुए. इस बीच उन्होंने 'अध्यापक समाज' नामक एक संघ बनाया, जिसके कारण १९२० के आसपास सरकार ने उन को डिसमिस कर दिया, कारूरजी ही केरल के पहले अध्यापक हैं, जिनको सरकार ने पहली बार ऐसी सजा दी दी. फिर डिसमिसल को सस्पेनशन में बदल कर सरकार ने सजा कम कर दी. वह कोट्टयम सहकारी संघ के सेक्रेटरी और नायर सर्विस सोसायटी में कर्मचारी भी रहे. थोड़े अरसे तक पत्रकार भी रहे.

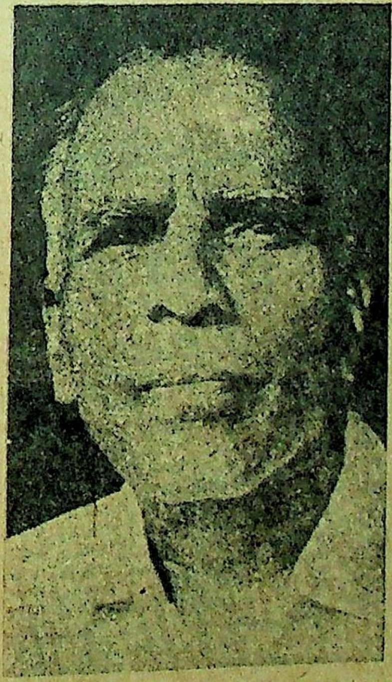
केरल में लेखकों की सहयोगी प्रकाशन संस्था की स्थापना में कारूर जी का सहयोग उल्लेखनीय है. १९४५ में साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ (एस. पी. सी. एस.) की स्थापना हुई. तब से १९६५ तक कारूरजी उसके मंत्री रहे. उस संस्था ने अब तक जो प्रगति की है उसका श्रेय कारूरजी को ही है.

* *

कारूरजी मुख्यतया कहानीकार थे, हालांकि उन्होंने उपन्यास और नाटक भी लिखे. उनके बीस से अधिक कहानी-संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं. बाल-साहित्य के क्षेत्र में उनका योगदान प्रशंसनीय है. उनकी रचनाएं पुरस्कृत हुई हैं. उनकी **'आनक्कारन'** (महावत) नामक बालसाहित्य रचना केंद्र सरकार और केरल साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत हुई. उनकी **'अंचु कटलास्सुकल'** (पांच कागज) के आधार पर बच्चों के लिए एक फिल्म भी बनी है, जिसका नाम है **'पूंपाट्टा'** (तितली). उनकी कुछ पुस्तकें सरकार की ओर से पाठ्यपुस्तक के रूप में भी स्वीकृत हुई हैं.

'हरि' और 'गौरी' उनके दो

स्व. कारूर



उपन्यास हैं. **'अप्पूप्पन'** (दादा) उनका नाटक है. कारूरजी की कुछ कहानियां हिंदी, कन्नड और अंग्रेजी में अनूदित हुई हैं.

* *

कारूरजी के साहित्य का सृजन आम आदमी के जीवन को ले कर ही हुआ. उसमें कृत्रिमता का लेश मात्र भी नहीं है. हरदम वह इनसान की भलाई की तलाश में रहे. मानव-मन की गहराई से कितने ही अनमोल मोती निकाल कर उन्होंने हमको दिये हैं. उनका साहित्य सर्वथा शुद्ध है. उसमें जरा भी मिलावट नहीं है. **'मरप्पावकल'** (कठपुतलियां), **'पोतिच्चोर'** (भात की पोटली), **'उतुप्पांटे किणर'** (उतुप्पान का कुआं), **'येकुत्तान'** (शैतान), **'मोतिरम्'** (अंगूठी) आदि कारूरजी की अमर कहानियां हैं.

यद्यपि वह अंग्रेजी और उसके साहित्य से करीब-करीब अपरिचित थे, फिर भी उनकी कहानियां अंग्रेजी कहानियों से शिल्प या सौंदर्य में किसी भी प्रकार कम नहीं हैं. सचमुच कारूरजी कहानीकार बनने के लिए ही जन्मे थे. उनका कथा-साहित्य एक प्रकाश-स्तंभ है.

बरसों से कारूरजी दमे के शिकार थे. इलाज भी चल रहा था. पर ३० सितंबर '७५ की रात को दस बजे के आसपास उनकी धड़कन सदा के लिए बंद हो गयी. साथ ही एक महान साहित्यकार की कथा-यात्रा एक अनजाने मोड़ पर आ कर रुक गयी. वह प्रेमचंद के सामान 'कलम के सिपाही' थे. जीवन भर आम आदमी के लिए लिखते रहे. इसमें शक है कि साहित्य अकादमी या उस जैसी संस्थाएं कारूर नीलकंठ पिल्लै नामक कहानीकार को भली भांति पहचान सकी हैं. पर पाठक बेशक उनको पहचान सके हैं और उन्हें उनसे समुचित स्वीकार और अंगीकार भी मिला है. कुछ दिनों से कारूरजी को अकादमी का फेलोशिप देने का विचार भी हो रहा था. □□□

समांतर रंगमंच

'रूपांतर' : एक अच्छी शुरुआत

● कृष्ण गोपाल

गोरखपुर जैसे साधनहीन शहर में एक खास किस्म की समांतर अभिरुचि वाला दर्शक-वर्ग तैयार करना भी अपने-आप में एक बड़ी सफलता कही जा सकती है. किंतु, वास्तविक महत्व तो सीमित साधनों में ही विभिन्न समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों वाले नाटकों के कथ्य को उनकी रंगमंचीय संभावनाओं के साथ दर्शकों तक संप्रेषित करने का है. इस दृष्टि से 'रूपांतर' की अब तक की सभी प्रस्तुतियां समांतर रंगमंच के प्रेमियों को आश्वस्त करती हैं. रंगमंचीय व साहित्यिक, विशेषकर प्रयोगधर्मी नाटकों का अभाव प्रबुद्ध दर्शक-वर्ग व रंगकर्मियों से छुपा नहीं है. 'रूपांतर' ने जहां महत्वपूर्ण नाट्यकृतियों को मंच के लिए चुना, वहीं पत्र-पत्रिकाओं में पड़े हिंदी एकांकियों व लघुनाटकों की ओर भी बहुत-से रंगकर्मियों का ध्यान आकृष्ट कराया है. 'रूपांतर' अब तक छोटी-बड़ी कुल बारह कृतियों को मंच पर प्रस्तुत कर चुका है.

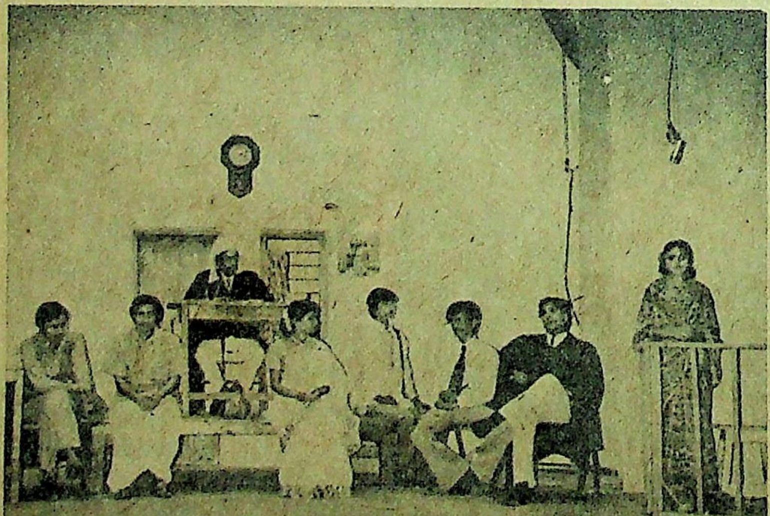
अभी पिछले दिनों संस्था की तेरहवीं प्रस्तुति **'खामोश अदालत जारी है'** के कई प्रदर्शन हुए. 'थियेटर मूवमेंट' को तेजी से बढ़ावा देने के लिए इसे नगर में व नगर के बाहर भी खेला गया. सभी प्रस्तुतियों का प्रदर्शन टिकट के आधार पर हुआ. निर्देशिका डॉ. गिरीश रस्तोगी के अनुसार व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी यह नाटक बहुत उपयुक्त है, क्योंकि इसमें ट्रेजिडी के साथ ही सामान्य दर्शकों के लिए पर्याप्त मनोरंजन है. साथ ही है गंभीरता के साथ सहज व्यंग्य.

विजय तेंडुलकर का यह नाटक एक ओर कानूनी तर्क के खोखलेपन को सामने लाता है; दूसरी ओर समाज के विशिष्ट उत्तरदायी समझे जाने वाले वर्ग के भीतर की गंदगी और विकृतियों को छील कर प्रस्तुत करता है. लीला बेणारे, जो समाज के फ्रेम में फिट नहीं बैठती, संपूर्ण दलित वर्ग की प्रतिनिधि तस्वीर बन जाती है. नाटक के अंत में उसकी न्याय की मांग पूर्ववत् बनी रहती है.

नाटक में कुल आठ पात्र हैं. कई प्रदर्शनों में अब तक मात्र बेणारे या अधिक-से-अधिक सुखात्मे ही उभर कर आते रहे हैं. किंतु 'रूपांतर' ने ध्यान रखा कि सारे चरित्र समान रूप से अलग-अलग उभरें और अपने व्यक्तित्व की विद्रूपताओं पर व्यंग्य करते हुए नाटक को एक समग्र प्रभाव के रूप में दर्शकों तक संप्रेषित करें.

तेजिंदर पाल (लीला बेणारे) एक आम स्त्री के माध्यम से व्यक्ति के भीतर दबी आकांक्षाओं को पूर्ण सहजता के साथ उभार सकीं. कई स्थानों पर उनका मौन भी बहुत कुछ कह गया. प्रमोद पांडेय (सुखात्मे) ने वकीली हथकंडों को समय-समय पर खूब उभारा. शंभु (सामंत) का कस्बाई जीवन में ढलाव एक उपलब्धि रहा है. जज मि. काशीकर द्वारा हास्य के अतिरेक की प्रायः प्रदर्शनों में समीक्षा की जाती रही है. किंतु, दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव ने सराहनीय ढंग से संयत प्रदर्शन किया. ऐसा ही अशोक महर्षि (बालू रोकड़े) ने भी. चेतना रस्तोगी (मिसेज काशीकर) ने आम, अपढ़, घरेलू स्त्रियों के-से हाव-भाव, ईर्ष्या-उत्साह आदि भावों को कई स्थलों पर सहज अभिव्यक्ति दी. अजित श्रीवास्तव (कर्णिक) व संतकुमार (पोंक्षे) क्रमशः एक अभिनेता व अल्पशिक्षित, ठसकेदार वैज्ञानिक (!) की भूमिका में उपयुक्त रहे. दोनों का अभिनय दूसरे प्रदर्शन में काफी सधा था. दृश्य-सज्जा सभी स्थानों पर अशोक महर्षि की थी. प्रकाश एवं ध्वनि-व्यवस्था पन्नालाल जैसवाल द्वारा उनकी सीमाओं में उपयुक्त कही जायेगी. संगीत आशुतोष सिन्हा व विश्वनाथ शर्मा ने दिया. □

'रूपांतर', गोरखपुर द्वारा प्रस्तुत 'खामोश, अदालत जारी है' का एक दृश्य



कविताओं का नाटकीय मंचन

● शीला गार्गी

अभी पिछले दिनों रायपुर में नवोदित सांस्कृतिक संस्था 'रचना' द्वारा श्रीकांत वर्मा की कविता **'जोसफ अब्रकुआं'** तथा धूमिल द्वारा रचित **'मोचीराम'** कविता का नाटकीय मंचन अशोक



धूमिल की कविता 'मोचीराम' का नाटकीय मंचन प्रस्तुत करते हुए भूपेंद्र टिकरिहा

कुमार मिश्र के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया. आनंद चौबे ने जोसफ अब्बुकुआं तथा भूपेंद्र टिकरिहा ने मोचीराम का सफल नाटकीय मंचन किया.

इस अवसर पर श्री प्रमोद वर्मा ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि कविता का नाटकीय मंचन अभिनय के क्षेत्र में एक उपलब्धि होने के साथ ही यह कविता को अधिकाधिक व्यक्तियों तक पहुंचाने का अच्छा माध्यम है. डा. राजेंद्र मिश्र ने कहा कि दो युवा कलाकारों ने कविता का नाटकीय मंचन कर उसके साथ न्याय किया है. श्री हरिशंकर परसाई ने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किये —धूमिल की तरह हर आदमी के दो मुखौटे होते हैं.

रायपुर जैसे शहर में अपने आप में यह एक अनोखा प्रयास था, जो संप्रेषण के एक नये आयाम को ढूंढ़ने में सफल रहा. □

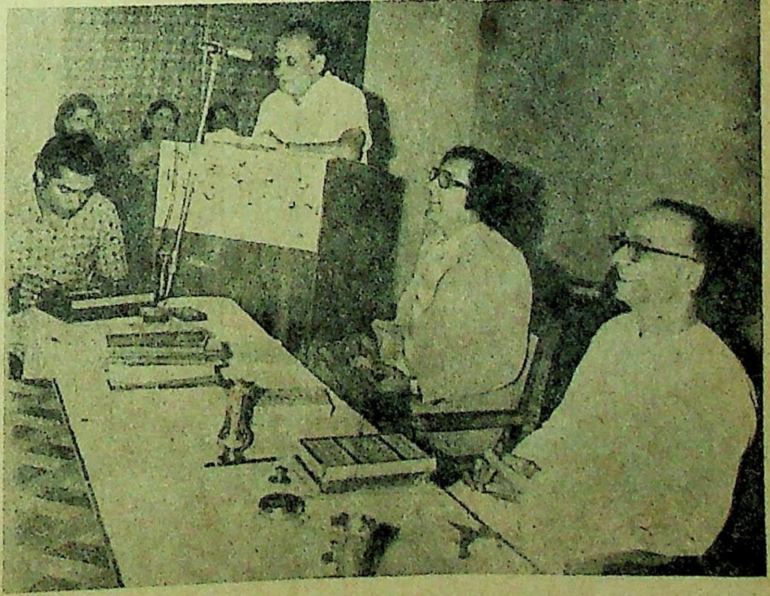
जर्मन कवि रिल्के-परिसंवाद

गुजरात विश्वविद्यालय से संलग्न नवजीवन आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, दाहोद में जर्मन महाकवि रिल्के की जन्म-शताब्दी के शुभ अवसर पर रिल्के-परिसंवाद का दो-दिवसीय शिविर ७ तथा ८ नवंबर, १९७५ को आयोजित किया गया. परिसंवाद का उद्घाटन-प्रवचन गुजराती साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठित कवि, विवेचक एवं गुजरात विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशी ने किया, जिसमें उन्होंने 'रिल्के का विश्वसाहित्य में योगदान' विषय संबंधी सामग्री प्रस्तुत की. इस शिविर में गुजरात विश्वविद्यालय के अतिरिक्त सौराष्ट्र, बड़ौदा, वल्लभ विद्यानगर एवं बंबई विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक, छात्र एवं छात्राओं ने भाग लिया. प्रथम दिवस के कार्यक्रम में प्रा. चंद्रकांत शेठ तथा प्रा. प्रबोध पारिख ने भी रिल्के की 'प्रारंभिक' एवं 'नवीन' कविताओं तथा 'रिल्के और नीत्शे' विषयों पर क्रमानुसार ज्ञानवर्धक व्याख्यान दिये.

द्वितीय दिवसीय प्रथम बैठक में बड़ौदा विश्वविद्यालय के गुजराती के प्रख्यात कवि, विवेचक, कथाकार एवं चिंतक डा. सुरेश जोशी ने रिल्के की एक महत्वपूर्ण रचना **'दुइनो एलेजिस'** पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान देते समय श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया. नवजीवन आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज के आचार्य तथा गुजराती नयी कविता के तरुण कवि एवं विवेचक श्री चंद्रकांत टोपीवाला ने अपनी नयी अनुवादित रिल्के की कृति **'दुइनो एलेजिस'** के अनुवादों का अनुलेख प्रस्तुत किया. अन्य प्रवचनकारों में प्रा. दिगीश मेहता ने रिल्के के 'गद्य-साहित्य' तथा गुजरात विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रा. भोलाभाई पटेल ने **'सोनेट्स टू ऑर्फियस'** के संदर्भ में रिल्के की मूल जर्मन कविताओं से दृष्टांत प्रस्तुत किये. विवेचक श्री सुमन शाह एवं प्रा. अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट ने भी रिल्के की कृति **'माल्ट लोरिड्जब्रिज'** तथा 'रिल्के की कविता में प्रतीकवाद' विषयों पर विशिष्ट ज्ञानवर्धक जानकारी प्रस्तुत की.

परिसंवाद का समापन डा. सुरेश जोशी के भाषण से हुआ. □□□

रिल्के-परिसंवाद : माइक पर हैं डा. सुरेश जोशी. दायीं ओर बैठे हैं—प्रख्यात गुजराती कवि श्री उमाशंकर जोशी



मनमोहक और आकर्षक रंगों में उपलबध

के० डी० आर० — कैशमिलोन
के० डी० आर० — कैशमोएर
के० डी० आर० — कैशमीरा
के० डी० आर० — कैशीमो-रॉयल



हमारी कहानियां :
यानी आपकी कहानियां..



कुछ लोग कहानियों के वादों पर विवाद करते हैं, कुछ पीढ़ियों की उम्र से कहानी को नापते हैं. लेकिन 'धर्मयुग' का रास्ता कुछ अलग है. हम नये-से-नये संदर्भों से जुड़ कर भी कहानी के कहानी-पक्ष को अक्षुण्ण रखने में यकीन करते हैं यानी गहरी मानवीय अनुभूतियों और सामाजिक संलग्नता के साथ कहानी अपने पाठक के हृदय को कहीं छू सके, उसके चिंतन को कहीं उकसा सके! और इसीलिए हमारे लिए प्रतिष्ठित या अप्रतिष्ठित नाम नहीं; वरन सार्थक और सशक्त कथा-रचना का महत्व प्रमुख रहता है. यही कारण है कि पिछले १५ वर्षों में चुपचाप 'धर्मयुग' ने एक ठोस काम किया है—कहानी को खोने न देना, संवेदनशील पाठक से उसे जोड़े रखना और नये-से-नये प्रतिभाशाली कथा-हस्ताक्षर को उभार कर प्रस्तुत करना.

यही कारण है कि आज लाखों पाठक यह मानते हैं कि 'धर्मयुग' की कहानियों का अपना विशिष्ट स्तर है—वे उनके अपने दुख-सुख की जीती-जागती कहानियां हैं.

और जहां तक आंकड़ों का सवाल है

आप जानते हैं, हमने एक वर्ष (१९७५) में अपने पाठकों को क्या दिया?

- ५७ कहानियां
- ९ लंबी कहानियां
- ६ लघु उपन्यास—
- 'ज्वालामुखी के गर्भ में' और 'पाषाण युग'—**मालती जोशी**
- 'सफेद घोड़ा काला सवार'—**हृदयेश**
- 'कई लहरों के बीच'—**आशीष सिन्हा**
- 'रजनीगंधा आकाश'—**अशोक प्रभाकर मोटे**
- 'वह तीसरा'—**दीप्ति खंडेलवाल.**
- प्रसिद्ध मराठी उपन्यासकार **चिं. त्र्यं. खानोलकर** का संपूर्ण उपन्यास 'चानी'.
- **कमलेश्वर** की सशक्त कलम से संपूर्ण उपन्यास 'आगामी अतीत'

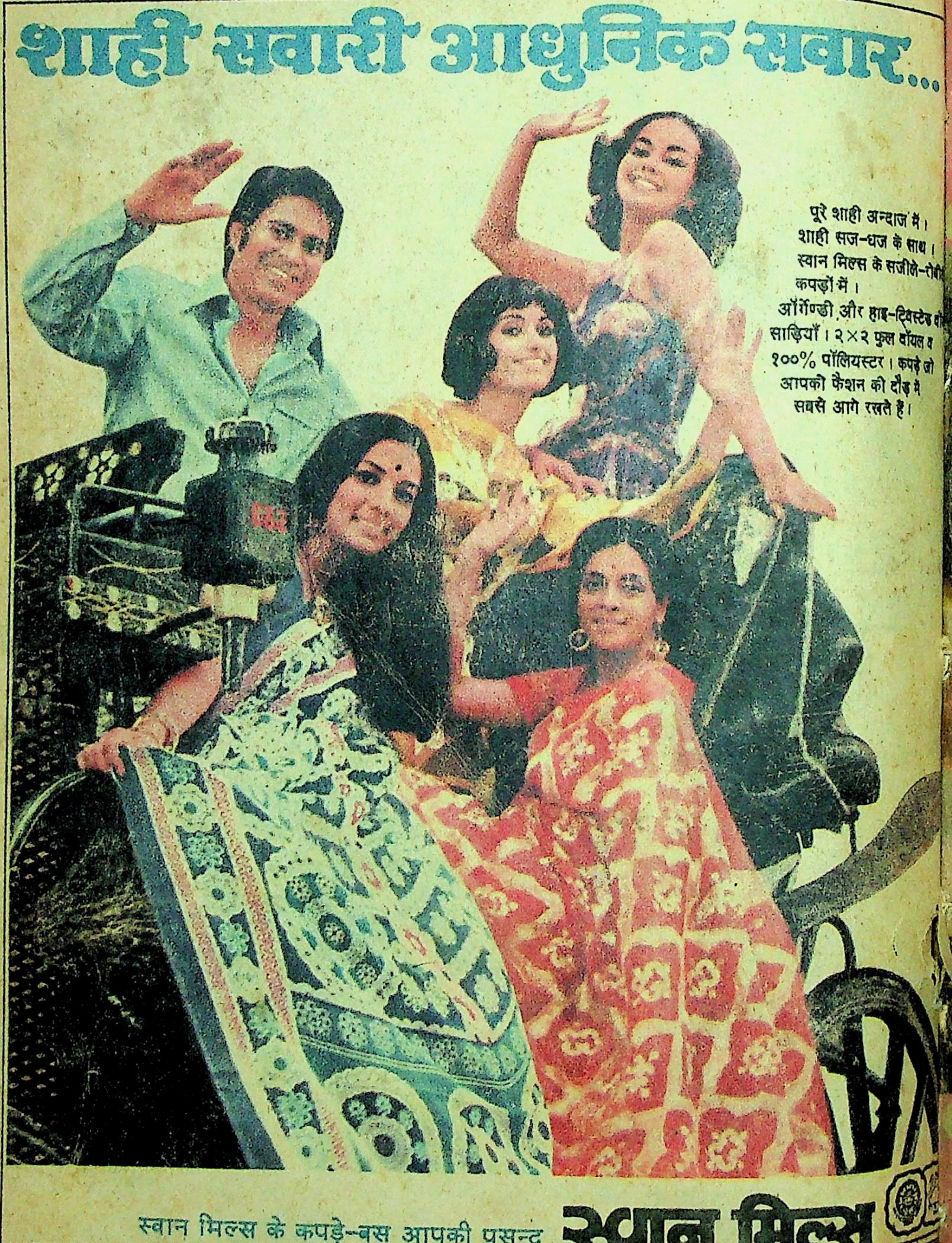
और एक पूरा अंक—**कहानी-बहुल अंक**
—उपहार अंक के रूप में

आप भी क्यों नहीं पढ़ते?

धर्मयुग

नव सामाजिक चिंतन का अग्रदूत

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो. बाक्स २१३, बंबई–४०० ००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–११० ००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.


शाही सवारी आधुनिक सवार...
पूरे शाही अन्दाज में।
शाही सज-धज के साथ।
स्वान मिल्स के सजीले-रो
कपड़ों में।
ऑर्गेण्डी और हाइ-ट्विस्टेड
साड़ियाँ। २×२ फुल वॉयल व
१००% पॉलियस्टर। कपड़े जो
आपको फैशन की दौड़ में
सबसे आगे रखते हैं।
स्वान मिल्स के कपड़े–बस आपकी पसन्द
स्वान मिल्स